आत्म-विकास

लोक-व्यवहार और जीवन-कला पर व्यावहारिक ज्ञान से परिपूर्ण पुस्तक, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कार से सम्मानित

आनन्दकुमार

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

प्रथम सस्करण : मई, 1949
द्वितीय सस्करण : मार्च, 1950
तृतीय सस्करण : मई, 1952
चतुर्थ सस्करण . अक्तूबर, 1955
पचम सस्करण . जनवरी, 1958
पष्ठ सस्करण : फरवरी, 1960
सप्तम सस्करण . फरवरी, 1962
अष्टम सस्करण : मार्च, 1964
नवम सस्करण सितम्बर, 1966
दशम सस्करण जनवरी, 1970
एकादगम सस्करण जुलाई, 1973

मूल्य : आठ रुपये

ATMA-VIKAS (General Knowledge), by Anand Kumar Rs. 8 00

निवेदन

'आत्म-विकास' का विषय उसके नाम से ही स्पष्ट है। इस ग्रन्थ मे मनोविज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, आकृति-विज्ञान, व्यवहार-विज्ञान और अर्थ-विज्ञान आदि मानव-विज्ञान-सम्बन्धी विपयों की अधिक से अधिक उपयोगी, प्रामाणिक एव सारगर्भित सामग्री कम से कम शब्दो मे और तर्कसम्मत सरल भाषा मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों को इसमे वे सभी वाते संक्षेप मे मिलेंगी जिनका जानना एक सामाजिक प्राणी के लिए आवश्यक है। इसमें कोरे सिद्धान्तो की चर्चा नही, व्यावहारिक जीवन का सकेतात्मक वृत्तान्त मिलेगा; प्राचीन और आधुनिक जीवन-विज्ञान का सुन्दर सम्मिश्रण मिलेगा। एक प्रकार से यह जीवन-विषयक एक छोटा-सा विश्व-कोश है। मैं अधिकारपूर्वक यह कह सकता हूं कि मैने इस मौलिक ग्रन्थ को सैकडो ग्रन्थो के शास्त्रीय अध्ययन के आधार पर वैज्ञानिक बुद्धि एवं आधुनिक दृष्टिकोण से लिखा है। इसके द्वारा पाठको का यदि कुछ भी बुद्धि-वर्द्धन या मनोरंजन हुआ, तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक मानूंगा।

इस ग्रन्थ को लिखने की प्रेरणा मुझे मेरे मित्र और हिन्दी के सुलेखक, पत्रकार एव पण्डित ठाकुर राजवहादुरसिह से मिली थी। इस विपय मे मेरी जितनी जानकारी थी, उसको लिपिवद्ध करने का कष्ट मैने उनके आग्रह से ही उठाया है। उनके प्रति मुझे उतना ही कृतज्ञ होना चाहिए, जितना कोई उद्योगी किसी उद्योजक के प्रति होता है। प्रकाशक के प्रति भी मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूं, क्योंकि उन्होंने मेरी इच्छा का सम्मान करके 'आत्म-विकास' को सुन्दर रूप मे

प्रकाशित करके यथाशीघ्र जनता के हाथो मे पहुचाने का शुद्ध प्रयास किया है। अन्त मे मैं उन ग्रन्थ-लेखको के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हू जिनके उद्धृत वाक्यो से मेरे ग्रन्थ का गौरव बढा है। यथास्थान उन ग्रन्थो या ग्रन्थकारो का नामोल्लेख कर दिया गया है।

शीघ्र प्रकाशन के लिए मेरी व्यग्रता के कारण इस पुस्तक मे यत्र-तत्र कुछ त्रुटिया रह गई है। विधाता की सृष्टि भी दोषपूर्ण होती है, अत मानवकृति का सदोष होना कोई आश्चर्य की बात नही है।

वसन्त-निवास
सुल्तानपुर
22-3-49

—आनन्दकुमार

विषय-सूची

1

आत्म-विकास

आत्म-विकास एक प्राकृतिक धर्म है। क्योंकि मनुष्य स्वभाव से ही महत्त्वाकांक्षी जीव होता है, वह अपनी स्थिति से कभी सन्तुष्ट नही रहता, दूसरो से स्पर्द्धा करता है। ससार के सघर्षमय, प्रतियोगितामय जीवन में मनुष्य विना आत्मोत्थान किए, विना अपना एक निश्चित स्थान वनाए खड़ा नही रह सकता। सभी महत्त्वानुरागी है, सभीको जीविका, प्रतिष्ठा और सुख-प्राप्ति की चिन्ता रहती है, इसलिए सभी उनके लिए प्रयत्नशील रहते है। ऐसी स्थिति में सबलता प्राप्त किए विना जीवन में सफलता प्राप्त करना कठिन है। जगत् का यह प्राकृतिक नियम है कि अचर वस्तुए सचर प्राणियों द्वारा भोग्य होती हैं और प्राणियों में कायर प्राणी वीरो के अन्न (खाद्य) होते हैं। आत्म-विकास करना एक राष्ट्रीय धर्म भी है, क्योंकि महात्मा गांधी के शब्दों में 'यदि प्रत्येक व्यक्ति आत्मोद्धार कर ले तो सारे देश का उद्धार हो सकता है।' नैतिक, भौतिक, व्यक्तिगत, सामाजिक—सभी दृष्टियों से आत्म-विकास करना मनुष्य का परम कर्तव्य है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना पूर्वज होता है। मनुष्य बाहरी साधनों की सहायता से नही, मुख्यत: आत्मशक्ति द्वारा ही आत्म-विकास करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना विधाता स्वय होता है। दूसरे शब्दों में ईश्वर हमको जैसा वना देता है, हम वैसे ही नही वने रहते। हम वही है, जो हम अपने साधनों से अपने को वनाते हैं। समाज हमारे ईश्वर-निर्मित रूप को उतना मान नही देता, जितना स्वनिर्मित रूप को। सभी द्विज हैं—एक रूप में वे मनुष्य होकर जन्म लेते है, दूसरे रूप में वे नर-देव, नर-पिशाच, नर-पशु या गर्दभ कहे एवं माने जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य अपने को जैसा बनाता है, उसीके अनुसार उसकी गणना होती है। मनुष्याकार का विशेष सम्मान नही होता, वल्कि गुण-कर्म के आधार पर मानवता, दानवता या पशुता की पहचान होती है। आत्मा के

पुनर्जन्म में विश्वास करने से भी इस सत्य को मानना पड़ेगा कि प्रत्येक व्यक्ति स्वय अपना पूर्वज होता है और अपने कर्म के अनुसार फल पाता है—विकास या विनाश को प्राप्त होता है · 'कर्मायत्त फल पुसां वुद्धिः कर्मानुसारिणी ।'

महाजनो येन गतः स पन्था

आत्मोन्नति कैसे की जाती है, या की जा सकती है—इसपर विचार करना चाहिए। जीवन का क्षेत्र वहुत व्यापक है; अनेक दिशाओ में लोग अनेक उपायो एव साधनो से आगे वढते हुए देखे जाते है। प्रतिभा-शाली व्यक्ति अवसर के अनुकूल साधनों का निर्माण करते है। विलक्षण प्रतिभावाले प्रायः अपना मार्ग स्वयं वनाते है, दूसरो के मार्ग पर नही चलते। कहा भी है कि 'लीक छांडि तीनो चले, सायर, सिह, सपूत' (कवीर)। ऐसी दशा में किसी एक मार्ग की ओर सकेत करके यह नही कहा जा सकता कि यही सफलता का मार्ग है। केवल कुछ ऐसे मूल गुणों की ओर सकेत किया जा सकता है जो सफल व्यक्तियों के मूल चरित्र में मिलते है। उनके आधार पर मनुष्य स्वय साधना करके अपने जीवन-मार्ग को वना सकता है या ढूढ सकता है। उचित रीति यही है कि जव तक अपने पैरो मे बल और अपनी वुद्धि में स्वतत्र विचार करने की शक्ति न आ जाए, तव तक महत्त्वाकाक्षी व्यक्ति महापुरुषो के कार्य को ही अपना मार्ग माने। जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे जीवन का विकास कैसे किया जाता है, इसको हम सत्पुरुषों द्वारा प्रयुक्त सिद्धान्तो के आधार पर सक्षेप में लिखेगे।

आत्म-शक्ति का विकास

आत्म-विश्वास

आत्म-शक्ति की दृढता एव सवलता सव जगह सफलता देती है। इसके लिए निम्नलिखित वातो पर ध्यान देना आवश्यक है। आत्म-विश्वास के विना मनुष्य मे स्वावलम्वन की प्रवृत्ति ही नही उठती और स्वावलम्वन के विना वह अपने को उठाने में असमर्थ होता है। महत्त्वा-काक्षी व्यक्ति को आत्मसत्ता में सर्वाधिक विश्वास करना चाहिए।

उसमें यह विश्वास होना चाहिए कि उसका जीवन निरर्थक नहीं है; उसमें कुछ विशेष शक्तियां है, तभी ईश्वर ने उसको मानव-शरीर दिया है, वह तुच्छ होता तो मनुष्य का शरीर न पाकर खटमल या झींगुर का शरीर पाता। यदि आंख से देखने पर अपना शरीर मनुष्य जैसा दिखलाई पड़ता है तो निश्चित रूप से विश्वास कर लेना चाहिए कि हम भी वही हो सकते है जो कि कोई अन्य मनुष्य-शरीरधारी हो चुका है, और उसके साथ ही अपनी क्षणभंगुरता पर नही, बल्कि अपनी ईशता पर विश्वास करना चाहिए। यह विश्वास आत्मस्फूर्ति देता है, मनुष्य के सोए हुए बल को जगाता है।

सुप्रसिद्ध रूसी लेखक गोर्की ने एक बार अपने देश के किसानों के सामने भाषण देते हुए कहा था कि याद रखो कि तुम पृथ्वी के सबसे आवश्यक प्राणी हो।[1] कोई कारण नहीं कि कोई व्यक्ति अपने को अनावश्यक समझे। जब तक वह स्वय अपने को आवश्यक न मानेगा, तब तक दूसरे उसको कैसे आवश्यक मानेंगे। अतएव अपने साथ विश्वासघात न करना चाहिए; अपनी मनुष्यता को पहचानना चाहिए। महाकवि शेक्सपियर ने लिखा है कि सबसे बड़ी बात यह है कि अपने साथ सच्चे बनो।[2] अपने साथ सच्चे बनने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि मनुष्य अपने को धोखे में न रखे, अपने मनुष्यत्व और मनुष्य-सुलभ शक्तियों में विश्वास रखे; इस बात पर विश्वास करे कि वह शव की तरह इस भवसागर में बहने के लिए नही फेंका गया है। वह जीवित प्राणी है, अतएव सजीव एवं शक्तिमान् बनकर भवसागर को तैरकर पार करना उसका धर्म है।

आत्म-ज्ञान

दूसरी प्रधान आवश्यकता है आत्म-ज्ञान की। आत्म-ज्ञान का अर्थ है—अपने को पूर्ण रूप से पहचानना, अपने बलाबल को जानना, अपनी साधक और बाधक चित्त-वृत्तियों को समझना। अपनी इच्छाओं, कल्पनाओं और विचारधाराओं एवं शरीर-सामर्थ्य को तोलना ही आत्म-ज्ञान है। प्राचीन नीतिकार अप्पय दीक्षित ने लिखा है कि नीति-

---

1 Remember, you are the most necessary men on the earth

2 This above all, to thine ownself be true

शास्त्र के पडित, ज्योतिपी, चतुर्वेदी, शास्त्री और ब्रह्मज्ञानी वहुत मिलते है, परन्तु अपने अज्ञान को समझनेवाले विरले ही मिलते हैं :

नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः ।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्या. स्वज्ञानज्ञानिनो विरलाः ॥

अपने अज्ञान, अपनी अपूर्णता और असमर्थता को समझकर ही अपने को सस्कारित, ज्ञान-गुण से समर्द्धित तथा आत्मशक्ति से समृद्ध वनाया जा सकता है ।

आत्म-शुद्धि

आत्म-ज्ञानी वही हो सकता है जो सचाई के साथ स्वय आत्म-स्वरूप को देखे । शरीर-शास्त्री डॉक्टर आत्म-ज्ञानी नही माना जाएगा । कोई भी व्यक्ति जो अपनी समर्थता और विवशता का विवेचन कर सके, आत्म-ज्ञानी हो सकता है। आत्म-ज्ञान के वाद आत्म-शुद्धि की परम आवश्यकता होती है; क्योकि आत्मा की दैवी सम्पत्तियों को अनेक आसुरी सम्पत्तिया या प्रवृत्तियां उसी प्रकार घेरे रहती है, जेसे प्राचीन ऋषि-मुनियो को दिन मे भी निशाचर घेरे रहते थे। अपनी मनोव्याधियों से मुक्त होकर ही मनुष्य स्वस्थचित्त होकर आत्म-विकास कर सकता है। अतएव आत्म-शुद्धि नितान्त आवश्यक है। यह आत्म-शुद्धि रेडी का तेल पीने से नही, वल्कि मन के मिथ्या विकारो को भगाने से होती है ।

मानसिक व्याधियों की सेना वहुत वड़ी है। उनमें से अधिकाश भय से उत्पन्न होकर स्वय भयोत्पादक हो जाती हैं—जैसे किसी मां की लडकी कुछ दिनो में स्वय मा वन जाती है। मानसिक भीरुता जीवन की प्रगति रोक देती है, इसलिए उसके विपय में कुछ जान लेना आवश्यक है। भय मुख्यतः इन कारणो से उत्पन्न होता है

अज्ञान—किसी विपय को जव मनुष्य नही समझता तो उससे डरता है। अधेरी कोठरी मे जाने से पहले जिस प्रकार भय लगता है, वैसे ही किसी काम मे अनभिज्ञ होने पर उसको करने में डर लगता है। प्रकाश से भय स्वभावतः नप्ट हो जाता है—वह चाहे सूर्य-प्रकाश हो या आत्म-प्रकाश अथवा ज्ञान-प्रकाश ।

संशय—किसी वात को न समझने से जो संदेह उत्पन्न होता है

अथवा समझने पर भी स्वभाववश जो विचिकित्सा की भावना होती है उससे भय तत्काल उत्पन्न होता है। मन में शंका होने पर छोटी वस्तु भी बड़ी लगती है, झाड़ी में भी भूत दिखलाई पड़ता है। संदेह से भ्रम और भ्रम से निराशा उत्पन्न होती है।

उदासीनता—नीरसता या उदासीनता से जीवन-रथ के दो मुख्य घोड़े—आशा और उत्साह—मर जाते हैं और मनुष्य को संसार अंधकारमय, मायामय और भयदायक लगता है। विरक्ति से निर्भीकता की नहीं बल्कि निराशा और भय की सृष्टि होती है।

अनिश्चितता—मन की अस्थिरता या अनिश्चितता अथवा उच्छृंखलता से जो व्यग्रता उत्पन्न होती है, वह भी अन्ततः भय का कारण होती है। मनुष्य जब दृढ़मति होकर सप्रयोजन एक निश्चित दिशा की ओर नियम से चलता है तो संकटपूर्ण परिस्थिति में भय उसको नहीं लगता।

अनैतिकता—यह भय की बड़ी मां है। चरित्र की निर्बलता से मनुष्य पद-पद पर डरता है। शारीरिक अपराध से ही नही, मानसिक अपराध से भी उसके भय का बीजारोपण होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, स्वार्थ, घृणा, प्रतिकार-भावना और अनुचित पक्षपात से भीतर-भीतर आत्मा कांपती है। मिथ्याभाषण, मिथ्याव्यवहार अथवा मिथ्याविश्वास या अन्धविश्वास से तो भय अवश्य ही बढ़ता है। हिंसा या क्रूरता से भय का भयानक संचार होता है। फ्रांस के एक महामान्य ग्रंथकार ने लिखा है कि अत्याचार और भय परस्पर हाथ मिलाते हैं, एक-दूसरे के सखा होते है।[1] भयभीत दशा में मनुष्य क्रूरता करता है और क्रूरता करने के बाद उसको भय लगता है। मनुष्य अनैतिक आचरण से भयभीत होता है और भयभीत होने पर अनैतिक आचरण करता है। नैतिक पक्ष प्रबल होने पर एक व्यक्ति में भी दस हजार व्यक्तियों का मनोबल आ जाता है।

अशक्तता—भय और अशक्तता भी एक-दूसरे के बाप-बेटे है। किसी भी प्रकार की निर्बलता में प्रतिपक्षी की चिन्ता होती है। स्वास्थ्य

1. Cruelty and fear shake hands together — Balzac

के निर्बल होने पर रोग का, मन के निर्बल होने पर परिस्थितियों का और व्यक्तित्व के निर्बल होने पर शत्रु का भय मन में आता है। इसी प्रकार भयत्रस्त रहने पर सभी बातो मे अशक्तता आ जाती है। घबराहट और रोगजन्य अशक्तता—दोनों से नाड़ी की गति बढती है, हृदय धडकता है। इसीसे समझना चाहिए कि भय और अशक्तता का प्रभाव एक-सा होता है। जब मनुष्य अपने को अशक्त पाता है, तभी वह वेदना या वेदना की कल्पना से भयाक्रान्त होता है। छोटे बच्चे अशक्त होते है, तभी तो वे बात-बात में डरकर चिल्लाते है। अशक्त होने पर दूसरो से ही नही, अपने से भी डर लगता है। क्षीणकाय व्यक्ति सदैव डरता है कि कही उसके हृदय की गति न रुक जाए। शरीर और मन से दुर्बल बच्चे कभी-कभी अपने चिल्लाने की आवाज से चौंकते है।

अयोग्यता—अयोग्यता के कारण मनुष्य को यह भय सदा बना रहता है कि कही कोई भूल न हो जाए और भय से प्रायः भूल हो ही जाती है क्योकि मन में भय रहने से रही-सही योग्यता भी स्फुटित नही होने पाती, मनुष्य की बोली तक बन्द हो जाती है, वह हक्का-बक्का हो जाता है।

अकर्मण्यता—हाथ पर हाथ रखकर बैठने से भय मुह खोलकर सामने खडा हो जाता है। आलस्य से पुरुषार्थ क्षीण हो जाता है और भयकर परिस्थितिया मनुष्य को दबा लेती है। उसको चारो ओर भय के भूत ही दिखलाई पडते है। काम के साथ भय निश्चित रूप से समाप्त हो जाता है। जब मनुष्य एक दिशा में चल पडता है तो भय उसके पैरो के नीचे आ जाता है। युद्धस्थलो में यह देखा गया है कि युद्धारम्भ के पूर्व बहुत-से सिपाही भावी सहार की कल्पना से भयभीत रहते है, परन्तु युद्ध के प्रारम्भ होने पर भीत सैनिक भी गोलियो की बोछार में निर्भय होकर दौडता है। इसका कारण केवल यह है कि कर्मोद्यत होने पर भय समाप्त हो जाता है, तब मनुष्य अपनी मृत्यु से भी नही डरता। शारीरिक श्रम से मन का भय निश्चय ही भागता है। आलस्य में कल्पनाजन्य भय से अपनी निस्सहायावस्था का जो अनुभव होता है वह महाआत्मनाशी होता है। शारीरिक एव मानसिक शिथिलता के कारण

ही प्राय: जीवन में असफलता होती है।

दीनता—चाहे परिवार की दीनता हो या स्वभाव की अथवा साहस-उत्साह की या धन की, वह भय उपजाती है। आर्थिक दीनता से असमर्थता ज्ञात होती है। पारिवारिक दीनता से मनुष्य अपने को हीन मानकर दूसरों से डरता है। स्वभाव की दीनता से स्वामी होने पर भी मनुष्य अपने सेवकों तक से डरता है। दीन व्यक्ति सदैव हीनचित्त एवं आकुल-व्याकुल रहता है।

परवशता—परवशता में, सर्वत्र भय ही भय का सामना करना पड़ता है। परवशता हम उस परिस्थिति को कहते हैं, जिसमें मनुष्य अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को खो देता है। उस दशा में वह स्वावलम्बी न होकर पूर्णरूपेण परावलम्बी बन जाता है। पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ स्वतन्त्र व्यक्तित्व बना लेने पर मनुष्य आत्म-निर्भर हो जाता है। अपने को किसीके आश्रित कर देने पर अथवा भीड़ का एक अंग बना देने पर आत्म-शक्ति क्षीण हो जाती है। भीड़ में अन्धविश्वास और उसके कारण भय के भाव उठते है। भीड़ में मिले रहने पर यदि किसी ओर भय का सचार हुआ तो भगदड़ मच जाती है, लोगों में परिस्थिति को समझने या उसका सामना करने की योग्यता नही रह जाती। भीड़ में भेड़ बनने की प्रवृत्ति उठती है। अकेले रहने पर धैर्य सबल होता है। कोई कुत्ता भी अकेले रहने पर जब विषम परिस्थिति में पड़ता है तो तनकर मुकाबला करता है। नेपोलियन का कहना था कि जो अकेले चलते हैं वे तेजी से बढ़ते है।[1] और यही निर्भीक हिटलर का भी मत था कि साहसी व्यक्ति यदि अकेला रहे तो महासाहसी बन जाता है।[2] इसका तात्पर्य यह है कि स्वतन्त्र अधिकारी बनने से भय का निवारण होता है।

असहनशीलता—असहनशीलता से भय खड़ा होता है। असहनशील होने पर मनुष्य स्वभाववश छोटी-छोटी बातों को भी भयंकर समझता है, क्रोध करता है और अन्त में विषाद, पश्चात्ताप तथा लोक-

---

1. They walk with speed who walk alone
2 The strong man is stronger if he remains alone

भय से पीडित होता है। भावोन्माद से असहनशीलता तीव्र होती है और भावोन्माद या भावुकता से भय की भावना भी तीव्र होती है।

व्यसन—प्रत्येक व्यसन भयकारी होता है; क्योंकि बन्धनग्रस्त प्राणी भयभीत रहता ही है। किसी सुख से परिचित होने पर उसमें आसक्ति होती है और परिणामत: दु:ख से द्वेष तथा भावी कष्ट की कल्पना से भय उत्पन्न होता है। व्यसनी या विलासी व्यक्ति भय से निर्मुक्त होता हुआ नही देखा जाता।

श्रद्धा-विश्वास की कमी—श्रद्धा और विश्वास की कमी से आत्म-असमर्थता का अनुभव होता है और यह भय लगा रहता है कि सारा ससार हमारे ही ऊपर आक्रमण करने को तैयार है। सुप्रसिद्ध जार्ज इलियट ने लिखा है कि अविश्वास से बढकर एकाकीपन और कौन होगा, अर्थात् उससे अपनी निस्सहायावस्था की कल्पना उठती है।[1] गांधी जी ने भी कहा है कि विश्वास करना एक धर्म है, अविश्वास करना दुर्बलता है।[2] और हम जानते है कि गांधीजी अपने शत्रु पर भी विश्वास करके सदैव भयनिर्मुक्त रहते थे। अविश्वास से दुराशा ही जन्मती है और दुराशा के गर्भ से भय नामक आत्मज पैदा होता है।

भय को आधार मानकर हमने अनेक मनोव्याधियों का निर्देश ऊपर कर दिया है। सक्षेप में यही जानना चाहिए कि जब तक मस्तिष्क शुद्ध एव सुव्यवस्थित नही होता तब तक मनुष्य विवेकपूर्वक कर्तव्य का निश्चय नही कर सकता। स्वाभाविक भीरुता, निराशा, अस्थिरता, उद्विग्नता अथवा अनभिज्ञता या अनुभवहीनता के कारण जब मन अस्तव्यस्त रहता है, सारा जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। उस अवस्था में मन में द्वन्द्व या द्विविधात्मक भाव उठते हैं और मनुष्य किंकर्तव्य-विमूढ हो जाता है। किंकर्तव्यविमूढ होने पर भयकर परिस्थितियां उठ खडी होती है। जीवन के बहुत-से काम चित्त की अस्तव्यस्तता और भय के कारण बिगडते है। हिटलर इस मनोवैज्ञानिक रहस्य को जानता था। सन् 1933 में राज्य प्रधान होने पर उसने कहा था : हम शत्रु को

---

1 What loneliness is more lonely than distrust?

2 To trust is a virtue It is weakness that begets distrust

वाहरी साधनों से नही, वल्कि उसीके द्वारा जीतेंगे; भीतर ही भीतर हम उनको नष्ट करके उसपर विजय प्राप्त करेंगे। यही हमारी योजना है। घवराहट, परस्पर-विरोधी विचारों का सघर्ष, ग्रनिश्चितता, भयकर त्रास की भावना—यही हमारे हथियार होंगे।[1]

ग्रौर हम जानते है कि हिटलर ने कई ग्रवसरों पर शत्रु-जनता के चित्त को डावांडोल एवं भय-संत्रस्त बनाकर उसको नष्ट कर दिया था। किसी पुराण में भी इस सम्बन्ध मे एक कथा है। एक वार यमराज ने दूतों को वुलाकर कहा कि मुझे चार सौ मृत प्राणियों की ग्रावश्यकता है, जाकर लाग्रो। दूत चार सौ मनुष्यों को मारने के लिए व्याधियों ग्रादि के सहारक अस्त्र-शस्त्र लेकर ससार में पहुंचे। चार सौ के स्थान पर वे ग्राठ सौ मृत प्राणी लेकर यमराज के सम्मुख पहुचे तो यमराज ने विगड़कर ग्रनावश्यक व्यक्तियों को लाने का कारण पूछा। दूतों ने कहा कि हम क्या करे; हम तो चार सौ व्यक्तियों को मार रहे थे, चलते समय ज्ञात हुग्रा कि उस हत्याकांड से भयभीत होकर चार सौ व्यक्ति ग्रपने-ग्राप मर गए हैं। ग्रतः उनके प्राणो को भी लाना पडा।

इस कथा के मर्म को समझिए। वह यह है कि ग्रधिकांश लोग विना मारे मरते हैं। उनके मन में भय का भूत समाया रहता है। वह भूत मस्तिप्क की अशुद्धता से ग्राता है, क्योंकि भूतवादियों के भूत भी गन्दी जगहों में, खडहरों ग्रौर श्मशानों ही में रहते हुए सुने जाते हैं—देव-मन्दिरों ग्रौर सज्जनों के घर में नही। भय से जव ग्रपना ही पैर लड़-खड़ाने लगता है तो मनुष्य जीवन-संग्राम में खड़ा नही रह सकता।

ग्रतएव ग्रात्मोत्थान करने के लिए मन को शंकारहित, स्वच्छ वनाना चाहिए; उसके कुसंस्कारों को मिटाना चाहिए। उनके मिटाने पर ही निर्मुक्त ग्रात्मा उसी प्रकार चैतन्य होगी जैसे किसीकी स्वतंत्र मातृभूमि। यह स्मरण रखना चाहिए कि ग्रात्म-शुद्धि एक दिन में या एक वार में नहीं होती। इसके लिए दैनिक ग्रभ्यास करना पड़ता है कि मस्तिप्क में

---

1. Our strategy is to destroy the enemy from within, to conquer him through himself Mental confusion, contradiction of feelings, indecision, panic are our weapons
—Hitler

मैल न बैठे। कर्तव्य करते समय जहा मन भयभीत हो वहा समझना चाहिए कि मस्तिष्क विकारग्रस्त है। जहा कर्तव्य करने की प्रेरणा या किसी काम को ठीक समझते हुए भी उसको करने का साहस न पैदा हो वहा मानना चाहिए कि मन में कायरता है, भय है, कापुरुपता है।

आत्म-संयम

आत्म-शुद्धि का कार्य तभी चल सकता है जब साथ-साथ आत्म-सयम का कार्यक्रम भी चलता रहे। मस्तिष्क तो विचारो का भूखा रहता है। यदि कोई चाहता है कि दुर्विचारो से पोपित न हो तो उसके स्थान पर सद्‌विचारों का प्रवन्ध करना पड़ेगा। सद्‌विचारो का अर्थ है, अपनी मूल प्रवृत्तियो को जगाना और सुव्यवस्थित करना। मूल प्रवृत्तियों में सत्य, अहिसा मुख्य है। सत्य से अधिक शुद्ध और सरल वस्तु कोई अन्य नहीं हो सकती। सत्य और अहिसा के आधार पर ही प्रकृति का कार्य चलता है, अतएव प्रकृति के प्रधान प्रतीक—मानव के यही मूलधर्म है। क्रूरता और धूर्तता आदि पशु-धर्म है। प्रत्यक्ष जगत् में हम देखते है कि सत्य की अन्त में विजय होती है। धन और मान आदि न्याय से अर्जित होने पर ही सुरक्षित एव चिरस्थायी रहते है। अन्यायी अन्त में हारते है। पतजलि ने सत्य लिखा है कि सत्य प्रतिष्ठित होने से क्रियाफल स्वाधीन हो जाता है: 'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।' सत्य ही से परम मावनधर्म अहिसा भी सिद्ध होती है। व्यास के मत से : 'अहिसा परमो धर्म. स च सत्ये प्रतिष्ठित।' अहिसा का अर्थ है सहृदयता। उसको जीव-रक्षा के अर्थ मे ही लेना चाहिए। स्वभाव एव चरित्र की सरलता एव उदारता से सत्य-अहिसा की विज्ञापना होती है। इन गुणों से पारस्परिक विश्वास बढ़ता है और यह स्मरण रखना चाहिए कि विश्वास ही लोक-जीवन का धारक है। ससार के सूत्र में बंधकर आगे बढने के लिए विश्वासपात्र बनना परमावश्यक है।

इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख आत्म-विकास के भाव है—आशा, उत्साह, साहस और धैर्य। आशा मानव-आत्मा का एक विशेष गुण है, क्योकि हम देखते है कि जब तक शरीर में प्राण रहता है, तब तक आशा उसके साथ बधी रहती है, अतएव उसको दबाना न चाहिए और उसको

अंधकारमय न बनाना चाहिए। उज्ज्वल भविष्य की आशा रखने से आत्म-स्फूर्ति चिर-जागरित रहती है। उत्साह से बढ़कर संसार में कोई बल नहीं है, ऐसा व्यास ने कहा है: 'नास्त्युत्साहात् परं बलम्।' आदि-कवि के मत से उत्साह द्वारा संसार में कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं है: सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्।' और उन्हीके शब्दों में हनुमान् के मत से उत्साह ही सदैव सब कार्यों की सफलता का कारण होता है: 'अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्त्तक:।' साहस से पुरुषार्थ और मनोबल सिद्ध होता है। इस वर्ग के गुणों में धैर्य का स्थान बहुत ऊंचा है। आशा, विश्वास, उत्साह और साहस आदि से उत्पन्न मनस्विता का धारक धैर्य ही होता है। धैर्य के बिना सभी मानस-शक्तियां अल्पजीवी होती हैं। कैसा भी उत्साह-सम्पन्न या साहसी व्यक्ति हो, यदि वह धैर्य-स्खलित होगा तो हताश होकर कहीं न कहीं बैठ जाएगा, विघ्न पड़ने पर कार्य-सिद्धि के पूर्व ही कर्म-घात करेगा और एक बार गरमाकर फिर ठंडा पड़ जाएगा। जीवन के सभी क्षेत्रों में धैर्य सफलतादायक होता है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आविष्कारकों को देखिए, बार-बार विफल होकर भी वे हार नहीं मानते। बिजली का आविष्कार करते समय एडिसन को 900 प्रयोगों मे असफलता ही मिली थी, परन्तु वह धैर्य-च्युत नहीं हुआ। अन्त में उसने बिजली का आविष्कार कर ही लिया। राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी के प्रयासों को देखिए। बार-बार हारकर भी वे मैदान में धैर्यपूर्वक खड़े ही मिलते थे। अन्त में वे विजयी हुए। इंग्लैंड के प्रसिद्ध भूतपूर्व प्रधानमंत्री विलियम पिट ने एक बार कई विद्वानों से पूछा कि प्रधानमंत्री के लिए सबसे आवश्यक गुण कौन-सा होना चाहिए। किसीने कहा परिश्रम, किसीने उत्साह, किसीने वाक्-पटुता। पिट ने कहा कि धीरता से बढ़कर शासक के लिए अन्य गुण नहीं हो सकता। उस अनुभवी प्रधानमंत्री का कथन सत्य था। हम भारतीय राजनीति में प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि धीरता और बुद्धिमत्ता से सरदार वल्लभभाई पटेल ने धीरे-धीरे लगभग 600 ऐसे महाराजाओं के राजमुकुट उतरवा लिए जिनमें से प्रत्येक महीपाल, धर्मावतार, नरेश, अन्नदाता और न जाने क्या-क्या बना हुआ था। वह शासक की

बुद्धिधीरता का ही प्रभाव है। जिस धीरता से कृष्ण ने (हिंसात्मक ढंग से कुरुक्षेत्र में हजारों राजाओं के सिर उतरवाकर) भारतीय एकता की स्थापना की थी, जिस धीरता से चाणक्य ने (कूटनीति और शत्रु-वध का आश्रय लेकर) अखंड मौर्य-साम्राज्य की नींव डाली थी, उसी धीरता से पटेल ने (अहिंसात्मक रीति से अनेक सत्ताधारियों का नैतिक वध करके) भारतीय एकता को दृढ़ बनाया।

यही कुछ मानसिक विभूतियां हैं जिनके संचय से पौरुष दृढ होता है, पराक्रम सिद्ध होता है। मर्यादापुरुषोत्तम राम के भी यही विशेष गुण थे। सीता ने लंका में उनके इन्हीं गुणों का स्मरण करके हनुमान् से कहा था कि उत्साह, पौरुष, बल, अक्रूरता, कृतज्ञता, विक्रम, प्रभाव—ये सब गुण राम के हैं :

उत्साहः पौरुष सत्त्वमानृशस्यं कृतज्ञता।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥ (रामायण)

इस स्थान पर हम फिर यही कहेंगे कि 'महाजनो येन गतः स पन्था।' चित्त-संयम द्वारा अपनी सामर्थ्य-शक्ति को सगठित एवं प्रतीव्र बनाकर ही मनुष्य जीवन में विजय की आशा कर सकता है। आत्म-संयम से अपने स्वास्थ्य, चरित्र, स्वभाव तथा ज्ञान—इन चारों का सस्कार करना चाहिए। इनके सयमित होने से इच्छा-शक्ति स्वभावतः बलवती होती है।

संकल्प

अपनी इच्छाओं को जगाकर देखना चाहिए कि उनमें सबसे प्रबल इच्छा कौन-सी है? सबके मन में एक न एक इच्छा प्रधान होती है और उसीकी ओर उनके मस्तिष्क का स्वाभाविक झुकाव होता है। साधारण मनोयोग से अपनी रुचि का पता चल जाता है। सामान्य इच्छाओं को त्यागकर एक विशिष्ट इच्छा को पकड़ना चाहिए। साहित्य, व्यापार, राजनीति, विज्ञान या कला-कौशल जो भी स्वभाव के अनुकूल जान पड़े उसीको अपना प्रमुख विषय मानना चाहिए, उसीके पीछे मनोरथ को दौड़ाना चाहिए।

प्रबल तरंग को पकड़कर तब निश्चयात्मक बुद्धि से विचार करना चाहिए कि क्या बनना है, कैसे बनना है। इसका दृढ़ संकल्प करना

चाहिए कि अपनी मनोकामना को पूर्ण करके हमें ऐश्वर्यवान् बनना है। जीवन का एक आदर्श बनाकर उसकी पूर्ति का संकल्प करने से जीवन का राजमार्ग सामने दिखलाई पड़ने लगता है, भीतर से उद्योग करने को आत्म-प्रेरणा होती है। लक्ष्य का निश्चय करके कल्पना को दौड़ाना चाहिए। मस्तिष्क का कल्पना-तत्त्व ही उसका प्रधान शिल्पी या चित्रकार है। वह जीवन के भविष्य का सुन्दर मानचित्र बना सकता है। उसीके अनुसार बुद्धि उपाय सोचती है, विचारों को साकार बनाने की चेष्टा करती है और जो कमी होती है उसकी पूर्ति बाहरी ज्ञान या शक्ति से करती है। अतएव कल्पना को दूर तक दौडाना चाहिए, दूरदर्शी बनना चाहिए।

उद्योग

निश्चित कार्यक्रम बनाकर उसके अनुसार उद्यम करने से ही सफलता मिलती है। उद्योग के बिना मनोरथ कभी सफल नही होते, इसको स्मरण रखना चाहिए। उद्योग ही सच्चा पुरुषार्थ है। उद्योग आत्म-विकास का मूलमंत्र है। नेपोलियन ने एक बार कहा था कि मैंने कर्मोद्योग से ही अपने को बहुगुणित किया है।[1]

इस सम्बन्ध में विद्वान् कार्लाइल के इस मत को ग्रहण करना चाहिए : जीवन का एक लक्ष्य बनाओ और उसके बाद ईश्वर ने तुम्हें जितना शारीरिक सम्बल और मनोबल दिया है उसको कार्यपूर्ति के निमित्त लगा दो।[2]

महाप्रतिभाशाली और महोद्योगी जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कभी अपना नब्बेवां जन्मदिन मनाते हुए सफलता का एक मुष्टियोग बताया था। शॉ के कथनानुसार आनन्दमय जीवन बिताने का उपाय यही है कि मनुष्य तन्मय होकर अपने को मनोनुकूल कार्य में व्यस्त रखे और सुख-दुःख की चिन्ता के लिए अपना कुछ भी समय न दे।[3]

---

1 I multiplied myself by my activity —Napoleon

2 Have a purpose in life and having it throw into your work such strength of mind and muscle as God has given you —Carlyle

3 The way to have a happy life is to be busy doing what you like all the time, having no time left to consider whether you are happy or not —G. B Shaw

स्वपुत्र सजय से कहा हुआ विदुला का यह वचन भी कण्ठस्थ रखने योग्य है : उठो, आलस्य को त्यागो, कल्याण-कर्म में अपने को लगाओ। इस भाति मन को चिन्तामुक्त करके कार्य करोगे तो अवश्य सफल होगे :

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्य भूतिकर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥ (महाभारत)

अनन्य अनुभवी विद्वान् व्यास का कथन भी ध्यान मे रखने योग्य है—वुद्धि, प्रभाव, तेज, वल, उठने की इच्छा, उद्योग—ये सव जिस मनुष्य मे हों उसको जीविका का क्या भय हो सकता है :

वुद्धि. प्रभावस्तेजश्च सवत्मुत्थानमेव च ।
व्यवसायश्च यस्य स्यात्तस्याऽवृत्तिभय कुतः ॥ (महाभारत)

अध्यवसाय

उद्योगारभ करके उसको एक लगन के साथ अन्त तक निभाने से ही कार्यसिद्धि मिलती है। कर्मयोजना के अनुसार निरन्तर परिश्रम करने को अध्यवसाय कहते है। कौटिल्य के मत से इसीको व्यायाम कहते हैं : 'कर्मारम्भाणा योगाराधनो व्यायाम.।' सावधानी के साथ एक दिशा में एकाग्रचित्त से चिन्तन, सम्पूर्ण पुरुपार्थ से कार्याभ्यास और लक्ष्य का अनुशीलन करना अध्यवसाय या व्यायाम है। यही कर्म-साधन है। यह साधना प्रतिदिन प्रत्येक क्षण करनी पडती है।

कर्मोपासना में अनेक दैनिक वाधाए, विवशताए, विफलताएं पग-पग पर मिलती है। उनपर विजय प्राप्त करने से ही मनोरथ सफल होता है। अतएव कर्म-मार्ग में संकटों को झेलने के लिए तैयार रहना चाहिए। साधारण प्रलोभन मे पड़कर मुख्य व्यवसाय को न भूलना चाहिए। एक रूसी कहावत है कि जव हल जोतने चलो तो अगल-बगल कोई चुहिया देखकर उसको पकड़ने मे समय न गंवाओ। अपनी स्मृति को ठीक रखना चाहिए क्योकि स्मृति-नाश से पीछे के अनुभव आगे सहायक नहीं होते और योजना-क्रम ठीक नही चलता। आत्म-विस्मृति से भी वचना चाहिए। परिश्रम से थोड़ी सफलता पाकर कार्य-गति को शिथिल वनाने से लक्ष्य-देवता दूर भाग जाते है। आत्म-विस्मृति से मनुष्य को समय का ज्ञान

नहीं रहता। दुःख के बाद जब एकाएक सुख मिलता है तो कालज्ञ मुनि तक अपने को तथा अपने कर्तव्य को भूल जाते है और समय को नही पहचानते। तपस्वी विश्वामित्र को मेनका के साथ व्यतीत किए हुए दस वर्ष एक दिन के समान प्रतीत हुए थे। ऐसे ही विष्णुपुराण-वर्णित एक कण्डु ऋषि थे जो प्रम्लोचा नामक अप्सरा पर मुग्ध होकर जप-तप को भूल गए थे। 907 वर्ष, 6 महीनें, 3 दिन उसके साथ गोमती तट पर रहकर वे अपने को भूले रहे। जब वह जाने लगी तो महर्षि कमण्डलु लेकर सन्ध्योपासना करने चले। इसपर अप्सरा ने पूछा कि आज इतने दिन बाद आपको सन्ध्या-वन्दन का ध्यान कैसे आया ? तव मुनि ने कहा कि क्या कहती हो, अभी कल शाम को उपासना कर चुका हूं, आज फिर जा रहा हूं, सुख के इतने दिन उनको एक दिन ही प्रतीत हुए।

कहने का तात्पर्य यह है कि सजग होकर, समय की गति और अपने मूल प्रयोजन को ध्यान में रखकर अथक परिश्रम करना चाहिए। कही मार्ग भूलकर पथ-भ्रांत न होना चाहिए। उससे अध्यवसाय खंडित होता है। साथ ही, आकस्मिक घटनाओं और विपदाओं से विचलित न होना चाहिए। इंग्लैंड के एक सुप्रसिद्ध भूतपूर्व प्रधानमत्री के इस कथन को याद रखना चाहिए कि बहुत-सी और बड़ी गलतियां किए विना कोई व्यक्ति महान् नही बनता।[1]

अपनी गलतियों से आगे की शिक्षा लेते हुए और अपने को सुधारते हुए सतत उद्योग करने मे बुद्धिमानी है। आत्मिक विकास करने वाले को यह समझ रखना चाहिए कि कर्म-त्याग प्राण-त्याग से कम भयंकर नही होता। इस लोक को कर्म-लोक कहते है : 'कर्मभूमिरियं ब्रह्मन्।' (महाभारत)। इसमें कर्म की ही प्रधानता है : 'कर्म-प्रधान विश्व करि राखा।' (तुलसी)। अतएव कर्म-नाश से आत्म-नाश होना स्वाभाविक है। आत्मिक विकास के सम्बन्ध में यही मुख्य-मुख्य बातें है। जीवन-क्षेत्र में इन्हीं आत्म-साधनों से सर्वत्र सफलता मिलती है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक साधन है जिनका उपयोग आत्मोत्थान के लिए करना पड़ता

1. No man ever becomes great or good except through many and great mistakes
—Gladstone

है। उनका भी सक्षिप्त परिचय हम आगे देते है।

ज्ञान का विकास

ज्ञान आत्मोन्नति में परम सहायक होता है। उससे ही बुद्धि का संशोधन होता है। ज्ञान के साथ विवाह करके बुद्धि योग्यता, प्रगल्भता व सफलता की जननी बनती है। ज्ञानोपार्जन से बुद्धिमान् व्यक्ति सहस्रधी एव सहस्राक्ष बनता है। ईश्वर की सर्व प्रधानता का एक कारण यह भी है कि वह सर्वज्ञ है। मनुष्य छोटे-से जीवन में सम्भवतः सर्वज्ञ तो नहीं हो सकता परन्तु बहुज्ञ अवश्य हो सकता है। जो जितना अधिक जानता है, वह उतना ही स्वतंत्र एव सामान्य होता है; उसका क्षेत्र उतना ही व्यापक होता है।

ज्ञान की कोई सीमा नही है। प्राकृतिक ज्ञान का समुद्र इतना अगाध है कि हजारों वर्षो के परिश्रम से भी मनुष्य अभी तक उसकी गहराई नही माप सका है। साधारण परमाणु की शक्ति तक का उसको पूरा पता नही था। कौन जानता था कि वे यम के दूत भी है। ज्ञान की असीमता को देखते हुए कोई यह कह नही सकता कि अब हमें कुछ सीखने को नही है। जीवन को विकासशील बनाने के लिए सदैव कुछ न कुछ ज्ञानोपार्जन करना आवश्यक है। कुछ न कुछ का अर्थ यह नही कि जो भी सामने मिले उसीको हृदयगम कर लिया जाए।

इस सम्बन्ध मे चाणक्य का यह मत है कि शास्त्र असंख्य हैं, विद्याएं भी बहुसख्यक है, समय कम है, बाधाएं अनेक है, अतएव हस जिस प्रकार पानी में मिले दूध को अलग करके ग्रहण करता है, उसी प्रकार जो साररूप हो उसीको ग्रहण करना चाहिए :

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्या,
अल्पश्च कालो बहु विघ्नता च।
यत्सारभूत तदुपासनीयं,
हसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥ (चाणक्य)

उसी ज्ञान का सचय करना चाहिए जो उपयोगी हो, भ्रम-शून्य अर्थात् यथार्थ हो, जिससे मस्तिष्क का भरण ही नही, मुख्यत उसका

पोषण हो, जिससे जानकारी ही न बढ़े बल्कि आत्म-निर्माण भी हो। मस्तिष्क के भीतर पर्याप्त स्थान होता है, उसमें कौतुकालय न बनाकर कार्यालय बनाना चाहिए, जिससे लोकोपयोगी कर्म हो सके और अपना लाभ भी।

ज्ञान के विषय को ठीक से समझकर तब देखना चाहिए कि किन साधनों से उसका संचय हो सकता है। ज्ञान के दो भेद है (1) ज्ञान और (2) विज्ञान। शास्त्रीय ज्ञान को 'ज्ञान' कहते हैं। प्रयोगात्मक, रचनात्मक या व्यवसायात्मक अनुभव-सिद्ध एवं अभ्यास-साध्य ज्ञान को 'विज्ञान' कहते हैं। शुक्राचार्य के मत से वाणी-सम्बन्धी कर्मों को विद्या और ऐसा कर्म जो बिना वाणी के सहयोग के भी किया जा सके, कला कहते हैं। विद्या और कला को हम क्रमशः ज्ञान और विज्ञान कह सकते है। संक्षेप में ज्ञान-विज्ञान, विद्या-कला का यही परिचय है। इनकी प्राप्ति के मुख्य साधन ये हैं—स्वानुभूति, जिज्ञासा, स्वाध्याय, शिक्षा और अनुभव तथा अभ्यास।

स्वानुभूति

बहुत-सा ज्ञान बुद्धि की चैतन्यता, एकाग्रता एवं जागरूकता से स्वयं प्रस्फुरित होता है। आत्म-तत्त्व और मानवता का मर्म सहानुभूति से ही ज्ञात होता है। मस्तिष्क की खिड़कियों को खोल देने से आत्म-ज्ञान तो प्रकाशित होता ही है, साथ ही बाहर के ज्ञान-प्रकाश की किरणे भी अपने-आप मानस-मन्दिर में प्रवेश करती हैं। मानस-पट स्वच्छ रहने पर उसपर दूसरों के चरित्र की छाप चुपचाप अंकित होती है, और उसके अनुसार मनुष्य को कर्तव्य-ज्ञान की स्वानुभूति होती है। बुद्धि को सक्रिय रखने से बहुत-सा ज्ञान आत्मा द्वारा ही सुलभ हो जाता है क्योंकि वह (आत्मा) स्वयं कई घाट का पानी पिए रहती है।

जिज्ञासा

यदि मनुष्य अपनी बुद्धि-जिज्ञासा को सचेत रखे, अपनी प्राकृतिक ज्ञान-पिपासा को शान्त न होने दे और प्रत्येक समझ में न आनेवाले रहस्य को कौतूहल की दृष्टि से देखकर समझने का सहज प्रयत्न करे, तो मस्तिष्क ज्ञान-समृद्ध हो जाता है। प्रसिद्ध अंग्रेज़ी राजकवि रुडयर्ड

किप्लिग ने लिखा है कि मैं जो कुछ जानता हूं वह मेरे छ: स्वामिभक्त सेवकों का बताया हुआ है; उनके नाम ये हैं—कहां, क्या, कब, क्यों, कैसे और कौन।[1]

स्वाध्याय

स्वाध्याय का तात्पर्य वेद-शास्त्र पढना नही है। उसका अर्थ है स्वयं अध्ययन करना। वह अध्ययन पुस्तक का भी हो सकता है, परिस्थिति का भी और देश-काल या मानव-स्वभाव का भी। संस्कृत में वेदपाठी के अतिरिक्त नगर-व्यापारी को भी स्वाध्यायी कहते हैं, क्योंकि वह बाजार का अध्ययन करता है, भाव के चढाव-उतार को समझता है, उसको पढता है और तोलता है।

बिना पढे-लिखे मनुष्य यदि स्वाध्यायी हो तो वह व्यावहारिक ज्ञान का पडित हो सकता है। आत्मोन्नति के लिए शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान कही अधिक उपयोगी होता है। सुप्रसिद्ध पत्रकार लुई फिशर ने हाल ही में स्टैलिन पर एक लेख-माला प्रकाशित की है। उसमें एक स्थान पर लिखा है कि मनुष्यों और परिस्थितियों को समझने की योग्यता ही स्टैलिन की ज्ञान-पूजी है; वह बहुत विद्या-सम्पन्न नही है, परन्तु जो एक शासक को जानना आवश्यक है अर्थात् अधिकार लेकर उसको कैसे सुरक्षित रखना चाहिए—इसको उसने सीख लिया है।[2]

जीवन-सग्राम में खड़े और पड़े रहने से, देखने-सुनने से, मिलने-जुलने से, देश-भ्रमण करने से और सामाजिक कार्यो में भाग लेने से निश्चय ही स्वाध्याय होता है। कम से कम काल-प्रगति का ज्ञान, लोक-विचारधारा का ज्ञान उसीसे सुलभ होता है। कभी-कभी मनुष्य परिस्थितियों का धक्का खाकर और कभी-कभी कुछ खोकर सीखता है या सचेत होता है। गाधीजी ने एक स्थान पर लिखा है कि घोर सकटपूर्ण परिस्थिति (या

---

1 'I had six honest serving-men They taught me all, I know Their names are where and what, and when and why and how and who'

2 But his great asset is the ability to read men and events He possesses no rich fund of knowledge But he has learnt what every political boss must know, how to get and keep power

—Louis Fischer

मर्मविदारक घटना) ही महापुरुषों का विद्यालय है।[1] प्रायः मनस्वी लोग अपनी पराजय से भी शिक्षा लेते हैं। इन सबको स्वाध्याय ही मानेंगे।

स्वाध्याय के इन समस्त साधनों की अपेक्षा पुस्तक द्वारा स्वाध्याय करना निश्चय ही अधिक सरल होता है। पुस्तकों द्वारा अनुभूत ज्ञान एक ही स्थान पर संचित मिल जाता है, इसलिए उनको स्वाध्याय का मुख्य साधन बनाना चाहिए। सामान्य ज्ञान[2] और विशिष्ट ज्ञान[3] दोनों की उपलब्धि पुस्तकों से होती है। सामान्य ज्ञान के लिए ऐसे ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए जिनसे जीवन-शिक्षा, चरित्र-शिक्षा, लोक-शिक्षा मिले। महर्षि पतंजलि ने तीन विषयों का ज्ञान मनुष्य-मात्र के लिए उपयोगी माना है—मानस-सम्बन्धी ज्ञान, वाणी-सम्बन्धी ज्ञान तथा शरीर-सम्बन्धी ज्ञान। इसलिए उन्होने मन, वचन और काया के सुधार के लिए तीनों विषयों पर एक-एक ग्रन्थ लिखा है—योग-दर्शन, व्याकरण महाभाष्य और वैद्यक-शास्त्र। प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम साधारण मनोविज्ञान, भाषा-व्यवहार और शरीर-विज्ञान का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इनके अतिरिक्त साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति को भी अपने अध्ययन का विषय बनाना चाहिए। सभी विषयों में पारंगत होना आवश्यक नहीं, परन्तु प्रवेश तो अनेक विषयों में होना ही चाहिए। बहुज्ञता से व्यक्तित्व व्यापक बनता है, यह हम कह चुके हैं।

पुस्तक पढ़ने की एक कला होती है। विशेषज्ञों का कथन है कि धीरे-धीरे नही बल्कि तेजी के साथ पढ़ना चाहिए, क्योंकि गति और ज्ञान का परस्पर गहरा सम्बन्ध होता है। तेज पढ़ने से विचारों की धारा खडित नही होती और एक-एक वाक्य का सम्पूर्ण विचार मस्तिष्क में यथास्थान बैठता जाता है। एक-एक शब्द को घोटनेवाला व्यक्ति वाक्य-गर्भित विचार को एकसाथ ग्रहण नहीं करता, इसलिए वह उसको ठीक-ठीक याद नही कर पाता। यह स्मरण रखना चाहिए कि पूरा भाव एक

1. Deep tragedy is the school of great men
2. General knowledge
3 Specialised knowledge

शव्द या दो-चार शब्दों में नही समाया रहता बल्कि वह उनके द्वारा सयोजित वाक्य मे मिलता है। अतएव शब्दार्थ पर अधिक ध्यान न देकर वाक्यार्थ पर ध्यान देना चाहिए, क्योकि अभिप्राय समझने के लिए ही ग्रन्थ-पाठ किया जाता है। शैली, कथाक्रम और शव्द-जाल में न उलझकर ग्रन्थ के मर्म को समझना चाहिए। पढते समय कल्पना और स्मृति दोनो को सचेत रखना चाहिए। कल्पना से वर्णित विपय को साकार करके देखना चाहिए। तब वह अधिक स्पष्ट हो जाता है। स्मृति को चैतन्य रखने से ज्ञान ठीक-ठीक गृहीत होता है। यदि स्मरण-शक्ति ठीक न हो तो पुस्तक पढने से कोई लाभ नही होता; केवल क्षण-भर का मनोविनोद होता है। स्मृतिहीन व्यक्ति की दशा जर्मनी के भूतपूर्व नाजी-सचिव 'हरहेस' जैसी हो जाती है। न्यूरेम्बर्ग के सुप्रसिद्ध 'ट्रायल' के दिनो में 'हेस' की स्मरण-शक्ति लुप्त हो गई थी। वह एक ही ग्रन्थ को सात-आठ वार पढता था और प्रत्येक बार उसको यही ज्ञात होता था कि वह उसको प्रथम वार पढ रहा है।

पढना और विचार करना जव साथ-साथ चलता है, तभी ग्रन्थ-पठन का प्रभाव पड़ता है। तोताराम बनने के लिए पढना व्यर्थ होता है। हमारे पुरखे विमान पर चढ़ चुके है, इसको जानकर आत्म-सन्तोष कर लेने से भी पठन-परिश्रम सफल नही होता। सफल तब होता है जबकि इस जानकारी से हमें आत्म-प्रेरणा और आत्म-स्फूर्ति मिले। मर्म को समझकर चिन्तन करना चाहिए कि कहा तक लेखक का मत सग्रहणीय है। उसको तोलना चाहिए, तर्क-वुद्धि से व्यावहारिकता की कसौटी पर कसकर देखना चाहिए और यथार्थता के आधार पर अपना स्वतन्त्र मत निश्चित करना चाहिए; जो मानने योग्य हो, उपयोगी हो, उसीको धारित करना चाहिए। कठस्थ ज्ञान अपना हो जाता है, पुस्तकगत ज्ञान अपने किसी काम का नही होता। विवाहिता होने पर ही कोई स्त्री पत्नी होती है अन्यथा वह अपने वाप की वेटी ही बनी रहती है। सुगमता से यदि कोई विषय कठस्थ न हो तो उसको उच्च स्वर से पढकर ध्यानस्थ करना चाहिए। उच्चारण से बुद्धि जागती है, तभी तो मास्टर की गर्जना से विद्यार्थी की वुद्धि ठिकाने आ जाती है। स्वय उच्चारण करके पढ़ने से

ज्ञान कान के द्वारा भी बुद्धि में पहुंचता है। प्राचीन आर्यों का मत था कि श्रवण से ज्ञान अधिक धारित होता है। पहले विद्यार्थी को आंखों के सहारे नही बल्कि कानों के सहारे ही पढाया जाता था। बुद्धिमान् व्यक्ति स्वभाव से ही कर्णरसिक होता है। अतएव कान की सुरग से वुद्धि तक पहुंचना सुगम है। यह तभी हो सकता है जब ज्ञान ध्वनिमय हो। ध्वनित मगलस्तोत्रो से प्रातःकाल भगवान् भी जग जाते है, इसलिए अपने महत् को भी ध्वनि-वाणी से जगाना चाहिए। जिस तरह भी हो, ज्ञान को हृदयस्थ करना चाहिए। हां, ध्यान रखना चाहिए कि उसके साथ निस्सार बाते भी स्मृति-देश में कुहरे की तरह छाई न रहें। बहुत तीव्र स्मरण-शक्ति हानिकारक भी होती है क्योकि वह अनावश्यक बातों को भी बटोरे रहती है जिनके कारण मस्तिष्क भारी हो जाता है।

साधारण ज्ञान के लिए अपने प्रिय विषयो को लेना चाहिए और प्रिय लेखकों को चुनना चाहिए। लेखको की शैली में भिन्नता होती है, अतएव एक ही विषय पर बहुत-से लेखकों की पुस्तके एक-सा प्रभाव नही डाल सकती। ऐसे लेखकों के ऐसे ग्रन्थों का अवलोकन लाभकर होता है जो अपने विचारो को उत्तेजित एवं सवेदनाओं को तीव्र बना सके। अतएव ऐसी पुस्तकों को ही स्वाध्याय के लिए लेना चाहिए जो मनो-रंजन के साथ ज्ञान-वृद्धि कर सके। ज्ञान के लिए ही सदैव न पढ़ना चाहिए। पुस्तके पढ़ने का एक उद्देश्य मन की थकावट को मिटाना भी होता है। मनोरंजक उपन्यासों और कहानियों तथा कविताओं से मस्तिष्क के कल्पना-खड का पोषण होता है, विश्राम मिलता है। इस-लिए रात में 'स्वान्तःसुखाय' मनोरजक साहित्य पढ़ने से नीद आती है। मस्तिष्क को सरस बनाने के लिए सरस पढ़ना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि जीवन-साहित्य। स्वाध्याय के लिए उपयोगी ग्रन्थों के साथ मनोरंजक ग्रंथो को भी लेना चाहिए।

आजकल स्वाध्याय का सर्वोत्तम साधन है—समाचारपत्र। समा-चारपत्रो और पत्र-पत्रिकाओं से लोक-प्रगति का सामयिक ज्ञान मिलता है। लोकमत का विज्ञापन ही नही, बहुत कुछ निर्माण भी पत्रों द्वारा होता है। एक अमेरिकन पंडित ने लिखा है कि हम लोग एक ऐसी गवर्न-

मेंट द्वारा शासित होते हैं जो मनुष्यों और दैनिक पत्रों द्वारा संचालित होती है।[1] अपने को राष्ट्र और समाज के अनुकूल बनाए रखने के लिए आधुनिक समय में एक न एक अच्छे समाचारपत्र को पढ़ना आवश्यक है। उनको न पढने से मनुष्य नवयुग के साथ नही चलता; उसका पुस्तक-सुलभ ज्ञान बासी हो जाता है और वह स्वयं कई पीढियो पीछे का जीव या प्रेत हो जाता है।

विशिष्ट ज्ञान के लिए अपनी मूल प्रवृत्ति को पहचानकर और भावी वृत्ति का निश्चय करके तब किसी एक विषय का अध्ययन करना चाहिए और उसमें पारगत बनना चाहिए। एक न एक विषय का विशेपज्ञ होना मनुष्य के महत्त्व को बढाता है, उसके जीविकोपार्जन और यशोपार्जन मे सहायक होता है; अतएव सतर्कतापूर्वक एक उपयोगी विपय का सांगोपांग अध्ययन करना चाहिए और उस विपय के मूल सिद्धान्त को समभकर उसके आधार पर अपने ज्ञान को मौलिक वनाना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य उस विषय का अधिकारी वन सकता है। विचार-स्वतत्रता के लिए दूसरों के विचारों का उपयोग करना चाहिए क्योंकि ज्ञान का वही प्रयोजन है।

जो भी पढे और जैसे भी पढे या सीखे, पाठक को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि ज्ञान का अजीर्ण न हो। जो ज्ञान अभ्यास मे नही आता वह विष हो जाता है : 'अनभ्यासे विषं शास्त्रम्।' लोक-दृष्टि में ज्ञान-विलासी नही, वल्कि कर्मशील व्यक्ति पण्डित माना जाता है : 'य क्रियावान् स पण्डित:।[1] सुप्रसिद्ध विचारक हर्वर्ट स्पेन्सर ने लिखा है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ज्ञान नही, वल्कि कर्म है।[2]

अतएव सर्वप्रथम क्रियात्मक रचनात्मक ज्ञान का ही संग्रह करना चाहिए और संग्रह के साथ उसका प्रयोग करके तथा उसकी प्रतीक्षा करके भी देखना चाहिए कि वह कहा तक उपयोगी है। शिक्षा

1 We live under a Government of men and morning newspapers
—Wendell Phillips

2 The great aim of Education it not knowledge but action
—Herbert Spencer

और स्वाध्याय का प्रयोजन तभी सफल होता है। अभ्यास में आने पर सिद्धान्तों की उपयोगिता-अनुपयोगिता का पता चलता है। कर्म से ही ज्ञान सार्थक होता है, अन्यथा निरर्थक।

कला-सम्बन्धी ज्ञान का स्वाध्याय सीखने और काम करने से होता है। पुस्तकों से उनकी पूरी जानकारी नही होती। काम करने से अभ्यस्त ज्ञान प्राप्त होता है और वही परिपक्व ज्ञान माना जाता है। इसलिए कम से कम व्यावसायिक ज्ञान के उपार्जन के लिए किसी विपय का दैनिक अभ्यास करना चाहिए। काम करते हुए सीखना और सीखते हुए काम करना चाहिए। सीखना और विचार करना जब साथ-साथ चलता है तभी ज्ञान की वृद्धि होती है।

शिक्षा-अनुभव-अभ्यास

शिक्षा, अनुभव और अभ्यास के सम्बन्ध में बहुत कुछ ऊपर प्रसग-वश लिखा जा चुका है। इनके सम्वन्ध में इतना और जानना चाहिए कि मनुष्य स्वयं सभी बाते नही सीख सकता। वह एक ऐसा जीव है जो दूसरों द्वारा शिक्षित बनाए जाने पर शिक्षित वनता है; अतएव निरभिमान होकर अपने से योग्य व्यक्तियों द्वारा शिक्षा लेनी चाहिए। योग्य अध्यापकों द्वारा और सत्पुरुषों की शिक्षा से जो ज्ञान एक घटे में मिल सकता है वह सौ ग्रन्थों के पढने से भी नही आ सकता। अनुभव से भी यही बात होती है। अनुभव से एक मुख्य बात यह होती है कि आवश्यकता का पता चलता है और आवश्यकता ही आविष्कारों की जननी होती है। अभ्यास से ज्ञान सक्रिय होता है, यह हम कह चुके हैं।

इस सम्बन्ध में हम, अन्त में, फिर यही कहेगे कि शिक्षा पा लेने मात्र से अथवा निष्प्रयोजन ढेर की ढेर पुस्तकों को पढ लेने से कोई ज्ञानी नही वनता। यह स्मरण रखना चाहिए कि गीता-पाठ सुनकर अर्जुन लड़ाई नही जीते थे; गीता-धर्म के अनुसार आचरण करने से उनको सफलता मिली थी। 'बम-बम' का उच्चारण करने से ही शिव प्रसन्न नही होते। गत युद्ध के दिनों में प्रायः सभी दिन में दस-पांच बार वम-बम बोलते थे, परन्तु किसीको दैव अनुग्रह प्राप्त होता नही दिखाई पड़ा। सप्रयोजन ज्ञानोपार्जन करके कर्मोपार्जन करना सिद्धि देता है। दान करने से ज्ञान

बहुत बढ़ता है—चाहे वह किसी व्यक्ति को दिया जाए या किसी कर्म को।

सर्वप्रकार से विद्या द्वारा अपने स्वभाव, सुपात्रत्व, धन और सुख की वृद्धि करनी चाहिए। विद्या का प्रयोजन यही है कि उससे विनय, विनय से सुपात्रता, सुपात्रता से धन, धन से धर्म और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है :

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्म ततः सुखम्॥ (हितोपदेश)

सामाजिक जीवन का विकास

मनुष्य एक शुद्ध सामाजिक जीव है। समाज ही उसका कर्म-क्षेत्र, साधन-क्षेत्र और जीवन-क्षेत्र होता है। अतएव उसको अपने सामाजिक जीवन का पूर्ण ध्यान रखना पड़ता है, समाज की रीति-नीति, मर्यादा का ध्यान रखना पड़ता है और अपने को समाज के उपयुक्त बनाना पडता है। समाज कितना प्रबल है, इसको इन बातों से समझिए—लोक-धर्म ही सर्वमान्य धर्म है; लोक-बल ही सर्वप्रधान बल है; लोक-प्रतिष्ठा ही मनुष्य की सबसे बडी निधि मानी जाती है, लोक-सम्मत कार्य ही कर्तव्य है, लोक-सेवा सर्वाधिक महत्त्व-प्रदायक साधन है, लोक-मत ही मनुष्य के लिए ईश्वरीय मत और ईश्वरीय शक्ति है; लोक-प्रथा सबसे बड़ा बन्धन है; लोक-लज्जा ही उच्छृङ्खलता को रोकने वाली 'पुलिस' है, लोक-दृष्टि ही मनुष्योचित कर्म की कसौटी है और लोक-हित का सम्पादन मानवता है। पंच-परमेश्वर के बल को कौन अस्वीकार करेगा ? कौन ऐसा बुद्धिमान् है जो अपना अप्रिय करके भी लोकप्रिय होने का आकाक्षी न हो !

सार्वजनिक जीवन में सफल बनने के लिए मनुष्य अपने स्वार्थ का भी त्याग कर देता है। वास्तव में त्याग और सहानुभूति पर ही समाज स्थापित है। सब अपने-अपने स्वार्थ का थोड़ा-बहुत त्याग कर एक अश तक अपना कृत्रिम रूप बनाकर समाज में रहते है। यदि ऐसा न हो तो सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति नही हो सकती। अतएव सब अपनी

स्वच्छन्द मनोवृत्तियों को दवाते हैं, अपने स्वार्थ के साथ दूसरों का स्वार्थ भी देखते हैं, सहयोग पाने के लिए दूसरों के साथ सहयोग करते है और समाज के नैतिक आदर्शों के सामने सिर झुकाते हैं। सामाजिक जीवन अव मानव-स्वभाव का अंग बन गया है।

सार्वजनिक जीवन के विकास के लिए निम्नलिखित वातों को ध्यान में रखना चाहिए :

लोक-धर्म का पालन

धर्म से हमारा अभिप्राय किसी साम्प्रदायिक धर्म से नही है। मीमांसा के शव्दों में जो मंगलजनक हो, जिससे सुख हो, वही धर्म है : 'य एव श्रेयस्करः स एव धर्मशब्देनोच्यते।' मगल ही जीवन का परम पुरुषार्थ है। देश, काल और समाज के अनुकूल नैतिक आचरण ही धर्म है। उसी से समाज धारित होता है। इसलिए समाज में, शुक्राचार्य के मत से, जो स्वार्थ में निरत रहता है, वही तेजस्वी होता है : 'यो हि स्वधर्मनिरतः स तेजस्वी भवेदिह।'

सत्य, अहिसा, न्याय, विश्वास, शील, सौजन्य और सच्चरित्रता आदि ही मुख्य लोक-धर्म है। इन्हीसे मानव-चरित्र वनता है, कर्तव्य की रूपरेखा वनती है और लोक-कल्याण होता है। सक्षेप में, नैतिकता को लोक-धर्म मानना चाहिए। उसीसे लोक-मर्यादा स्थापित होती है। अनैतिकता, निर्लज्जता या कामुकता आदि लोक-व्यवस्था को तोड़ती है, इसलिए समाज में इनका मान नही है।

लोक-सेवा से समाज में प्रधानता प्राप्त होती है। जो निःस्वार्थ भाव से जनता की, मुख्यतः पीड़ितों की सेवा करता है, वही धीरे-धीरे 'जन-गण-मन-अधिनायक' बन जाता है। ईसा ने कहा है कि जो तुममें सबसे वडा होगा, वह तुम्हारा सेवक होगा।[1]

इसमें सन्देह नही कि जो महापुरुप होता है, वह जनता का सेवक होता है और जो जनता का सेवक होता है, वह महापुरुप। लोक की प्रवृत्ति ऐसी है कि यदि आप सबकी सेवा कर तो सब आपकी सेवा को तैयार

---

1 He that is the greatest among you shall be your servant

—Christ

मिलेंगे। यदि आप उसके लिए आत्मबलिदान कर दें तो सब समाज भी आपके स्थान को संसार में चिरस्थायी बना देना चाहता है। लोक-सेवा से मनुष्य की एक सर्वप्रमुख आकांक्षा की पूर्ति होती है: वह है यशोपार्जन की। सच्ची कीर्ति इसीसे मिलती है और विद्वानों के मत से जो कीर्तिवान् होता है वही जीवित होता है: 'कीर्तिर्यस्य स जीवति।'

लोक-सेवा के अनेक रूप हैं, जैसे—देश-सेवा, समाज-सेवा, साहित्य-सेवा आदि। कोई भी रचनात्मक कार्य जिससे सार्वजनिक हित हो, वह लोक-सेवा है। आत्म-विकास के लिए मनुष्य को ऐसा कर्म करना चाहिए जिससे अन्त में यश और सुख मिले :

तत्कर्म पुरुषः कुर्याद् येनान्ते सुखमेधते। (नैषध)

गुण-कर्म का मान

समाज में गुण और कर्म से ही सम्मान मिलता है और आत्मोत्थान होता है। कारण यह है कि जगत् में सब कुछ गुणमय एवं कर्ममय है। सभी वस्तुएं अपने गुणों का विज्ञापन करती हुई एक न एक कर्म में लगी हुई हैं। गुण एवं कर्म से मनुष्य की उपयोगिता सिद्ध होती है। विष्णु पुराण में लिखा है कि गुणहीन पुरुष में बल, शौर्य आदि सभीका अभाव हो जाता है और निर्बल तथा अशक्त पुरुष सभीसे अपमानित होता है :

बलशौर्याद्यभावश्च पुरुषाणां गुणैर्विना।
लङ्घनीयः समस्तस्य बल-शौर्य-विवर्जितः॥

व्यास ने लिखा है कि संसार में मनुष्य कर्म से ही प्रधान बनता है, धन या विद्या से नहीं : 'वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया।'

शौर्य-पराक्रम का मान

वीरों का संसार में सदा से ही मान होता आया है। कहा भी है: 'वीरभोग्या वसुन्धरा'। शुक्राचार्य ने लिखा है कि शौर्य और पराक्रम से मनुष्य को जैसा सम्मान मिलता है, वैसा कुल से नहीं : 'न कुलं पूज्यते यादृग् बल-शौर्य-पराक्रमः।' लोग स्वभाव से ही वीर को अपना नायक बना लेते हैं। दबनेवाले को सज्जन भी नहीं पूछते। वेदकालीन ऋषि भी इन्द्र को प्रभु बनाते समय कहते थे कि तू किसीसे न दबता हुआ

हमारा नेता बन : 'अदब्धः सुपुर एता भवा नः' (ऋग्वेद)

संगठन का महत्त्व

जिसमें लोक-संग्रह या लोक-मत के संगठन की शक्ति होती है, वह समाज में सबल माना जाता है। दुर्गासप्तशती में लिखा है कि सघ में ही शक्ति है : 'सङ्घे शक्तिः।' संघ-शक्ति की दृढ़ता से एक मनुष्य बहुतों की सम्मिलित शक्तियों को एक कार्य में जोड़ सकता है। सहयोग या एकसूत्रता से असाध्य भी साध्य हो जाता है। संघ-शक्ति दृढ़ करने के लिए योग्यता, चातुर्य, विश्वासपात्रता और आत्म-वीरता की आवश्यकता होती है।

संघ-शक्ति का यही अर्थ नही है कि मनुष्य कोई सेना खड़ी करे या सघ स्थापित करे। राष्ट्रीय जीवन का सबसे बड़ा सघ तो गवर्नमेंट है, जिसको दृढ बनाने से जन-शक्ति दृढ़ होती है। व्यक्तिगत जीवन का सबसे बड़ा सघ मित्र-मंडल है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मित्रबल मनुष्य का बड़ा भारी बल है, जो उसके जीवन को विकासशील बनाता है।

धन और पद का मान

सम्पत्ति और पद-प्रतिष्ठा से भी समाज में गौरव बढ़ता है। धन से इच्छाओं की पूर्ति नही होती, बल्कि सम्पूर्ण जीवन की पूर्ति होती है। रिक्त होने से सर्वत्र लघुता मिलती है और पूर्णता से गौरव मिलता है, ऐसा महाकवि कालिदास ने मेघदूत में लिखा है। 'रिक्तः सर्वोभवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।' पुरुष को धन-काम-धाम कहते ही है। धन न रहने से पुरुषार्थ खंडित हो जाता है।

पद से मनुष्य का स्थान उच्च होता है और वह अपने अधिकारी नाम को सार्थक करता है।

पारिवारिक जीवन का विकास

पारिवारिक जीवन का विकास करना भी आत्म-विकास का एक अंग है। समाज तो मनुष्य के जीवन का संग्राम-क्षेत्र होता है, घर या परिवार शिविर होता है। जीवन-सग्राम के थके सैनिक का वह रैन-बसेरा होता है। घर वही स्थान है जहां मनुष्य के स्वार्थ की पूर्ति होती

है, जहां वह पूर्णतया मुक्त होकर अपनी स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति करता है। समाज में मनुष्य की वहुत-सी प्रवृत्तियां दवी रहती है क्योकि वहां उसको दूसरो के अनुकूल बनकर रहना पड़ता है। परिवार में उन प्रवृत्तियो को तृप्त होने का अवसर मिलता है।

इसमें सदेह नही कि सर्वसाधारण के लिए अपने पारिवारिक जीवन का विकास करना नितान्त आवश्यक है। गृह की सुख-समृद्धि से आत्म-समृद्धि होती है, अपनी नीव मजबूत होती है। इसलिए सफल गृहस्थ बनना सबके लिए कल्याणकारी है। गृहस्थ-जीवन का आरम्भ विवाह से होता है। विवाह मानव-जीवन का एक मधुरतम प्रसग है। दो अपरिचित परिचित बनते है। लोक-जीवन में एकात्मता होती है। मनुष्य की एक हार्दिक कामना रहती है कि कोई वस्तु ऐसी हो जिसको वह अपनी कह सके, कोई वस्तु ऐसी हो जिसका उपभोग वह, और केवल वही, स्वच्छन्दतापूर्वक कर सके। पति को पत्नी के रूप में और पत्नी को पति के रूप में वह वस्तु प्राप्त होती है। पत्नी पति के पुरुषार्थ और पति पत्नी की मोहिनी शक्ति से, जो स्त्रियो में स्वाभाविक होती है, परस्पर प्रभावित होते है। इस प्रकार सघर्षमय जीवन-क्षेत्र में सरसता की धारा वहती है। इसका प्रभाव चरित्र पर और सपूर्ण जीवन के विकास पर पड़ता है। ऐसे अनेक उदाहरण है जिनसे पता चलता है कि वहुत-से पुरुष स्त्रियो की प्रेरणा से उद्यमशील बनकर महापुरुष या सफल व्यवसायी बने है। स्त्री के सामने पुरुष को अपना पुरुषार्थ स्वभावतः प्रमाणित करना पडता है, इसलिए इसमे आश्चर्य की कोई वात नही। स्त्रियो की प्रेरणा से ही नही, उनके लात मारने से भी कालिदास मूर्ख से महाकवि हो गए थे। स्त्री के दुर्व्यवहार से तंग होकर कितनों ही ने परमार्थ के वड़े-वड़े काम किए हैं।

विवाह से ही जीवन का विकास होता है, ऐसा नही कहा जा सकता। सुप्रसिद्ध भारत-भक्त फ्रेंच लेखक रोम्यां रोला का मत था कि विवाहित व्यक्ति अर्द्ध-पुरुष या खण्डित पुरुष है।[1] अंग्रेजी में पत्नी को अपना उत्तम अर्द्ध-भाग (वैटर हाफ) कहते है। इस प्रकार पुरुष बेचारा तो हीनाग

---

1 A married man is no more than a half

हो ही जाता है। खैर, हम रोम्यां रोलां के मत की पुष्टि के लिए यह सब नही लिख रहे हैं। हमारा अभिप्राय यह है कि स्वतंत्र रहकर भी मेधावी मनुष्य आत्मोत्थान कर सकता है। विलायती पंडितों का यह मत सर्वमान्य नही है कि पत्नियां ही पति को काम के मैदान में खड़ा करती हैं। हमारे यहा राम को सीता से, कृष्ण को राधा से और बुद्ध को यशोधरा से क्या प्रेरणा मिली, पता नही। चाणक्य और पटेल को निश्चय ही कोई प्रेरणा नही मिली। ऋषि-मुनियों के तो हजारों उदाहरण इस प्रकार के हैं।

सत्य बात यह है, सयमित और आनन्दमय सासारिक जीवन बिताने के लिए विवाहित जीवन परमावश्यक है। जो लोक-सेवा के पीछे अपने जीवन को लगाना चाहता है, उसके लिए यह उतना आवश्यक नही है। परन्तु सुन्दर पारिवारिक जीवन से उसको सहायता अवश्य मिलती है। यदि स्त्री दुर्मुखा मिली तो आत्म-विकास तो दूर रहा, वहां आत्मनाश होने लगता है। एक संस्कृत कवि ने कहा है कि दुर्विनीता स्त्री से वेश्या पत्नी ही अच्छी है: 'वर वेश्या न पुनरविनीता कुलवधूः।' पारिवारिक जीवन आनन्दमय हो सकता है और घोर विपत्तिमय भी। प्रयत्न यही करना चाहिए कि वह सुखमय हो, क्योंकि उससे आत्म-सुख के अतिरिक्त समाज का संगठन होता है। अग्रेजी की इस कहावत को ध्यान में रखना चाहिए कि प्रसन्न परिवार तात्कालिक स्वर्ग है।[1]

व्यक्तित्व का विकास

अपने संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना ही सच्चा आत्म-विकास है। समाज या परिवार का एक अंग होकर भी प्रत्येक व्यक्ति अपना एक स्वतन्त्र रूप, एक स्वतन्त्र स्थान रखता है, उसीको उसका व्यक्तित्व या अपनापन कहते हैं। व्यक्तित्व का साधारण अर्थ है—व्यक्ति-विशेष का सहज रूप, स्वत्व, स्वास्थ्य, स्वाभाविक रूप। परन्तु इसका व्यावहारिक अर्थ अधिक व्यापक है। शारीरिक या स्वाभाविक भिन्नता तो सबमें जन्म से होती है। उनके ही आधार पर सबके व्यक्तित्व का निर्णय

1. A happy family is an earlier heaven

नही होता। शरीर एव स्वभाव की भिन्नता होते हुए भी जिनमें कोई विशेषता नही होती, उनकी गणना सर्वसाधारण में होती है। वे मुण्ड-मण्डली या भीड़ की सख्या बढ़ाने वाले, समाज, जाति या किसी कुल के अग-मात्र गिने जाते है। समाज, जाति या कुल के नाम से परिचित होने वालो का स्वतत्र व्यक्तित्व नही माना जाता।

व्यक्तित्व वह है जिससे किसीकी स्वतत्र सत्ता, आत्म-योग्यता, प्रभावता, श्रेष्ठता और असाधारणता प्रकट हो। व्यक्ति-विशेष के व्यक्तित्व में जब मौलिकता होती है, निरालापन होता है, तभी उसका स्वरूप जनसाधारण से भिन्न माना जाता है। दूसरे शब्दों मे, लौकिक जीवन में किसीकी अलौकिकता की व्यक्तता या विलक्षणता अथवा विशिष्टता ही उसको स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करती है। इस सम्बन्ध में दर्शनशास्त्र का यह सिद्धान्त ध्यान रखने योग्य है कि किसी वस्तु की महानता ही उसके प्रत्यक्ष या व्यक्त होने का कारण होती है। अणु-परमाणु सूक्ष्म होने के कारण ही अव्यक्त रहते हैं। मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। किसीका असाधारण विकास उसको व्यक्तित्व और स्वतन्त्र व्यक्तित्व देता है। तुच्छ बने रहने से मनुष्य अव्यक्त, अप्रसिद्ध एव सत्ता-महत्ता-विहीन होता है। जिस व्यक्ति के जीवन में प्रभाव, आकर्षण, तेज, आत्मबल और गुण-चरित्र का विकास होता है उसीके व्यक्तित्व की रजिस्ट्री समाज में होती है।

अतएव हमें यह जानना चाहिए कि जिस रूप में मनुष्य अपने नाम से पहचाना जाए, समाज, जाति या वर्ग-विशेष के नाम से नही, वही उसका व्यक्तित्व है। यह रूप कुछ अशों में जन्म से प्राप्त होता है और विशेष अशो में अपने बनाने से बनता है। बहुत-से लोग जन्म से ही विशेष लक्षण-सम्पन्न होते है, उनकी आकृति से तेज झलकता है, उनके आचार-विचार से उनकी प्रतिभा, स्वभावज सद्गुणों की आभा टपकती है और वे सर्वसाधारण से अधिक निर्मुक्त एव ऊचे लगते हैं। जन्मजात व्यक्तित्व का आगे के विकास पर बडा प्रभाव पड़ता है। बहुत-से लोग जन्म से विलक्षण न होते हुए भी स्वाध्याय, गुणों के सचय और कर्म से संस्कारित करके अपने को दूसरों की दृष्टि में महान् बना लेते है। बहुत-

से लोग ऐसे हैं जो जन्म से सतेज, प्रभावशाली होते हुए भी अपने को बिगाड़ लेते हैं। इसलिए स्थायी व्यक्तित्व उसीको मानना चाहिए जो अपने बनाने से बनता है। सक्षेप में उन बातो को जान लीजिए जिनसे व्यक्तित्व बनता या बिगड़ता है।

स्वभाव

स्वभाव से मनुष्य के आत्म-स्वरूप का सच्चा विज्ञापन होता है। स्वभाव से मनुष्य प्रिय-अप्रिय, मान्य या हेय बनता है। स्वभाव से दूसरे लोग ही नही, अपना शरीर भी प्रभावित होता है। आकृति, व्यवहार, वाणी, अंग-चेष्टा—सभीपर छाप पड़ती है। प्राचीन काल से विद्वान् लोग इसको मानते आए हैं। भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त यूनानी विद्वान् भी इसको मानते थे कि शारीरिक बनावट में स्वभाव की झलक मिलती है और उसके अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व-निरूपण हो सकता है। प्रसिद्ध कवि होमर इसका समर्थक और विशेषज्ञ था। दार्शनिक पंडित सुकरात भी इस रहस्य को मानता था और महत्त्व देता था। अद्वितीय पाश्चात्य दर्शनशास्त्री अरस्तू ने अपने एक प्रसिद्ध ग्रन्थ में आकृति, वर्ण, अग, वाणी आदि के आधार पर मानव-स्वभाव की परीक्षा का वर्णन छः अध्यायों में किया है। वाद के अनार्य द्विजों में हर्बर्ट स्पेन्सर, डार्विन आदि ने इस विषय का वैज्ञानिक विश्लेषण करके इसकी सत्यता को सिद्ध किया है। सबका यही मत है कि प्रत्येक मनोभाव का विशेष लक्षण होता है, जो शरीर पर प्रकट होता है। और उसके अनुकूल अग-चेष्टाए होती है। जब कोई मनोभाव स्वभाव के रूप में स्थायी हो जाता है तो उसके स्थायी लक्षण शरीर पर और शारीरिक चेष्टाओं में मिलते है।

प्रत्येक दशा में स्वभाव आकृति से प्रतिबिम्बित होता है। इस विषय में प्राचीन यूनानी ग्रन्थो में एक घटना का उल्लेख है। एक वार एक मनोवैज्ञानिक ने सुकरात को देखकर कहा कि यह आकृति और लक्षणों से विषयी, मूढ़ और आलसी प्रकट होता है। सुननेवालों ने मनोवैज्ञानिक की बातों पर विश्वास नही किया, परन्तु सुकरात ने कहा, "इसका कथन सत्य है—ये बाते मेरे स्वभाव में जन्मगत थी। मैंने दर्शनशास्त्र

के अध्ययन से अपने को सस्कारित कर लिया है।"

साराश यह है कि स्वभाव की सरलता, कुटिलता या जटिलता से मनुष्य के आकार-प्रकार, पारस्परिक व्यवहार और सम्पूर्ण व्यक्तित्व में भेद पडता है। अतएव स्वभाव को सरल एवं उन्नत वनाना चाहिए। उससे व्यक्तित्व का स्वाभाविक आकर्षण वढता है। मनस्विता से पुरुषार्थ प्रदीप्त होता है। सरल स्वभाव से ही व्यक्तित्व प्रकट होगा, अन्यथा मनुष्य गोरख-धंधा जैसा लगता है। जव तक व्यक्तित्व सरल न हो तव तक वह स्पष्ट कैसे होगा ! कुटिल व्यक्तियो को कोई नही पूछता है। खारे समुद्र के पास चिडिया अपनी प्यास बुझाने नही जाती।

गुण और चरित्र

गुण और चरित्र से व्यक्ति को विशेष प्रधानता मिलती है। गुणो से वह गुणित, गण्यमान्य होता है। गुणवान् एव चरित्रवान् व्यक्ति कुरूप, निर्धन, अकुलीन होकर भी प्रभावशाली तथा लोकमान्य होता है। जाति और कुल की महत्ता इनके आगे क्षीण हो जाती है। जाति-कुल व्यक्तित्व को वनाने में सहायक अवश्य होते है, परन्तु इतने नही। जाति-कुल के कारण ही किसीका वडप्पन या छोटापन सिद्ध नही होता। चीनो का मान इसलिए नही होता कि वह गुड की बेटी है। अग्निजात होने पर भी राख राख ही रहती है। गुण-चरित्र के प्रभाव से हीनजात व्यास पण्डित-समाज मे वन्दित होते है। व्यास अविवाहित मत्स्यगंधा की पाप-सन्तान थे। पराशर ऋषि ने उसको योजनगधा (अर्थात् जिसके शरीर की सुगन्ध एक योजन तक जाए) बनाकर उसके द्वारा व्यास को पैदा किया था। व्यास ने अपनी विद्वत्ता, तपस्या और श्रेष्ठ आचरण से कुल-कलक को धोकर अपने व्यक्तित्व को ऊचा उठाया। साधारण लोक-जीवन में देखिए तो यही ज्ञात होगा कि गुणी और चरित्रवान् की ही लोक में प्रतिष्ठा है। किसी चित्र में जिस प्रकार हम उसके रगो के मेल को नही वल्कि उसकी कला को महत्त्व देते है, किसी कविता में जैसे शब्द-योजना को नही उसके भाव को महत्त्व देते हैं और पुष्प मे उसके आकार और वाह्य सौदर्य को नही उसके प्राकृतिक रूप-गन्ध को मान देते है, उसी प्रकार मनुष्य के सम्वन्ध में उसके शारीरिक रूप को नही, वल्कि उसके

गुण, चरित्र को विशेष स्थान दिया जाता है। वेश्या शरीर से रूपवती हो सकती है, परन्तु समाज उसके व्यक्तित्व को स्वीकार नही करता; यद्यपि उसमें कुछ गुण होते हैं, परन्तु चरित्र नही होता। गुण के साथ नैतिकता होने से ही मान बढ़ता है। उन्हीसे मनुष्य का लोकरंजक रूप बनता है। नैतिकता-नाश से वह पतित बन जाता है। नेपोलियन ने कहा कि बड़े-बड़े लोग भी अपनी चारित्रिक दुर्बलता के कारण पथभ्रष्ट, मानभ्रष्ट हो जाते है। स्त्रियो के पीछे कितने ही लोग अपने को नष्ट कर देते है।

कार्य-दक्षता

किसी भी विषय में कार्य-पटु, प्रवीण, सिद्धहस्त, विशेषज्ञ होने से मनुष्य की आत्म-समर्थता, उपयोगिता व्यक्त होती है और उसके कार्य-क्षेत्र में उसकी सत्ता स्वीकार की जाती है। कोई भी रचनात्मक कार्य सुचारु रूप से करके मनुष्य अपने को ऊचा उठा देता है, इसमें संशय नही।

वाणी-बल

वाणी-बल के विकास से व्यक्तित्व का अत्यधिक विकास होता है। वाणी की सिद्धि से मनुष्य लोकनायक बन जाता है। उसीमें मनुष्य का अन्तर्बल, प्रभाव-बल प्रकट होता है। अतएव आत्मोत्थान के लिए इस श्रेष्ठ साधन का आश्रय लेना चाहिए। जीवित होने का लक्षण है, बोलना। वाणी बन्द होने पर प्राणी मृतक या मृत-तुल्य माना जाता है। मनुष्य होकर जीवित होने का लक्षण है सार्थक वाणी बोलना; क्योकि जीवो में मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जो भावो को भाषामय बनाकर सार्थक कर सकता है। अतएव अपनी इस विलक्षण शक्ति के विकास से विलक्षणता प्राप्त करनी चाहिए।

वाणी-प्रयोग के कई रूप हैं। सबसे प्रभावक रूप है—भाषण। अपने भाषणो से लोग जनता को वश में कर लेते है। अच्छा भाषण वह होता है जो विचारोत्तेजक हो, मर्मस्पर्शी हो और जिससे सार्वजनिक हित का सम्पादन हो। भाषण का प्रयोजन देर तक जोर से चिल्लाना नही होता। एक योजना पर, धैर्य, विश्वास के साथ, सप्रमाण और सक्षिप्त दिया हुआ भाषण ही प्रभावोत्पादक होता है। वक्ता बनने के

लिए व्यापक दृष्टिकोण रखना चाहिए, एक लक्ष्य रखना चाहिए, एक सिद्धान्त और नैतिक मत व्यजित करना चाहिए। संक्षेप में सप्रभाव कहा हुआ छोटा-सा सारगर्भित भाषण लम्बे-चौडे व्याख्यान से कही अधिक हृदय-आन्दोलक होता है। अफ्रीका की कुछ जातियों में एक विचित्र प्रथा है। वहा वक्ता को एक पैर पर खडे होकर ही व्याख्यान देना होता है। उठे हुए पैर के गिरते ही उसको अपना भाषण समाप्त कर देना होता है। इस प्रथा के आविष्कारको का प्रयोजन यह लगता है कि कम से कम समय में अधिक सारयुक्त बात कहनी चाहिए; श्रोता के समय का अपव्यय न करना चाहिए। दूसरी बात यह होती है कि 'विचलित हुए तो गए।' अतएव दृढ होकर भाषण करना चाहिए, निश्चयात्मक बुद्धि से आशा-धैर्य-विश्वास का देवदूत बनकर बोलना चाहिए, मूर्ख जनता हो तो उसको हाकना चाहिए, भीरु हो तो उसका हाथ पकड़कर खीचना चाहिए, समझदार हो तो उसको आगे का मार्ग बतलाना चाहिए—नेतृत्व करना चाहिए; सकट से पूर्व सचेत करके उज्ज्वल भविष्य की ओर सकेत करना चाहिए। तर्क-सम्मत, न्याययुक्त वाणी बोलने से लोकमत अपने पक्ष में होता है और इस प्रकार कुशल वक्ता का व्यक्तित्व लोक-दृष्टि में ऊचा उठता है।

वाणी-बल का दूसरा उपयोग लिखने में होता है। लेखन-शक्ति से मनुष्य महाशक्तिशाली बन जाता है। उससे वह देश-समाज में क्रान्ति-शान्ति कुछ भी कर सकता है। सुन्दर सारगर्भित शैली में जीवनसाहित्य आदर्श साहित्य प्रस्तुत करनेवाले व्यक्ति अपनी रचनाओं से लोक में अपना विशेष स्थान बना लेते है। उनकी आर्थिक, पारिवारिक, शारीरिक और चारित्रिक विवशताएं भी उनकी साहित्यिक कीर्ति के पीछे छिप जाती है। बर्नार्ड शॉ कुरूप थे, परन्तु अपने ग्रथो में महारूपवान् लगते है, उनकी प्रतिभा साकार होने पर उनकी कुरूपता को ढक देती है। उनके जीवन की एक घटना है कि एक बार उनके एक नाटक के अभिनय के उपरान्त उसकी प्रधान पात्री, एक अनिन्द्य सुन्दरी, शॉ की योग्यता के कारण उनपर मुग्ध हो गई। उसने कहा कि यदि हमारा-आपका विवाह-सम्बन्ध हो जाए तो उसके फलस्वरूप जो सन्तान होगी

वह अभूतपूर्व होगी क्योंकि उसमें आप-जैसी विलक्षण प्रतिभा और मेरे जैसा आकर्षक रूप होगा। बर्नार्ड शॉ ने कहा कि ठीक है, परन्तु दैवयोग से यदि उलटा हुआ तो क्या होगा, अर्थात् मेरे जैसा कुरूप हुआ और तुम्हारी जैसी दुर्बुद्धि हुई तो वह संतान कैसी होगी ?

तात्पर्य यह है कि लेखन-शक्ति से व्यक्तित्व का आकर्षण बढ जाता है। आकर्षण ही नही, बल भी बढ़ जाता है। आजकल पत्रकार होने में एक बड़ा लाभ यही है कि लोकमत हाथ में आ जाता है। अच्छे पत्रकार से सभी डरते हैं। नेपोलियन जैसा महावीर भी समाचारपत्रो से डरता था। उसने एक बार कहा था कि मै एक लाख सगीनों की अपेक्षा तीन समाचारपत्रों से अधिक डरता हूं।[1]

लेखक या पत्रकार होकर भी अपनी महिमा निश्चय ही प्रकट की जा सकती है। दिग्गज विद्वान् को सब दिग्गज जैसा महान् मानते है। आलोचक को छोटा कौन मानता है? गवर्नमेंट भी उससे शकित रहती है।

वाणी-व्यवहार में इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि कही सत्य की हत्या न हो। सत्य को दबाने से वाणी का प्रभाव कम हो जाता है। निर्भीकता, विचार-स्वतन्त्रता और सतर्कता से उसके शरीर में आत्मा, बुद्धि और मन की स्थापना होती है, वाणी जीवित हो जाती है।

गम्भीरता

विचार, वाणी, कर्म—तीनों की गम्भीरता से व्यक्तित्व का मान बढ़ता है। चंचलता से हलकापन प्रकट होता है। गम्भीर रहने से मनुष्य सबसे घुलता-मिलता नही, यह सत्य है, परन्तु वह औरों से अधिक ठोस प्रतीत होता है। लोग उसका सम्मान करते है; समझते है कि इस अगाध समुद्र में न जाने कितने रत्न और मगरमच्छ हो सकते हैं! कोई लोक-नेता या उच्च-पदाधिकारी जब तक गम्भीर रहता है, तभी तक उसके नीचेवाले उसका सम्मान करते है। सर्वसुलभ होते ही उसका व्यक्तित्व पानी में चीनी की तरह गल जाता है। गम्भीर और शान्तचित्त होना

---

1. I fear three newspapers more than a hundred thousand bayonets
—Napoleon

शासकों और लोकनायकों का एक असाधारण गुण माना गया है। फ्रांस के वहुप्रसिद्ध भूतपूर्व मत्री कार्डिनल रिचलू का कथन है कि उचित रीति से राष्ट्र-शासन करनेवाले के लिए अधिक सुनना और कम वोलना नितान्त आवश्यक है।[1]

एक सुप्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि शासक के लिए अव्यग्रता सबसे आवश्यक गुण है।[2]

अस्थिरता, असहनशीलता और क्रोध से चित्त की शान्ति और गम्भीरता नष्ट हो जाती है। और कम से कम क्रोध का यह परिणाम होता है कि अधिकारी व्यक्ति मर्यादाभ्रष्ट होकर अपने आश्रितों के अधीन हो जाता है। इसीलिए विद्वानो का मत है कि क्रोध आने पर गम्भीर हो जाना चाहिए, क्योंकि क्रोध को व्यक्त करने में विलम्ब करना ही उसके नाश की एकमात्र अमोघ ओषधि है।

अलौकिकता

लौकिक जगत् में अलौकिक लगने से मनुष्य का व्यक्तित्व विलक्षण वनता है, यह हम कह चुके हैं। उस अलौकिकता का तात्पर्य यह नहीं है कि अप्राकृतिक कार्य करो। उसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य सर्व-साधारण की पहुच से वाहर रहे। सर्वसाधारण स्वार्थग्रस्त रहते है, अत-एव स्वार्थत्याग अलौकिक गुण है। सर्वसाधारण वासनाओ में फसे रहते है, अतएव [illegible]नामुक्त होना अलौकिकता है। प्रलोभनमुक्त होना तथा मोहमुक्त [illegible] अलौकिकता है। जव किसीके चरित्र में साधारण मानवीय दुर्वलताओं का आभास नही मिलता, तभी हम उसको अलौ-किक प्राणी मानकर उसके व्यक्तित्व का सम्मान करते हैं। ऐसे अनेक वृत्तान्त है, जिनसे प्रकट होता है कि मनुष्य जव तक असाधारण वना रहता है तव तक लोग उसको देवता की तरह पूजते है। यदि वह किसी स्त्री के प्रेम में फसकर आचरणभ्रष्ट हो जाता है अथवा कोई अन्य चारित्रिक दुर्वलता दिखलाता है तो लोग समझते है कि यह तो हमारी ही कोटि का

1 One must listen a great deal speak little to govern a nation properly
—Richeleu

2 Coolness is the most important quality for man destined to rule
—Andie Mauris

दुर्बल प्राणी है। वहीं उसके प्रति आदर-श्रद्धा समाप्त हो जाती है। इसलिए साधारण व्यक्तियों जैसी कोई भूल न करनी चाहिए। उच्चपद पर रहकर किसीको यह समझने का अवसर न देना चाहिए कि आप केवल लौकिक प्राणी है—अर्थात् वही हैं जो दूसरे भी है। इसके लिए कुछ अंशों तक अपने व्यक्तित्व को रहस्यमय बनाना पड़ता है। अपना एक रूप रखना चाहिए जो बार-बार देखने पर भी वैसा ही लगे, जो दूर से भी उतना ही प्रभावशाली हो, जितना निकट से। 'नाम बड़े और दर्शन छोटे' की उक्ति चरितार्थ नही होनी चाहिए। व्यक्तित्व को सरल रखकर भी उसको गम्भीरता से, चतुराई से, रहस्यमय बनाया जा सकता है। आकाश निर्मल होने पर भी रहस्यपूर्ण है।

संगति

सगति का प्रभाव भी व्यक्तित्व के निर्माण पर पड़ता है। तुलसी के शब्दों मे 'सत्सगति महिमा नहि गोई।' अर्थात् सत्संगति की महिमा छिपी नही है। और उन्हीके शब्दो में 'को न कुसंगति पाइ नसाई।' कुसंगति से कौन नही नष्ट होता! यह प्रभाव तो अपने चरित्र पर पड़ा ही है, अपने व्यक्तित्व के विकास पर और भी अधिक पड़ता है। इसको इन पक्तियों से समझिए : 'गगन चढइ रज पवन प्रसंगू।' (तुलसी) तथा 'गो गर्दराह हैं मगर आधी के साथ है।' (अकबर)। बड़ो की सगति से छोटे भी बड़े बन जाते हैं या बड़ों जैसे लगते है। बड़ो के नाम ही में बड़ी सिद्धि होती है। उनके दर्शन-मात्र से हृदय में सत्प्रेरणाएं उठती है। मनुष्य प्रत्यक्ष जीवन का एक आदर्श देखता है। सब दृष्टियों से सत्पुरुषो के सम्पर्क में रहना आत्म-विकासक होता है। महात्मा व्यास ने लिखा है कि महापुरुषों का दर्शन कभी निष्फल नही जाता। द्वेष, अज्ञान, प्रमाद या प्रसंगवश भी लोहा यदि पारसमणि से छू जाए तो वह सोना ही हो जाता है :

> महतां दर्शनं ब्रह्मन् जायते नहि निष्फलम्।
> द्वेषादज्ञानतो वापि प्रसङ्गाद्धि प्रमादतः।
> अयसः स्पर्शसंस्पर्शो रुक्मत्वायैव जायते। (महाभारत)

स्वावलम्बन

व्यक्तित्व के विकास के लिए सर्वदा स्वावलम्वन का ही आश्रय लेना चाहिए। सहायकों की प्रतीक्षा में बैठने से अपनी प्रगति रुकी रहती है। इस विषय में टैगोर का 'एकला चलो रे' उपदेश मान्य है। कर्तव्य का निश्चय करके और आत्म-शक्ति को संतुलित करके एक मार्ग पर चल निकलना चाहिए। जो अपनी रुचि का विषय हो उसको मौलिक बनाकर उसकी साधना में अपने को लगाना चाहिए। जहां कठिनाइयां मिले वहा 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' न चिल्लाकर पूर्ण मनोवल और पुरुषार्थ के साथ अपनी परीक्षा देनी चाहिए। अग्नि-परीक्षा के बाद ही स्वर्ण कुन्दन होता है। हीरा खरादे जाने के बाद ही मूल्यवान् होता है। यह सोचकर साहस के साथ कठिनाइयो में कूद पड़ना चाहिए। सकट को पार कर जानेवाला लोक-पूज्य होता है।

क्रमशः विकास

व्यक्तित्व का जब क्रमशः विकास होता है तभी वह स्थायी रहता है। विकास तब होता है जब सफलता के बाद सफलता की शृखला वधी रहे, जब कीर्ति अखडित रहे। अंग्रेजी के किसी विचारक ने कहा कि प्रसिद्ध होने का यह एक दण्ड है कि मनुष्य को निरन्तर उन्नतिवान् बने रहना पड़ता है।[1]

क्रम खण्डित होने पर उसको पुनः जोडना कठिन होता है। साख उखडने पर फिर नही बैठती। इसलिए अपने प्रभाव को प्रतिदिन बढ़ाते रहना चाहिए। यह तभी सम्भव है जबकि कहने से अधिक करके दिखाया जाए। कहने-मात्र या बडप्पन का अभिनय करने-मात्र से धाक नही जमती। सिनेमा में राम का अभिनय करनेवाले महापात्र की प्रतिष्ठा उतनी कभी नही हो सकती जितनी मर्यादा पुरुषोत्तम राम की। वास्तविकता का ही मान होता है। आत्मोत्थान करनेवाले का ध्येय सदैव यह होना चाहिए कि वह साधिकार, अनुपम, अनन्य, सर्वाग्रणी बनकर दिखला देगा। 'मनसा वाचा कर्मणा' एक होकर उसको आत्म-विज्ञापन करना चाहिए और यथाशक्ति कीर्ति, धन और स्वास्थ्य

1 It is the penalty of fame that a man must ever keep rising

का संचय करना चाहिए।

सारांश

मनुष्य एक घड़ी की तरह है, जिसका संचालन-यत्र गुप्त रहता है, काम करनेवाले हाथ बाहर रहते हैं। दोनों जब ठीक रहते है तो मनुष्य घड़ी की तरह समय के साथ चलता हुआ विकास करता है। अतएव मनोबल और पुरुषार्थ को संयुक्त करके निश्चित गति से बढ़ना चाहिए।

2

मनुष्य का मस्तिष्क

मस्तिष्क-बल मनुष्य का प्रधान बल है

अथर्ववेद के शब्दों में मनुष्य का मस्तिष्क एक 'हिरण्यमय कोप' अर्थात् स्वर्ण से भरा हुआ कोष है। इसका स्पष्ट प्रमाण एक तो यही है कि शुद्ध शारीरिक परिश्रम करनेवाला व्यक्ति (मजदूर) दिन-भर में अधिक से अधिक एक रुपया कमाता है, परन्तु एक बुद्धि-व्यवसायी उतने ही समय मे लाखो-करोड़ो रुपये कमा सकता है और कमानेवाले कमाते ही है। दूसरा प्रमाण यह है कि शरीर के हड्डी-मास एव रासायनिक तत्त्वों का मूल्य चार या पाच रुपये तक हो सकता है, परन्तु मानव-मस्तिष्क से निकली हुई एक तत्त्व की बात कभी-कभी लाखो रुपये की हो जाती है।

'हिरण्य-कोष' का अर्थ यह नही है कि मस्तिष्क एक रुपया बनाने का यन्त्र है। उसका व्यापक अर्थ यह है कि मस्तिष्क मानवजीवन की प्रधान सम्पदा है। मनुष्य की सभी सम्पत्तियों एव विलक्षणताओं का वही उत्पादक है। वही उसकी प्रधानता का मूल आधार है। कहा भी है कि 'सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम्'—सब अगो में सिर प्रधान है। मस्तिष्क-बल का विकास ही मनुष्यता का प्रथम लक्षण माना जाता है।

शरीर से मनुष्य एक बहुत साधारण कोटि का जीव है। शरीर-सम्बन्धी कोई भी ऐसा बल और कर्म नही है जिसमें कोई न कोई पशु उससे श्रेष्ठ न हो। सिह जैसा पराक्रम और नाद, हाथी जैसा आकार-प्रकार, गृद्ध जैसी दृष्टि, पक्षियों जैसी गमन-शक्ति घोड़े-गधे जैसी भार वहन करने की शक्ति मनुष्य को कहां सुलभ है! वह तो जन्म से ही शारीरिक असमर्थता लेकर, जकड़ा हुआ, रोता-चिल्लाता, अर्द्ध-विक्षिप्त-सा पृथ्वी पर आता है; विना सिखाए अपने पैरो पर न तो खड़ा हो सकता है और न कोई काम ही कर सकता है। पशु-पक्षियों के बच्चे जन्म से ही समर्थ और शारीरिक क्रियाओं में स्वावलम्बी होते है। इन

असमर्थताओं के होते हुए भी मनुष्य केवल अपने मानसिक बल की श्रेष्ठता से सर्वसमर्थ एवं सर्वप्रधान प्राणी बन जाता है। ईश्वर के बाद सर्वशक्ति-सम्पन्न वही माना जाता है। मस्तिष्क-बल से साधनों का अविष्कार करके वह पशुवर्ग पर विजय प्राप्त करता है, प्रकृति से अतिरिक्त शक्ति लेता है और ससार के भीतर अपने एक नये संसार का निर्माण करता है। वायुयानों पर वैठकर वह सैकड़ो-हजारों पक्षियो की सम्मिलित गति से आकाश में गमन करता है। ध्वनि-विस्तारक यन्त्र से वह ऐसी आकाश-वाणी सुनाता है कि वह पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक गूंज जाती है। मनुष्य-निर्मित यन्त्रों में सहस्रों घोड़ो की शक्ति समाई रहती है। उसकी एक मालगाड़ी पर लाखो गधों का भार ढोया जाता है। दूरदर्शक यन्त्रो से वह दूर के ग्रहो के भीतर भी झांक लेता है। जो उनसे भी नही दिखलाई देते, उनको ज्योतिष-गणित से देख लेता है। अपनी ज्ञान-दृष्टि से वह भूत-भविष्यत्-वर्तमान सबको देखने की क्षमता रखता है। उससे वह प्रत्यक्ष को ही नही, अप्रत्यक्ष को भी देखता है। संसार-व्याप्त अनन्त शक्ति-तरगों का अनुभव करता है और उनको पकड़ता है।

शारीरिक सम्बल की सीमा है, मानस-सम्बल की कोई सीमा आज तक देखी नही गई। पैरों से मनुष्य एक सीमा तक ही दौड़कर जा सकता है, और शरीर से मृत्यु तक दौड़ सकता है, परन्तु मस्तिष्क के विचार जहां तक दौड़कर जा सकते है, वह सीमा आज तक निर्धारित नही हो सकी। शरीर-नाश के बाद भी मस्तिष्क भविष्य की शताब्दियों में समाया रहता है और कई युगों तक उसके विचार सजीव रहते है। मस्तिष्क-बल से मनुष्य जितना ऊंचा उठ सकता है, उसकी नाप भी नही हो सकती। एक से एक बढकर कवि, विचारक, आविष्कारक, राजनीतिज्ञ और कूट-नीतिज्ञ पैदा होते ही रहते हैं। उनकी विशालता का अनुमान भी नही लगाया जा सकता। एक छोटा-सा प्राणी भी एक विशाल जगत् को अपने मस्तिष्क के एक कोने में डाले रहता है। यही नही, वह तो विराट्रूपधारी परमेश्वर को भी अपने अन्तस्तल में बैठने के लिए निमन्त्रण देता रहता है। उसका पेट सेर, दो सेर भोजन से भर जाता है, जेब, तिजोरियां कुछ लाख रुपयों से भर जाती है; परन्तु चित्त तो

संसार की समस्त सम्पत्तियो से भी नही भरता और कभी-कभी दो-चार बातों से ही भर जाता है।

वास्तव में मस्तिष्क-बल असीम है। उसकी असीमता के कारण मानव-शक्ति भी असीम है। लोग भ्रमवश अपने मन मे अपनी समर्थता की एक कल्पित सीमा बना लेते है। वह उनकी व्यक्तिगत सीमा होती है। मस्तिष्क के विकास की कोई सीमा नही बांधी जा सकती, यह असख्य प्रमाणो से प्रसिद्ध है। सारी बातों से यह स्पष्ट है कि मनुष्य का मस्तिष्क ही उसका कल्पतरु, सर्वसिद्धिदायक कवच, महत्त्व का महत्तत्व और अपना सर्वस्व है। जिस प्रकार एक हजार की सख्या में से यदि एक को निकाल लिया जाए तो उसके आगे के शून्य, शून्य—अर्थात् मूल्य-रहित हो जाते हैं, उसी प्रकार मानवजीवन से उसके मस्तिष्क को अलग कर देने से उसकी 'एकता' या महत्ता और सारी मनुष्यता ही समाप्त हो जाती है। किसी पागल की दशा को देखकर यह बात ठीक से समझी जा सकती है। जीवित रहते हुए और शरीर के सबल होते हुए भी ऐसा व्यक्ति पशु से भी अधिक निर्बल, निस्सहाय और बेकार हो जाता है। मानसिक बल की महत्ता पर एक दृष्टि से और विचार कीजिए। शरीर से निर्वल होकर भी बुद्धिमान् व्यक्ति करोड़ों बलवानों पर अपना आधिपत्य स्थापित करता हुआ देखा जाता है। शरीर-बल पर मस्तिष्क-प्रसूत उपाय-बल की सर्वदा विजय होती आई है। मनुष्य को संसार में ऐश्वर्य अर्थात् देवत्व देनेवाला उसका मस्तिष्क ही है। भीतर से नही, वाहर से भी वह मानव की महिमा का प्रतीक है। सिर उठाने से मनुष्य की मनुष्यता उठती है, उसके झुकाने से दीनता प्रकट होती है। वैभव-सूचक वस्तुएं मस्तक पर ही रखी जाती है—जैसे पगड़ी, टोपी। मस्तक पर पुरुषो का विजय-तिलक और स्त्रियों का सौभाग्य-बिन्दु लगता है। महान् की महत्ता कहां नही पूजी जाती !

मस्तिष्क का साधारण परिचय

मानव-बल के प्रभाव को समझते हुए भी स्वयं मस्तिष्क के स्वरूप को समझना कठिन है। सत्य बात यह है कि कोई भी ठीक-ठीक यह नही बता सकता कि वह (मस्तिष्क) क्या है और कैसा है। स्थूल रूप

से वह कपाल के भीतर सुरक्षित एक छोटा-सा चेतना-यन्त्र है, जो संपूर्ण शरीर के चेतना-चक्र[1] से सयुक्त होकर इन्द्रियों को चेतना देता है और उनके द्वारा विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है। यह उसका अंगरूप है। उसका एक अनंगरूप भी है, जो अधिक शक्तिशाली एवं स्वतन्त्र रहता है। अंग-अनंग दोनों मस्तिष्क के पर्यायवाची है। मस्तिष्क का अगरूप तो वही है जिसको सभी शरीरशास्त्री जानते हैं और जिससे शरीर का समस्त चेतना-कर्म सम्पादित होता है। अनंगरूप भावनामय है, तत्त्वमय और अनुभवगम्य है, परन्तु प्रत्यक्ष नही। वह शरीररहित और भाव-शरीरधारी है। उस रूप में वह कैसा है, कितना वड़ा है, इसको कोई नहीं वता सकता। अतएव मस्तिष्क के विपय में इतना ही ज्ञात है कि वह क्या करता है और कैसे करता है तथा किस प्रकार व्यक्त होता है। उसकी जिन शक्तियों या प्रवृत्तियों से स्वयं उसका चेतना-भाव संचालित होता है, उनकी अनुभूतिमात्र होती है। एक वात का अनुभव और होता है कि मस्तिष्क का शारीरिक रूप ही उसके क्रिया-तत्त्वों का धारक होता है। वह विकृत हो जाता है तो चेतना-शक्ति स्वयं शरीर को प्रभावित नही कर सकती।

मनोवैज्ञानिकों ने मस्तिष्क की क्रिया-प्रणाली का अध्ययन करके उसको दो भागों में विभाजित किया है। सामने के उन्नत भाग को वृहत् मस्तिष्क या चेतन मन कहते हैं और पीछे के भाग को लघु मस्तिष्क या अन्तर्मन। इन्ही दोनो से भाव, विचार या संज्ञा-सम्वन्धी शारीरिक कार्य होते है। ज्ञान-तन्तुओं के यही केन्द्र-स्थान होते है। दूसरे शब्दों में चित्त-प्रवृत्तियों और सवेदनाओं के यही चेतना-स्थान होते है। मन नामक तत्त्व से ये दोनों अंग संचालित होते हैं। 'मन', चित्त, अन्तःकरण, हृदय और मस्तिष्क के अर्थ में भी व्यवहृत होता है। प्राचीन तत्त्वज्ञों ने हृदय के भावना-सम्वन्धी जो गुण-धर्म वताए है उनसे उनका अभि-प्राय मस्तिष्क से है। इस तथ्य को स्वर्गीय विद्वान् महामहोपाध्याय डाक्टर गणनाथ सेन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रत्यक्ष शरीर' में तर्कसहित प्रमाणित किया है। अतएव हमें मन को मस्तिष्क का क्रियातत्त्व मानकर

1. Nervous system

उसके दोनों अंगों के सम्बन्ध में कुछ जान लेना चाहिए।

चेतन मानस ज्ञान एवं विचार का स्रोत होता है। यही अंग कल्पना करता है, मनन करता है, चिन्तन, विवेचन और विवेक करता है। इस खण्ड पर मनुष्य का पूर्ण अधिकार रहता है। विद्या, अभ्यास, ज्ञान, व्यायाम और पौष्टिक तत्त्वों से इसको विशेष सक्रिय, कुशाग्र तथा प्रबुद्ध बनाया जा सकता है। इसको इच्छानुसार केन्द्रित और नियंत्रित किया जा सकता है। इसी भाग के विकास से ज्ञान और सम्पूर्ण मनुष्यत्व का विकास होता है। यही मनुष्य का भविष्य-निर्माता या भाग्य-विधाता होता है। तभी लोग कहते है कि ललाट में मनुष्य का भाग्य लिखा रहता है। यह अनुभवी होने के साथ-साथ विचारक और आविष्कारक भी होता है।

चेतन मन स्वभाव से स्वच्छन्द, चंचल और शीघ्रगामी होता है। ससार की अन्य कोई वस्तु इतनी स्वेच्छाचारिणी और तीव्रगामिनी नही होती। यह स्वर्ग तक दौड़ता है और पल-मात्र में शरीर खाट पर पड़ा रहे, तो भी मन हजार दो हजार मील की दूरी पर किसीके बन्द शयनागार में पहुंच सकता है। उसके आने-जाने की कही रुकावट नहीं; वह अपने ही रथ पर चलता है, जिसको मनोरथ कहते हैं। ब्रह्म के विषय मे कही हुई तुलसी की यह उक्ति उसके विषय में भी चरितार्थ होती है :

पग बिनु चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥ (मानस)

यह मन कभी खो जाता है, कभी चोरी हो जाता है, कभी जल-भुनकर राख हो जाता है, कभी फूल जाता है, कभी छोटा होता है और कभी किसी रस में मग्न होकर डूब जाता है। कभी यह कटाक्षमात्र से घायल हो जाता है, कभी केवल बातों से, और कभी गालियों को भी बड़े प्रेम से सुनता है—जैसे विवाह में। जिसमें यह रम जाता है, वही मनुष्य के लिए मनोरम हो जाता है, चाहे वह कितना ही कुरूप क्यों न हो! जहां से यह टूट जाता है, वहां से जीवन का सम्बन्ध टूट जाता है। चेतन मन का यह वर्णन कवित्वपूर्ण नही बल्कि यथार्थ है। जब यह मनमोदक खाता है तो मुख से अनायास लार टपकती है। मानसिक दुराचार की

अवस्था मे इन्द्रियां अकारण चंचल हो जाती हैं। कल्पित कोप से शरीर उत्तप्त हो जाता है। शरीर पर ही नही, सम्पूर्ण जीवन पर कल्पना-क्रिया का प्रभाव पड़ता है।

सक्षेप में यही समझना चाहिए कि चेतन मानस का क्षेत्र अत्यन्त उर्वर है। उसमें प्रत्येक क्षण विचारों की सृष्टि होती रहती है। वह केवल इन्द्रियों की सहायता से ही विषयोपलब्धि नही करता, बल्कि स्वतन्त्र रूप में भी कार्य करता है। किसी कार्य में लगे रहने पर वह उसी के सम्बन्ध में विचार करता है, परन्तु कार्य न होने पर वह स्वभाववश बाहर दौड़ने लगता है और यह समझ लेना चाहिए कि किसी कार्य मे चेतन मन के लग जाने का अर्थ है, उस कार्य में सम्पूर्ण शारीरिक शक्ति का एकसाथ लग जाना, क्योंकि वही शरीर का चेतनाधार होता है।

अन्तर्मन

अन्तर्मन चेतन मन का ज्ञानकोष होता है। अगरूप में यह गोलाकार होता है और इसको काटने पर इसमे पुस्तक के पन्नों जैसे छोटे-छोटे दल मिलते है। इस खण्ड में ज्ञान-विचार के तन्तु नही होते। चेतन मानस की तरह न तो यह स्वतन्त्र होता है और न बाह्य जगत् से सम्बद्ध। बाहर से चेतन मन द्वारा जो अनुभूति होती है, वही यहा पर स्मृति-रूप में सचित रहती है। देखी, सुनी अथवा विचार की हुई प्रत्येक बात यहां बैठती है और आगे विचारों की आवश्यकता के अनुसार उनसे संयुक्त होती है। एक ही बात को बार-बार देखने-सुनने या सोचने से उसकी गहरी छाप इस मन पर पड़ जाती है और समय पड़ने पर चेतन मन उन आकृतियों, ध्वनियों आदि के अनुरूप व्यक्ति को तत्काल पहचान लेता है। प्राय: ऐसा होता है कि किसीको देखकर आप उसको पहचान लेते हैं, परन्तु उसका नाम, पूर्व-परिचय का स्थान ध्यान में नही आता। बहुत-सी बातें मन में रहती है, परन्तु वे ठीक-ठीक याद नही आती या जीभ पर नही आतीं। इसका कारण यह है कि उनकी छाप अन्तर्मन पर गहरी नही रहती, पर रहती अवश्य है। होता यह है कि अन्तर्मन मे बहुत-सी बाते बैठती हैं और खो जाती हैं। कभी-कभी वे अनायास प्रकट हो जाती है और कभी-कभी बहुत-सी बातो के साथ उलझी हुई।

स्वप्नावस्था में कभी-कभी जो विचित्र दृश्य दिखलाई पड़ते है, उसका मुख्य कारण एक यह भी है कि मनुष्य के अन्तर्मन में कल्पित, पठित या प्रत्यक्ष घटित घटनाओ के क्रम उलझकर एक विचित्र रूप में प्रकट होते है। उन स्वप्नों से मनुष्य की आन्तरिक स्थिति का पता चल जाता है। स्वप्नो से यह पता चलता है कि चेतन मन किस प्रकार के विचारों से अपने घर को भर रहा है और मनुष्य की भीतरी स्थिति कैसी है।

अन्तस्तल विचारो का सरक्षक या धारक ही नही, उनका सचालक एव उत्पादक भी होता है। जीवन की इच्छाए, प्रवृत्तियां यही उत्पन्न होती है और वे चेतन मानस की विचारधारा को चुपचाप प्रभावित करती है। असख्य चित्त-प्रवृत्तिया, भावनाएं, वासनाए, जो स्वभाव के रूप में होती है, इसी खड में सोती रहती है। आशा, विश्वास, मान, मद श्रद्धा-भक्ति, प्रेम, भय, लोभ, क्रोध और मोह आदि के भाव-दुर्भाव यही उत्पन्न होते है। मनोज का तो वह पिता ही होता है। इन वासनाओ का या भावों का विचारो पर प्रबल प्रभाव पड़ता है। मन में भूत रहने से झाड़ी में भी भूत दिखाई पड़ता है, स्वभाव में वासना रहने से सती की आकृति में भी कामिनी का रूप प्रतीत होता है और सद्भाव रहने से वेश्या में भी बहन की छाया दिखाई पड़ती है। अन्तर्मन में कपट की भावना होती है तो कल्पनाकार मन हाथ को माला पकड़ाकर बैठा देता है और दान-दक्षिणा की कामना करता है। उसमें ग्लानि होती है, तो वह विचारक मन आत्महत्या का विचार करता है। उसमें वैराग्य होता है, तो मनुष्य लाखो-करोड़ो की सम्पत्ति को कौडी बराबर समझता है। वास्तव मे अन्तःकरण में जैसी भावना रहती है, उसीके अनुसार हमारा बाहरी दृष्टिकोण बनता है। किसी मन्दिर की मूर्ति में एक व्यक्ति देवता का आभास देखता है, दूसरा व्यक्ति उसीको एक निर्जीव पत्थर का टुकडा मानता है। क्यों ?—क्योकि पहले व्यक्ति के हृदय में देवता की भावना-मूर्ति रहती है जिसके अनुसार उसीकी छाया वह पत्थर की मूर्ति में देखता है। देवता पत्थर मे नही रहते, हृदय में रहते है। दूसरे के हृदय मे वह भावना नही रहती, इसलिए वह बाहर देवता को कहां से देखेगा ! किसीको एक व्यक्ति परम आदर-श्रद्धा की दृष्टि से देखता

है, दूसरा व्यक्ति उसीको घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखता है, इसका भी कारण वही है—प्रद्वेष या अतिसम्मान की भावना मन के सकल्पों के अनुसार ही उत्पन्न होती है : 'प्रद्वेषो बहुमानो वा सकल्पादुपजायते ।'—(स्वप्नवासवदत्ता) । तुलसी के शब्दों में :

जाकी रही भावना जैसी ।
प्रभु-मूरति देखी तिन्ह तैसी ।। (मानस)

एक पाश्चात्य विचारक ने भी लिखा है कि हम किसी वस्तु को उसके यथार्थ रूप में नही वल्कि उस रूप मे देखते हैं जिस रूप मे हम स्वयं होते हैं ।[1] अंग्रेजी में कहा भी है कि सौन्दर्य देखने वाले की आंख मे (पहले से ही) रहता है ।[2] यह सर्व-अनुभूत सत्य है कि विचारों को सरस या नीरस, आशामय या निराशामय बनानेवाला हमारा अन्तर्मन ही होता है, जिसमें हमारे स्वाभाविक एवं उपार्जित गुण सचित होकर हमारे दृष्टिकोण को बनाते हैं । वही हमारे सपूर्ण चरित्र और व्यक्तित्व का आधार होता है । वही हमारा साधन-क्षेत्र है ।

इस प्रसग मे यह स्मरण रखना चाहिए कि अन्तःकरण बाह्य जगत् के सम्पर्क में नही रहता । उसमें मनुष्य की कुछ सहजात वृत्तियां रहती हैं, जो चेतन मन को प्रेरित करती हैं । सद्भाव और दुर्भाव दोनों उसमें रहते हैं । प्रत्येक व्यक्ति में इनमें से एक की प्रबलता होती है । उनका पोषण या निराकरण मनुष्य स्वेच्छा से नही कर सकता । यदि दुर्भाव हैं, तो वे आसानी से हृदय-प्रदेश से निर्मूल नही किए जा सकते । उनको निर्मूल करने का एक ही उपाय है । यदि चेतन मन द्वारा हम लम्बे असें तक सद्विचार करे तो अन्तर्मन की सद्भावनाए पोषित होंगी । उनके प्रवल होने से दूषित मनोवृत्तिया दब जाती हैं । कल्याण के विचार करने से, सद्गुणो का अभ्यास करने से तथा शिक्षा द्वारा अन्तर्मन सस्कारित हो जाता है । अन्य किसी उपाय से अन्तस्तल में सद्वृत्तियों की सृष्टि नही हो सकती । यदि इसके प्रतिकूल किया जाए तो धीरे-धीरे भीतर दुर्भावनाओं का विकास होता है; मनुष्य व्यसनी, विषयी और आदतों

1 We see things not as they are but as we are
2 Beauty lies in the eye of the beholder

का गुलाम हो जाता है। सार रूप में यही समझना चाहिए कि सद्विचारों-दुर्विचारो तथा सत्कर्मो-दुष्कर्मो से हमारी आदते बनती है, स्वभाव बनता है, मनोदशा बनती है और मनोदशा के अनुसार सम्पूर्ण जीवन बनता है। स्वभाव या मनोदशा के दुष्ट होने पर विचार निर्बल हो जाते है और इन्द्रिया दुराचारिणी हो जाती है। यदि मनुष्य मन से क्लीब होता है तो उसका सारा पुरुषार्थ निष्फल हो जाता है। उपनिषद्कारों ने सत्य ही लिखा है कि मन ही मनुष्य के बन्धन एव मोक्ष का कारण होता है : 'मन एव मनुष्याणां कारण बन्धमोक्षयो: ।' मनोयोग से कोई तो मनोबल सचित करके अधिक समर्थ एव स्वतन्त्र बन जाता है और कोई अपनी आदतो की गुलामी से बन्धन-ग्रस्त हो जाता है। एक बार जो स्वभाव बन जाता है, वह कठिनाई से बदलता है, इसलिए नीति का वचन है कि 'स्वभावो दुरतिक्रम. ।'

अन्तर्मन के सम्बन्ध में दो-चार अन्य बातें भी जानने योग्य है :

1. शरीर के अगों की जो स्वाभाविक चेष्टाए होती है, उनका सचालक अन्तर्मन ही है। कोई विचार मस्तिष्क में आते ही यह मन शरीर के अगो को तत्काल सचालित कर देता है। इसमें जैसी दुर्भावनाए जगती है या उठती है, उनका प्रभाव शारीरिक चेष्टा और मुख-मुद्रा से तत्काल लक्षित होता है।

2 सबके मस्तिष्क का भावना-अग चेतना-अग से अधिक सबल होता है। सब विचारक भले ही न हों परन्तु एक अश तक भावुक अवश्य होते है। सबमें कुछ प्राकृतिक भावनाए होती है इसलिए हृदय-स्पर्शी या मर्मस्पर्शी बातो का प्रभाव अधिक पडता है। भावो को आन्दोलित करने से किसीकी विचारधारा उनके अनुकूल चल पड़ती है, परन्तु शुद्ध ज्ञान-क्षेत्र में भावुकता का प्रदर्शन सूर्योदय मे चन्द्र जैसा होता है। दोनो के अलग-अलग अवसर होते है। जहा ज्ञान-प्रयोग निष्फल होता है, वहा भाव की सजगता कार्य कर जाती है।

3 अन्तर्मन की दो प्रवृत्तिया सबमे प्रबल होती है—एक आर्थिक, दूसरी मनोवैज्ञानिक। पहली के अन्तर्गत क्षुधा या जीविकोपार्जन-सम्बन्धी वृत्तिया होती है; दूसरी के अन्तर्गत प्रेम-प्रतिष्ठा आदि की

प्राप्ति की भावनाएं। इनको विचारो के वेग से उखाड़ा नही जा सकता। अतएव विचारों को इस रूप में ढालना पड़ता है, जिससे क्षुधा और मान आदि की तृप्ति हो सके।

4. विचारों या सवेदनाओं की अधिक उत्तेजना से पहला आघात अन्तर्मन पर पडता है। वह निर्बल हो जाता है। इस स्मृति-अंग के निर्बल होने से बुद्धि नष्ट हो जाती है; क्योंकि धारक यत्र ही निर्वल होगा तो विचार ठहरेगे कहां, विचार-शृखला कैसे बधेगी ! पागलों की पहले स्मृति ही नष्ट होती है। क्रोध में भी पहले स्मृति-नाश होता है, जिससे मनुष्य भला-बुरा कुछ नहीं पहचान सकता और बेसिर-पैर के काम करता है। बहुत-से लोगों के व्यक्तित्व में जो विभिन्नता दिखलाई पड़ती है, उसका मुख्य कारण उनकी स्मृति-दुर्बलता है। विचारों या सवेदनाओं की शिथिलता अथवा अकर्मण्यता से मस्तिष्क मे जड़ता आ जाती है। अतएव छोटे-बड़े मन का कार्यक्रम तभी ठीक रह सकता है, जबकि दोनों में परस्पर आदान-प्रदान होता रहे। मनुष्य उन्नति तब करता है, जब उसके विचार उसकी भावुकता पर शासन करते है। इस-लिए चेतन मन को गृहपति और अन्तर्मन को गृहस्वामिनी मानकर उनको उनकी मर्यादा में रखने से सफलता मिलती है।

मस्तिष्क का प्रधान तत्त्व

मस्तिष्क की क्रिया-प्रणाली के आधार पर उसका साधारण परि-चय ऊपर दिया जा चुका है और इसका भी सकेत किया जा चुका है कि उसका सचालक मन नामक तत्त्व है। उसके अतिरिक्त मस्तिष्क का एक और अग है, जिसको बुद्धि कहते है। बुद्धि वह तत्त्व है जो मानस को प्रकाशित करता है। वह मानस से सयुक्त रहता है। ज्ञान, विवेक और स्मृति-सम्बन्धी जिन कार्यों का उल्लेख ऊपर हुआ है, वे बुद्धि के सहयोग से ही होते हैं। या यों कहिए कि मानस-खण्डों की सहायता से बुद्धि ही कल्पना, मनन आदि करती है। बुद्धि का हम अलग से वर्णन केवल उसकी कुछ विशेषताओं को व्यक्त करने के लिए कर रहे है।

बुद्धि मस्तिष्क की प्रधान शक्ति है, जिसका अधिकांश सबको जन्म से ही सुलभ होता है। उसका केवल एक विशेष रूप है, जो सर्वसुलभ

नही होता, वह है प्रतिभा। प्रतिभा उस बुद्धि को मानते हैं जिसमें मौलिक विचारो की सृष्टि करने की क्षमता हो। ऐसी विलक्षण बौद्धिक शक्ति विलक्षण व्यक्तियों को जन्म से प्राप्त होती है, और बनाने से नही वनती। वुद्धि-प्रयोग से कोई भी व्यक्ति बुद्धिमान् और विद्या-अभ्यास से विद्वान् हो सकता है; परन्तु सव प्रतिभाशाली नही हो सकते।

न्यायशास्त्र के मत से साधारण बुद्धि के दो भेद होते हैं—अनुभूति और स्मृति। इनका विवरण चेतन और अन्तर्मन के अन्तर्गत आ चुका है। उपयोग के अनुसार शास्त्रकारों ने उसके कुछ और भी भेद किए है। उनका भी सक्षिप्त परिचय जान लेना आवश्यक है। इस प्रकार की वुद्धि को आसक्त बुद्धि कहते हैं। वह किसी विषय में आसक्त होकर, तत्र स्वार्थ-भावना से उसपर विचार करती है। इसलिए वह अपने प्रधान धर्म—न्याय या विवेक—को भूल जाती है और विषय के यथार्थ रूप का निरूपण नही कर पाती। उत्तम बुद्धि निरासक्त होती है, जो न्यायपूर्वक किसी वस्तु का यथातथ्य निरूपण करती है। निरासक्त और आसक्त बुद्धि के आधार पर ही ज्ञानी-अज्ञानी का भेद किया जाता है।

इस प्रकार की बुद्धि सशयात्मक होती है, जो भ्रमपूर्ण, मलिन और द्विविधाग्रस्त रहती है। अल्पज्ञ, अपराधी और चंचल स्वभाव के मनुष्यों की वुद्धि सशयात्मक अतएव अस्थिर होती है। दूसरे प्रकार की बुद्धि निश्चयात्मक होती है, जो स्थिर, गम्भीर, स्वच्छ और ज्ञान से प्रकाशित रहती है।

इसी प्रकार बुद्धि के सदुपयोग, दुरुपयोग और अनुपयोग के आधार पर उसके अनेक भेद किए जाते है। मर्मज्ञता, कुशाग्रता, दूरदर्शिता, सूक्ष्मदर्शिता, प्रत्युत्पन्नता आदि उसके विशेष गुण माने जाते है और दीर्घसूत्रता, जड़ता, मुग्धता आदि आत्मनाशी अवगुण। सरलता, विचारों की स्पष्टता, सुव्यवस्थित ढग से भावो की अभिव्यजना, प्रगल्भता, सक्रियता, एकाग्रता और परिणामदर्शिता—ये उत्तम बुद्धि के गुण है। जो वुद्धि क्रियात्मक होती है, सप्रयोजन विचार करती है

और विचारों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए मनुष्य को प्रेरित करती है, वही बुद्धि विशेष गुणवती कही जाती है। सबसे निकृष्ट वुद्धि वह है जो मन्द होती है और शृगाल की तरह भीरु रहती है। ऐसे बुद्धि-वालों या वृद्धिहीनों को क्रमश: मन्दबुद्धि और शृगालबुद्धि कहते हैं।

बुद्धि की महत्ता

विस्तार-भय से हमने सूक्ष्म रूप में ऊपर बुद्धि का साधारण विवरण दे दिया है। उसके सदुपयोग के सम्बन्ध में हमें सर्वप्रथम यही कहना चाहिए कि बुद्धि की उपयोगिता से ही मनुष्यता की प्रतिष्ठा होती है। इस अध्याय के प्रारम्भ में हम मस्तिष्क-वल की प्रधानता के सम्वन्ध मे जो कुछ लिख चुके है वह वस्तुतः बुद्धि-वल की श्रेष्ठता का वर्णन है। बुद्धि-प्रधान जीव होने के कारण मनुष्य सर्वप्रधान जीव है। हितोपदेश में सत्य ही कहा है कि जिसके पास बुद्धि है, वही बलवान् है : 'बुद्धिर्यस्य वलं तस्य'। मानव-जगत् में हम प्रत्यक्ष ही देखते है कि जो बुद्धिमान् हैं, वे ही स्वतन्त्र, समृद्ध एवं शक्तिमान् हैं। बौद्धिक स्वतन्त्रता से मनुष्य वन्दीगृह में भी स्वतन्त्र रहता है। गांधीजी उस समय भी सर्वस्वतन्त्र थे जब सारा देश पराधीन था, क्योंकि वे बुद्धि से स्वतन्त्र थे। गांधीजी नि:शस्त्र होते हुए भी अति-शक्तिमान् थे और कौन नही जानता कि उस क्षीणकाय मनुष्य ने केवल वुद्धि-साधना से अकेले खड़े होकर दिग्विजेता अंग्रेजों को सात समुन्दर पार खदेड़ दिया ! अपने साधारण जीवन में देखिए—किसी कर्म के सम्पादन में एक वुद्धिमान् और एक मूर्ख की शारीरिक क्रियाओ में कोई अन्तर नही होता, केवल बुद्धि का अन्तर होता है, जिसके कारण वुद्धिमान् का कार्य सफल होता है और मूर्ख का विफल :

प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्य्ययोगे समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धि.। (भास)

बुद्धिमान् से कही अधिक कठोर परिश्रमी होकर भी मूर्ख केवल इसलिए नही सफल होता कि वह कार्य-कुशल नही होता। अपनी वुद्धि-हीनता और विचारों की दासता के कारण वह परतन्त्र तथा बुद्धिमानो का आश्रित वना रहता है। हितोपदेश में लिखा है कि बुद्धिहीनों से वुद्धिमानों की जीविका चलती है : 'विदुषां जीवनं मूर्खः।'

बुद्धि की उपयोगिता पर एक दृष्टि से और विचार कीजिए—समय सबके लिए एक-सा रहता है, परन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति उसीको कामधेनु बनाकर दुहता है और बुद्धि-रक उसको व्यर्थ गवा देता है। ऐसे व्यक्ति के हाथ से समय जब तीर की तरह निकल जाता है, तब वह सचेत होकर खोए हुए अवसर के पीछे किंकर्तव्यविमूढ होकर दौडता है। वही अवस्था नरक है। एक अंग्रेजी विचारक ने लिखा है कि अवसर का हाथ से निकल जाना और समय बीतने के बाद यथार्थता का ज्ञान होना ही नरक है।[1]

इस नरक से बचने के लिए बुद्धि का समयानुकूल उपयोग आवश्यक होता है। विदुर की जिह्वा पर बैठकर व्यास की सरस्वती ने ठीक कहा है कि सद्बुद्धि द्वारा ही देवताओ का अनुग्रह प्रकट होता है। देवता लोग चरवाहे की तरह डण्डा लेकर किसीको रक्षा नही करते; वे जिसकी रक्षा करना चाहते है, उसको बुद्धिबल से सयुक्त कर देते है।[2]

इसके विपरीत, बुद्धि का दुरुपयोग होने से मनुष्य की मनुष्यता का नाश हो जाता है: 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः'। इसका प्रत्यक्ष प्राकृतिक प्रमाण यह है कि मृत्यु-काल के निकट होने पर मनुष्य की बुद्धि एकाएक परिवर्तित या विपरीत हो जाती है और वह अपने हित-अहित को पहचानने में असमर्थ हो जाता है। तुलसी की यह उक्ति उल्लेखनीय है:

जा कहँ प्रभु दारुन दुख देही।
ताकर मति पहिलेहि हर लेही॥ (मानस)

जिस दृष्टि से भी हम देखे, यही सत्य प्रतीत होता है कि मनुष्य के उत्थान-पतन का कारण उसकी बुद्धि होती है। बौद्धिक विकास से मानव-शक्ति का विकास होता है और उसके ह्रास से शक्ति-विनाश। यही नही, बुद्धि के दुरुपयोग से मनुष्यता का दुरुपयोग होता है। बुद्धि इतनी प्रभावशालिनी शक्ति है कि वह कुटिल होकर अपना ही नही, बहुतो का

1 Hell is opportunity missed and truth seen too late
2 न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यन्तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या सविभजन्ति तम्॥ (महाभारत)

सर्वनाश कर देती है। अतएव उसके उपयोग में उतनी ही सावधानी की आवश्यकता होती है जितनी बन्दूक या पिस्तौल के उपयोग में।

बुद्धि का सदुपयोग क्या है ? —वाल्मीकि के अनुसार उसके ये गुण है, जिनसे उसके उपयोग का पता लग सकता है : सुनने की इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, धारण करना, तर्क द्वारा सिद्धान्त का निश्चय करना, विज्ञान और तत्त्व-ज्ञान।[1]

सार रूप में इसमें सभी कुछ आ गया, परन्तु इसपर विस्तारपूर्वक भी विचार करना चाहिए। बुद्धि का प्रधान काय है—सत्य को खोजना, उसको प्रकाशित करना। जीवन के रहस्यो और प्रकृति के रहस्यो को जानना उसका विशेष धर्म है। वह एक दीपक है, जिसको लेकर मन घोर अंधकार में अपना मार्ग देखता है। बुद्धि जीवन का नेतृत्व करती है, अतएव जब वह सत्य को देखने में प्रवीण होती है, तभी नेतृत्व कर सकती है।

बुद्धि-चक्षु से बुद्धिमान् प्राणी पहले जीवन-सत्य को देखता है, जिसको आत्मज्ञान कहते हैं। वह अपने को पहचानता है, अपनी आत्म-शक्तियों को देखता है, वह अपनी स्वभावज प्रवृत्तियों को समझता है और अपनी सर्वप्रधान मूल प्रवृत्तियों को पकड़ता है। वह देखता है कि उसके मस्तिष्क का स्वाभाविक झुकाव किधर है। वह यह देखता है कि उसकी पशु-प्रवृत्तियां कितनी प्रबल है और आत्मसयम द्वारा इनके सस्कार का उपाय सोचता है। बुद्धि द्वारा ही वह आत्मज्ञान प्राप्त करता है और आत्मज्ञान ही परम ज्ञान है, ऐसा प्राचीन पण्डितों का मत है : 'आत्मज्ञानं परं ज्ञानम्'। पाश्चात्य दार्शनिक भी आत्मज्ञान को दर्शनशास्त्र का मूल सिद्धान्त मानते है और कहते हैं कि अपने को पहचानो।[2] यह ज्ञान बुद्धि के उपयोग से ही सुलभ होता है। आत्मज्ञान के अतिरिक्त दूसरो को पहचानना बुद्धि का ही कर्तव्य है। अपने को तथा दूसरों को पहचानकर ही मनुष्य अपने कर्तव्य का निश्चय कर

1 शुश्रूषाश्रवणञ्चैव ग्रहण धारण तथा।
ऊहोऽपोहोऽर्थविज्ञान तत्त्वज्ञान च धीगुणा ॥ (रामायण)

2 Know thyself.

सकता है। इस प्रकार बुद्धि का कार्य कर्तव्य-अकर्तव्य, उचित-अनुचित को जानना और जीवन के सत्य को, प्रयोजन को समझकर उसका विकास करना है।

बुद्धि का दूसरा प्रधान उपयोग है—सृष्टि के सत्य को समझकर, मानव-जीवन को उसके अनुरूप बनाना। सृष्टि का सत्य क्या है? 'शतपथ ब्राह्मण' में लिखा है कि यह सभी विश्व एक छन्द है: 'छन्दासि वै विश्वरूपाणि'। छन्द उस गति को कहते है जो ताल-ताल में नृत्य करती है। किसी छन्दोबद्ध रचना में जिस प्रकार बहुत-से शब्द यथा-स्थान सयुक्त होकर एक भाव को अभिव्यक्त करते है, उसी प्रकार इस विश्व-रचना के सभी साधन अलग-अलग रहते हुए और परस्पर सघर्ष करते हुए भी एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील प्रतीत होते है। जिस प्रकार शब्दो को यथास्थान सयुक्त करके कोई कवि उनको काव्य का रूप दे देता है, उसी प्रकार समस्त प्राकृतिक शक्तियों को किसी 'कविर्मनीषी' ने क्रम से सयोजित किया है, तभी सृष्टि का कार्य-क्रम नियमपूर्वक चलता है। काव्य के पीछे कवि की प्रतिभा और किसी चित्र के पीछे चित्रकार की कला की तरह सृष्टि-रचना के पीछे किसी कुशल रचनाकार की रचनात्मक बुद्धि और उसके अस्तित्व का आभास मिलता है। उसकी भावना अथवा योजना के अनुसार सब सत्त्व सप्रयोजन अपनी-अपनी मर्यादा में सीमित होकर, अपने-अपने निश्चित धर्म के अनुसार ही चलते है और इस व्यवस्था से सम्पूर्ण सृष्टि नियमित गति से चलती रहती है। उसके भावुक कलाकार या नियामक को ईश्वर, परमात्मा आदि नामो से पुकारते है। यही सांसारिक जीवन का सबसे बड़ा सत्य है, जिसको बुद्धि से ही समझा जा सकता है। इस सत्य के आधार पर ही मानव-जीवन की समस्त रूप-रेखा बनती है, मनुष्य के चरित्र का निर्माण होता है और मनुष्यता की एक मर्यादा बधती है। मनुष्य समझता है कि वह ससार में अकेला नही है, उसका एक साथी भी है जो उसको प्रेरित करता है। वह उसको जीवन का पथ-प्रदर्शक और जीवन-सध्या का अन्तिम दीपक मानकर धैर्यपूर्वक आगे बढता है। और सबसे प्रमुख बात यह है कि इसी सत्य-विश्वास के आधार पर

मानव-जीवन की नैतिकता की प्रतिष्ठा होती है, जिसके द्वारा जीवन में सफलता मिलती है। समाज में जो अनेकता में एकता दिखलाई पड़ती है, वह जीवन के इसी नैतिक पक्ष को प्रबलता के कारण है।

लोक-जीवन का एक और प्रधान सत्य है, जिसको समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है। उपनिषद् के शब्दों में वह यह है: आनन्द ही ब्रह्म है, यह जान; आनन्द से ही सब प्राणी उत्पन्न होते है; उत्पन्न होने पर आनन्द से ही जीवित रहते हैं और मृत्यु से आनन्द ही में समा जाते है।[1]

इसको जानने की आवश्यकता इसलिए है कि जीव-मात्र सुख का इच्छुक होता है, या दूसरे शब्दों में, आनन्द-कुमार होता है। ससार आनन्दमय तभी हो सकता है जब सभी सृष्टि के नियमानुसार आचरण करे। यह तथ्य बुद्धि ही से जाना जा सकता है।

सक्षेप में यह समझना चाहिए कि बुद्धि द्वारा चित्त की भ्रमणशील वृत्तियों को रोका जाता है अर्थात् चित्त को एकाग्र किया जाता है, उसी को योग कहते है। उससे कुप्रवृत्तियों का दमन करके मानसिक विभूतियों को उद्दीप्त किया जाता है, जीवन के मर्म को समझा जाता है और आवश्यकतानुसार बाहर से ज्ञान का संचय करके चारों का निर्माण किया जाता है। सुकरात के मत से ज्ञान ही धर्म है।[2] और पाश्चात्य दर्शन के अनुसार ज्ञान ही शक्ति है।[3] भारतीय दर्शन के मत से ज्ञान द्वारा किया हुआ कर्म ही प्रधान बल है। क्रियात्मक ज्ञान ही बुद्धि का असली धन है। महाकवि गेटे के शब्दों में विचारों का कार्यरूप में परिणत करना संसार में सबसे कठिन कार्य है।[4] अतएव बुद्धि का काम किसी ज्ञान को प्राप्त करना ही नही, बल्कि उसका उपयोग करना है, और उपयोग भी इस तरह करना कि उससे मानव-चरित्र को मर्यादा

---

1. आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् ··आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते · आनन्देन जातानि जीवन्ति···आनन्द प्रयन्त्यभिसविशन्तीति।

2 Knowledge is virtue

3 Knowledge is power

4. To put one's thought into action is the most difficult thing in the world

वनी रहे । गाधीजी ने लिखा है कि चरित्र के विना ज्ञान एक नाशकारी वल है, जैसाकि संसार के बहुसंख्यक सिद्धहस्त चोरों और धूर्त भले-मानसों के उदाहरण से प्रकट होता है । चरित्र के लिए वाहर की अपेक्षा वुद्धि को अपनी आत्मा का आश्रय लेना पड़ता है ।

आत्मा

मानस तत्त्वो के इस विवरण को समाप्त करने से पूर्व आत्मा के विषयो में भी कुछ लिख देना आवश्यक है क्योंकि वही प्राण-प्रदायक तत्त्व है और तत्त्वज्ञों के मत से, उसीसे उसके स्वभाव का 'महत्' (बुद्धि) उत्पन्न होता है, जिससे मनुष्यता का विकास होता है। बहुत-से लोग आत्मा के अस्तित्व मे विश्वास नही करते और जीवन के भौतिक पक्ष को ही सर्वस्व समझते है । वे लोग आत्मिक शक्ति को इतना महत्त्व नही देते, जितना ऐटम की शक्ति[1] को । यद्यपि इसी युग में गांधीजी सिद्ध कर चुके है कि आत्मिक शक्ति ही ससार में प्रधान शक्ति है । जो लोग आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नही करते, वे अपनी चेतना की अपेक्षा अपनी जडता मे अधिक विश्वास करते है ।

आत्मा के होने मे इससे बढकर कोई क्या प्रमाण होगा कि वही एक तत्त्व है जिसके सयोग से पार्थिव शरीर में चेतनता आ जाती है और उसीके वियोग से मिट्टी का शरीर फिर मिट्टी में मिल जाता है। मरने पर भी शरीर ज्यो का त्यो वना रहता है, पर उसमें कोई एक अज्ञात वस्तु नही रही, जिसके कारण वह निर्जीव हो जाता है । दूसरा प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह सकटग्रस्त, महारोगी या अवोध वालक ही क्यो न हो, मृत्यु से डरता है, अपने को बचाने की चेष्टा करता है। जीवन के अन्तिम क्षण तक जर्जरकाय वृद्ध भी मृत्यु-यत्रणा से वचना चाहते है, यद्यपि सभी मानते हैं कि मृत्यु से शारीरिक व्यथा का अन्त हो जाता है । इस स्वाभाविक भय का कारण यह है कि यद्यपि कोई मनुष्य मृत्युकालीन वेदना का अनुभवी नही होता, परन्तु कोई ऐसी वस्तु शरीर में रहती है, जो उस घोर वेदना से परिचित रहती है और पुनः उसको भोगने से घवराती है। वह वस्तु या तत्त्व आत्मा ही है । वह

1 Atomic energy

वस्तु बुद्धि नहीं हो सकती क्योंकि जीवात्मा से बुद्धि की भिन्नता अनुभूत ही नही, प्रत्यक्ष प्रमाणित भी होती है। पागलपन में पूर्णतया बुद्धि नष्ट हो जाती है, फिर भी शरीर जीवित रहता है। योग की मनोलया अवस्था में अथवा मूर्च्छितावस्था में सम्पूर्ण मानसिक क्रियाएं स्थगित हो जाती हैं, परन्तु प्राणी जीवित रहता है। इससे उस अतिरिक्त शक्ति का आभास मिलता है।

कभी-कभी कोई अनैतिक आचरण करने पर मनुष्य को आत्मग्लानि होती है और कभी-कभी अकेले में भी कोई अपकर्म करते समय उसको अपने से ही भय लगता है। ये बाते आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करती हैं। ये वौद्धिक क्रियाएं नही हो सकती, क्योकि बुद्धि के सहयोग से ही कर्म होता है और अपराधी स्वयं न्यायाधीश नही बन सकता। कोई और है जिससे मन, बुद्धि दोनों डरते हैं। और मन जब उच्छृंखल होने लगता है, तो सावधान बुद्धि उसको सचेत कर देती है कि भीतर कोई वाहरी देखनेवाला झांक रहा है। मनुष्य को अनुभूति होती है कि भीतर एक द्रष्टा है, साक्षी है। सबके साथ ईश्वर का एक गुप्तचर लगा है। वड़े से वड़ा आततायी भी निरपराध व्यक्ति को सताते समय भीतर से निर्बल हो जाता है; क्योंकि ईश्वर का वह राजदूत अनैनिक कार्यों में सहयोग नही देता। नैतिक कार्यों में आत्मशक्ति स्वभावतः वढ़ जाती है, क्योंकि समस्त शरीर को जीवन-पर्यन्त सतेज रखनेवाली महाशक्ति का तेज स्फुटित होता है। यह वही प्रकाश है जिसको नोआखाली में महात्मा गांधी अपने भीतर ढूढ़ते थे। स्वानुभूति से उस तेजोमय तत्त्व का आभास मिलता है। वीज के बिना वृक्ष की तरह, आत्महीन जीवन की कल्पना नही हो सकती।

आत्मा का स्वरूप

जीवात्मा के अस्तित्व को मान लेने पर भी उसके स्वरूप का ठीक-ठीक निर्णय करना कठिन है। उसका स्वरूप जैसा भी हो, इतना निश्चित है, कि वह परम चैतन्य, आनन्दमय, तेजस्वी, ज्ञानमय, निर्विकार और अक्षय है। आत्मशक्ति की दृढता से उसकी इन विपमताओं की अनुभूति होती है। मानव-जीवन के आदर्श और ध्येय इन्हीं गुणो के आधार

पर बने हुए प्रतीत होते है। यदि आत्मतत्त्व में ये बाते न होतीं, तो स्वभाव और विचारो में ये बाते कैसे आती ! प्रकृति में ईश्वरीय कार्यो को देखकर मनुष्य ईश्वर में भी इन्ही गुणों की कल्पना करता है। आत्म-सयम से वह स्वय अपने भीतर विशेष चेतनता, आनन्द, स्फूर्ति, ज्ञान-प्रकाश, शुद्धता और अमरता का अनुभव करता है। निश्चय ही आत्मा का वही स्वरूप है जो सर्वभूतान्तरात्मा ब्रह्म का है। तभी तो शास्त्रकारों ने निर्णय किया कि आत्मा ही ब्रह्म है या आत्मा परमात्मा का अश है, अथवा महाकवि तुलसीदास के शब्दो मे : 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' वही कर्ता है, जो चरित्र, स्वभाव कर्तव्य और जिज्ञासा की उत्पत्ति करता है। वह क्षेत्रज्ञ है, जो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के क्षेत्र मे भावो का आरोपण करता है।

आत्मा ब्रह्ममयी है, इसको दो-एक अन्य प्रमाणो से भी समझना चाहिए। वेद मे लिखा है कि आदि में केवल ब्रह्म था, उसने सकल्प किया कि मै एक से अनेक हो जाऊ। सकल्प के बाद उसने सृष्टि-रचना आरम्भ की और स्वय उसीमें समा गया। ईश्वर ने सचमुच ऐसा सकल्प किया या नही, इसपर तर्क करने की अपेक्षा इसके सत्य को इस रूप मे देखना चाहिए कि एक ही प्राण सर्वभूतों में समाया है, तभी सब शक्तिया एक धुन मे काम कर रही है। बिना सकल्प या योजना के ईश्वर योही गिरकर चकनाचूर हो गया होगा। 'एकोऽह बहु स्याम्' की भावना को दृढ़ करके उसने आत्मविकास किया होगा। ध्यान से देखने पर एक से अनेक होने की यह भावना मानव-स्वभाव में भी दिखलाई पड़ती है। कर्म से, सहानुभूति से, प्रतिष्ठा-प्राप्ति से मनुष्य अपने को व्यापक बना देना चाहता है और हम प्रत्यक्ष देखते है कि जो व्यक्ति अपने को जितना व्यापक बना लेता है, वह उतना ही ऐश्वर्यवान् बन जाता है। विश्व-कवि रवीन्द्र ने सत्य लिखा है कि 'देश और काल में जो मनुष्य जितने अधिक मनुष्यो के अन्दर अपने को मिलाकर देख सका है, और प्रकाशित कर सका है, वह उतना ही महान् पुरुष है।' आत्म-विकास की ईश्वरीय भावना प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे रहती है।

दूसरी बात यह है कि साधारण से साधारण प्राणी स्वभाव से मह-

त्वाकांक्षी होता है। वह प्रभु होना चाहता है, अधिकारी एवं ऐश्वर्यवान् होना चाहता है। धनोपार्जन तथा यशोपार्जन से मनुष्य दूसरों पर ईश्वरता प्राप्त करना चाहता है; जो बाहर सफल नहीं होता, वह घर में स्त्री-बच्चों का ही प्रभु बनकर रहना चाहता है, जो किसीपर अधिकार प्राप्त नहीं कर पाता, वह घर के पशुओं पर ही अपना प्रभुत्व दिखाकर आत्मसंतोप करता है। प्रभु होने की यह सार्वजनिक आकांक्षा मनुष्य के हृदय में किसी प्रभु के अंश से ही आती है। इसीके साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि सभी स्वभावतः स्वाधिकार-प्रेमी है, इसीलिए कोई किसीके अधिकार को छीनकर उसकी सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सकता। ईश्वर का एक और विचित्र गुण मानव-मनोवृत्ति में समाया हुआ है। वह यह कि शक्ति या धन को बटोरनें से नहीं वल्कि उनका वितरण करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। ईश्वर नें प्रकृति में अपनी विभूतियों को फैला दिया है, इसीसे उसकी ईश्वरता का भान होता है। मानव-समाज में भी देखिए तो यही बात मिलेगी, जो दूसरों को दे सकता है—चाहे अधिकार या धन या पद—और जो दूसरो के लिए त्याग कर सकता है, उसीको लोग स्वभाववश (वुद्धिवश नहीं) सामर्थ्यवान् या महान् मानते हैं। सेवा, त्याग और परोपकार से ही ऐश्वर्य या अधिकार की प्राप्ति होती देखी जाती है। इसको देखते हुए स्कंदपुराण की ईश्वर द्वारा कथित यह उक्ति ठीक समझ में आ सकती है: 'ददामि च सदैश्वर्यमीश्वरस्तेन कीर्तितः'। अर्थात् मै सदैव ऐश्वर्य प्रदान करता हूं, इसलिए ईश्वर माना जाता हूं। कुवेर धनाधीश कहे जाते है, परन्तु लोक में उनको कोई नहीं पूजता। लक्ष्मी की पूजा सर्वत्र होती है; उनकी पूजा के लिए त्यौहार हैं, उनकी मूर्तियां है और उपासको में उनके प्रति श्रद्धा मिलती है। कारण यह है कि लक्ष्मी दूसरों को समृद्ध बनाने में प्रसिद्ध हैं; कुवेर की तरह बटोरती नहीं। इस प्रवृत्ति को धारण करने वाली शक्ति आत्मा ही है, जो ब्रह्मस्वरूपिणी है। जो ऐश्वर्य नहीं प्रदान करता, उसके प्रति मानव-आत्मा विद्रोह करती है। जनता की इसी प्रवृत्ति ने उन देशी नरेशों को नीचे गिरा दिया जो दूसरों को ऐश्वर्य न देकर, उनका ऐश्वर्य छीनकर स्वयं ऐश्वर्यशाली

वने रहना चाहते थे। उनकी ईशता कृत्रिम थी, अतएव असह्य थी। उन्होंने ईश्वर की पदवी तो ले ली थी, पर कभी यह चेष्टा नही की कि वे एक से अनेक हो जाएं अर्थात् प्रजातन्त्र स्थापित करके अपने को प्रजा में व्यापक वना दे।

ब्रह्म और आत्मा समानधर्मी है। इसका एक प्रवल प्रमाण और भी है। लौकिक दृष्टि से मनुष्य अपने से अधिक अन्य किसीको नहीं चाहता, वह स्वार्थी होता है और उसके अधिकांश काम स्वार्थ की प्रेरणा से होते है, परन्तु स्वार्थ पर ही उसका सारा ससार नही बनता। मनुष्य के भीतर एक और प्रवल भावना रहती है, जो स्वार्थ को दवा लेती है। यह भावना प्रबल होती है तो मनुष्य उस जीवन तक का सहर्ष वलिदान कर देता है जिसके लिए वह स्वार्थ-सचय करता है और जिसकी रक्षा के लिए वह अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार रहता है। वह नैतिक भावना है। मनुष्य अपने आदर्शो की रक्षा के लिए जीवन का मोह नही करता। देश-प्रेम, जाति-प्रेम, धर्म-प्रेम के लिए वह सहर्ष आत्म-त्याग करता देखा जाता है और उसकी आत्मा तभी उद्दीप्त होती है जब नैतिक जीवन की रक्षा मानवता की मान-रक्षा का प्रश्न उपस्थित होता है। उस दशा में लोक-सेवा के लिए वह अपने को भूल जाता है। तभी प्रकट होता है कि मनुष्य अपने लिए ही नही, दूसरो के लिए भी जीता है। वह समाज मे अपना नाम, अपनी कीर्ति छोड़ जाना चाहता है—शरीर चाहे रहे या न रहे, आदर्शो के पालन की यह भावना और अमरता की आकांक्षा ही प्रकट करती है कि आत्मा में ईश्वररूपी अग्नि की चिन-गारी है। और यह बात सत्य मालूम होती है कि मनुष्य को ईश्वर ने अपने जैसा ही बनाया है, उसको अपनी जैसी रचनात्मक एवं महत्त्वाकांक्षी वुद्धि दी है। आत्मा द्वारा ही ये ईश्वरीय तत्त्व शरीर में आते हैं।

आत्मा की कुछ विशेषताएं

आत्मा के रूप में मनुष्य को दैवी तत्त्व सुलभ होता है, इसमें सन्देह नही। भौतिक शरीर मे ज्ञान, चेतना और समस्त मूल वृत्तियो का वीजारोपण वही करती है, इसमें भी संशय नही हो सकता। वह शक्ति-

शालिनी है, इसको कौन न मानेगा ! जिसमें जीवन देने की और जीवन लेने की क्षमता है, उसकी शक्ति-सत्ता को न मानना मूर्खता है। उसका स्वरूप जैसा भी हो, इतना निश्चित है कि वह ब्रह्ममयी है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए हमें आत्मा-सम्बन्धी कुछ अन्य बातों को भी समझ लेना चाहिए।

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म भारतीय तत्त्व-ज्ञान का मौलिक सिद्धान्त है। इससे आत्मा का अस्तित्व ही नही सिद्ध होता, बल्कि जीवन की बहुत-सी पहेलियां भी सुलझ जाती है। जीवन की बहुत-सी विचित्रताओं को आजकल के बड़े-बडे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक नही समझ पाते; जहां बुद्धि से कार्य-कारण समझ में नहीं आता, वहां वे प्रकृति या स्वभाव का आश्रय लेकर छुट्टी पा जाते है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त से सब प्रश्नो का उत्तर मिल जाता है।

सक्षेप में पुनर्जन्म की व्याख्या यह है। शरीर के विनाश के साथ उसमें धारित आत्मा का विनाश नही होता। एक शरीर से निकलकर वह दूसरे शरीर में धारित होती है। एक शरीर में रहते हुए वह निर्लिप्त रहती है। शरीर-नाश के बाद वह उस जीवन के अर्जित कर्मो को लेकर दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। उन कर्मो को ही संस्कार कहते हैं। यह क्रिया वैसी ही है, जैसे वायु का एक कुंज की गन्ध लेकर दूसरे कुज या स्थान में जाना।

इस रहस्य को समझने के लिए मनुष्य के जन्म-मरण पर ध्यान दीजिए। पुरुप के मस्तिष्क-संस्थान[1] की उत्तेजना से कामोत्तेजना होती है, कामाग्नि प्रदीप्त होती है। कामाग्नि से प्रेरित प्राण-वायु के वेग से शरीर का तेज शुक्राणु रूप में उग्र एवं गतिमान् होकर स्त्री-रज से सयुक्त होता है। उस प्राण-वायु में, जिसकी प्रेरणा से शरीर का तेज गमन करता है, बाहर से जीवात्मा धारित होकर शुक्र के साथ जाती है। वह उसी प्रकार धारित होती है, जैसे वायु में गन्ध। इस प्रकार रज-वीर्य के साथ आत्मा के संयोग से नये शरीर की नीव पड़ती है।

1 Nervous System

शिशु की आत्मा उसके पिता की आत्मा नही होती, इसके प्रमाण है। यदि एक ही आत्मा होती, तो दोनों के आचार-विचार, रूप-रग में भी समानता होती। पर ऐसा नही होता। एक ही माता-पिता के दो पुत्र भिन्न-भिन्न स्वभाव के होते है—कोई बुद्धिमान् एव आनन्दप्रिय स्वभाव का होता है, कोई घोघावसन्त या मूर्खराज। बहुतों में ऐसी रुचियां दिखाई पड़ती है, जिनका लेशमात्र भी उनके पूर्वजो में नही होता। कोई जन्म से ही साहित्य की रुचि लेकर आता है और कोई प्रपच-रचना की। इन सबसे पिता की आत्मा से सन्तान की आत्मा की भिन्नता प्रकट होती है और यह भी पता चलता है कि प्रत्येक आत्मा अपने साथ भिन्न-भिन्न जन्मगत सस्कार लेकर आती है। तभी तो लोगो में रुचि-विभिन्नता और बुद्धि-विभिन्नता होती है। इसके अनेक उदाहरण है कि बहुत-सी सन्ताने कुछ वयस्क होने पर अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त बता देती है और खोज से उनकी बताई बाते सत्य निकलती है। अतः यही मानना पड़ता है कि पुत्र की आत्मा एक सर्वथा स्वतन्त्र आत्मा होती है, उधार ली हुई नही।

हा, इतना अवश्य मानना पडेगा कि आत्मा अपने पूर्व-जीवन के सस्कार ही नही, बल्कि माता-पिता के सस्कार भी लेकर नवजीवन में पदार्पण करती है। पिता के प्राण-मार्ग से जाने के कारण वह उसके वातावरण से अवश्य ही प्रभावित होती होगी। इसके अतिरिक्त शुक्राणु भी कुलज प्रवृत्ति-वाहक होते है, जिनका प्रभाव आत्मा पर पड़ता है। माता के गर्भ में शरीर के नौ महीने निवास के कारण आत्मा मुख्यतः माता के सस्कारो-विचारो से प्रभावित होती है। उन सस्कारो का प्रभाव इतना रहता है कि पुत्र के कष्ट से माता-पिता को स्वाभाविक कष्ट होता है। वह कष्ट शरीर द्वारा नही, आत्मा द्वारा अनुभूत होता है। एक के शारीरिक कष्ट से दूसरे को शारीरिक कष्ट नही होता। इस आत्मीयता को देखकर ही 'आत्मा वै जायते पुत्रः' कहा जाता है। यह आत्मीयता सस्कारो के कारण या आत्मा के समान-धर्मी होने के कारण ही नही उत्पन्न होती। आत्मा जिस शरीर मे जाती है, उसकी प्रकृति के अनुसार आचरण करने को बाध्य होती है। शरीर की प्रकृति माता-

पिता द्वारा प्राप्त होती है। शरीर की बनावट पर उनके अगों का प्रभाव पड़ता है। सुश्रुत के मत से शरीर के स्थिर तत्त्व अर्थात् केश, श्मश्रू, रोम, अस्थि, नख, दांत, सिर, धमनी, स्नायु तथा रेत पितृज होते हैं और मृदु तत्त्व अर्थात् मास, रक्त, मेद-मज्जा, हृदय, नाभि, यकृत, प्लीहा तथा आन्त्र मातृज होते हैं। (पुष्टि, वल, वर्ण, स्वास्थ्य, अस्वास्थ्य को उन्होंने रज जन्य और इन्द्रिय, ज्ञान, विज्ञान, आयुर्मान, सुख-दुःख को आतमज माना है।) इस बनावट का प्रभाव आत्मा पर पड़ता है और मुख्यतः रक्त का प्रबल आकर्षण होता है। रज-वीर्य के रक्तसार से ही शरीर बनता है; अतएव समान गुणधारी रक्त में स्वाभाविक एकता होती है। अनेक परम्परागत वीमारियां रक्त-सम्वन्ध की सत्यता को प्रमाणित करती हैं। आत्मा पर रक्त-सम्वन्ध की दृढता का प्रभाव प्रायः अन्य जन्मों में भी दिखलाई पडता है। यही कारण है कि कुछ लोग किसीके प्रति स्वाभाविक प्रीति रखते हैं : 'प्रीति पुरातन लखै न कोई' (तुलसी)।

आत्मा पर जीवनगत सस्कारों का प्रभाव कैसे पड़ता है? इसका उत्तर यह है—किसी विचार या कर्म का लक्षण हमारे अगो पर तत्काल प्रकट होता है। दैनिक चरित्र का वैसा ही प्रभाव आत्मा पर पड़ता है। सद्गुणो-दुर्गुणों का प्रभाव जैसे शरीर पर पड़ता है वैसे ही आत्मा पर भी। जिस प्रकार आज के कर्मो का परिणाम कल या दस साल वाद मिलता है, अथवा युवावस्था की भूलों का फल वृद्धावस्था मे भोगना पडता है, उसी प्रकार आत्मा के साथ लगे हुए गुणों या कर्मो का परिणाम एक जीवन में या उसके बाद भोगना पड़ता है। यह गुण-परम्परा शरीर-नाश के वाद भी चलती रहती है। पूर्व-जन्म या इसी जन्म का सुकृतफल हमें जव आगे प्राप्त होता है, तो हम उसीको पुण्य या भाग्य का उदय कहते हैं। वुद्धिमान् व्यक्ति उन गुणों का आभास पाकर उनको और विकसित करता है। पूर्ववत् या इसी जीवन के विकार आत्मा की आग को धूमाच्छादित रखते हैं। तब आत्मा का प्रकाश नहीं फैलता और वे विकार समय पाकर फोड़े की तरह फूट निकलते हैं। उसी अवस्था को हम पाप या दुर्भाग्य कहते हैं। मूर्ख व्यक्ति उसी धुएं में सांस

लेता रहता है। चतुर व्यक्ति उन कुसस्कारो को पहचानकर उनसे आत्मा को मुक्त करता है और तप-सयम से शुद्धात्मा वन जाता है। आकस्मिक घटनाओं और पाप-पुण्य का वहुत कुछ भेद आत्मा के पुनर्जन्म के सिद्धान्तो से खुल जाता है। और यह भी पता चल जाता है कि वहुत-से लोग स्वभाव से ही क्यों प्रतिभाशाली, विलक्षण, भाग्यवान् या सरल लगते है और दूसरे लोग क्यो मन्द, चिड़चिड़े या चोर होते हैं। यह सस्कारो का प्रभाव है। जिस प्रकार कुज की वायु पुष्पो का सौरभ लुटाती हुई आती है और श्मशान की वायु शव-गन्ध, वैसे ही आत्मा पूर्व-जीवन के गुणों का विस्तार करती आती है। सस्कारो का प्रभाव न होता तो सव वालक एक-से वुद्धिमान् होते। एक ही गुरु पचास शिष्यों को पढाता है, परन्तु सवका विकास एक-सा नही होता, क्योंकि सस्कारो का प्रभाव अलग-अलग होता है।

सस्कारो का यह परिचय हमने इस प्रयोजन से दिया है कि पाठक यह जान जाए कि भाग्य-दुर्भाग्य कोई दैवी घटना नही है। सस्कार आत्मा के स्थायी गुण नही है, वे वदले जा सकते है, या प्रवल न हों तो और प्रवल वनाए जा सकते है। आत्मा को आप पारे की तरह एक वस्तु मान लीजिए। पारा भी निर्लिप्त रहता है, परन्तु उसके साथ अनेक दोप लगे रहते है। योग्य वैद्य उस पारद को सस्कारित, सशोधित करके शुद्ध एव कल्याणकारी वना लेता है। योग्य व्यक्ति भी ठीक उसी तरह आत्मा को शुद्ध करके उसको उपयोगी वना सकता है और इच्छानुसार उससे लाभ ले सकता है।

आत्मा का धर्म

आत्मा शरीर में रहकर स्वयं इन्द्रिय-सचालन नही करती। उसकी वहुसख्यक वृत्तियां मूर्च्छितावस्था में रहती है। वुद्धि द्वारा वे जगती हैं। जव वुद्धि आत्मा से सयुक्त होती है, तभी उसको आत्मा की स्फूर्ति या प्रेरणा मिलती है। घोर विपत्ति में या साधना से जव आत्मा उद्दीप्त होती है, तो वह अपने महातत्त्व से अतिरिक्त शक्ति लेकर अधिक सवल हो जाती है। वह सहानुभूति के लिए अपने सजातीय तत्त्व की ओर सहज रीति से दौड़ती है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि पुत्रोत्पत्ति के समय

जब स्त्री को असह्य वेदना होती है और बुद्धि तथा मन व्याकुल हो जाते हैं, तो स्त्री की आत्मा मां-बाप या राम को पुकारती है। वह प्राणपति या प्राणाचार्य (वैद्य) को संकट-निवारण के लिए नही भजती। पाप और कष्ट में इसीलिए शुद्ध आत्मा की पुकार सुनाई पड़ती है।

आत्मा का दूसरा मुख्य धर्म यह है कि वह प्राणि-वर्ग में बंधुत्व-भावना, सत्य-अहिंसा की भावना जगाती है। वही प्रेरित करती है कि सब एक ही वृक्ष के फल है। एकात्मता वही जगाती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना वही पैदा करती है। इस मर्म को समझकर लोग पराये को भी अपना बना लेते है, हिंसक पशुओं तक को वश में कर लेते हैं। जो इस मर्म को नही पहचानते, वे मिथ्या व्यवहार और क्रूरता से कुटुम्बियों तक को पराया बना लेते हैं।

आचरण-शुद्धता से आत्मा पुष्ट होती है

आत्मा की तीसरी विशेपता यह है कि वह ब्रह्मचर्य, शारीरिक शुद्धता, सद्विचार से निश्चय ही अधिक कान्तिमयी होती है। बच्चों में जो स्वाभाविक सरलता, शुद्धता, निष्कपटता मिलती है, उसका रहस्य यह है कि उस अवस्था तक उनका आचरण शुद्ध रहता है, आत्मा जगमगाती है और मन-बुद्धि इतने बलवान् नही रहते कि वे उसकी स्वाभाविक आभा को रोककर खड़े हो सकें। बालकों के भोलेपन में उनकी शुद्ध आत्मा प्रतिबिम्बित होती है।

आत्मा के सम्बन्ध मे यही कुछ मुख्य बाते हैं। उसमें महाशक्ति है, इसमें सन्देह नही, परन्तु वह लारी की तरह वरदानों की धूलि उड़ाती हुई नही चलती। वह मांगने से ही वरदान देती है और मांगनेवाली भी जब उसकी आत्मजा (कन्या) बुद्धि हो। रत्न जिस प्रकार पहाड़ों पर नही, बल्कि समुद्र के अन्तराल में मिलता है, उसी प्रकार जीवन का रत्न अन्तस्तल में मिलता है।

सारांश

1. मनुष्य भ्रमवश अपने को जितना साधारण समझता है, वह उतना साधारण नही होता। असंख्य अलौकिक शक्तियां उसको प्रत्येक

क्षण घेरे रहती है। उन शक्तियों को संयोजित करके मनुष्य महा-शक्तिशाली वन सकता है, यह अनेक महापुरुषों के अलौकिक चरित्रों से प्रमाणित होता है। अग्रेजी में एक वहुप्रसिद्ध लोकोक्ति है, जिसका अर्थ यह है कि मनुष्य अपने अनुमान से अधिक शक्तिसम्पन्न होता है।[1] मानस-बल की असीमता इसकी सत्यता को सार्थक करती है।

2 जहां इतनी शक्तियों का मेला लगा होता है, वहा यदि ठीक शासन-व्यवस्था न हो, एकता और क्रमवद्धता न हो, तो 'हिन्दू-मुसलमान दगा' हो ही सकता है। उसीके लिए आत्म-सयम की आवश्यकता होती है। यह तभी सभव है जब बुद्धि आत्मा के प्रकाश में विवेक करे, उपाय या चतुराई से कार्य-सचालन करे। आत्मायुक्त वुद्धि-वल को देव-वल कहते है और सफलता तभी मिल सकती है जब कि देव-बल और पुरुष-कार (पुरुषार्थ) साथ-साथ रहते है। पुरुपार्थ के न होने से देव-वल व्यर्थ जाता है और बेकारी से मन भयाक्रान्त हो जाता है। उसी तरह देव-बल के विना पुरुषार्थ निष्फल होता है।

3 बुद्धि-प्रधान प्राणी होने के कारण मस्तिष्क का विकास करना मनुष्य का पहला कर्तव्य है। वह विकास ज्ञानोपार्जन से होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि ज्ञान की कोई सीमा और आयु नही होती। किसीकी आयु से उसकी मानसिक वृद्धता की नाप नही होती। कभी-कभी शरीर से मनुष्य तीस-चालीस वर्ष का हो जाता है, किन्तु उसका मस्तिष्क उसी अवस्था में रहता है, जैसा वह दस-वारह वर्ष की आयु में रहा होगा। उसको अपरिपक्व मस्तिष्क[2] कहते है। प्राय: थोड़ी आयु में ही कुछ लोगों का मस्तिष्क शरीर की आयु के अनुपात से अधिक वढ जाता है। मस्तिष्क के घटने-बढने से लोग वैसा ही आचरण करते है। खैर, ये तो प्राकृतिक विषमताएं है। यहां हमारा कहने का अभिप्राय यह है कि अल्पायु में भी मनुष्य ज्ञानी हो सकता है जैसा कि राम के अनुसार भरत थे :'ज्ञानवृद्धवयो बाल:।' कालिदास ने भी लिखा है कि तेजस्वियों की आयु नही देखी जाती : 'तेजसां हि न वय. समीक्ष्यते' (रघुवंश)

1 Man is stronger than he knows

2 Undeveloped mind

वौद्ध ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में एक छोटी-सी कथा है : जीवक नाम का एक दरिद्र वालक था, जिसको धनाभाव के कारण वचपन में वड़े कष्ट भोगने पडे थे। एक बार वीमार पड़ने पर वह पैसे की कमी से अपनी चिकित्सा भी न करा सका। उसने सोचा, ऐसे ही निर्धन कष्टभोगी लाखों होंगे। अतएव लोगों को मुक्त करने का सकल्प करके उसने तक्ष-शिला में जाकर चार वर्ष तक चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया और वहां से उत्तीर्ण होकर वह लोक-यात्रा को चला। अयोध्या में उसको एक विधवा मिली, जिसको वर्षो से भयकर शिरोरोग था। जीवक जव उसकी चिकित्सा करने चला, तो बुढ़िया ने कहा कि तुम अभी वालक हो, क्या करोगे; वड़े-वड़े वृद्ध और अनुभवी वैद्य भी मेरे रोग का इलाज नही कर सके हैं। इसपर युवक ने उत्तर दिया कि 'विज्ञान वालक भी नही और न वृद्ध ही है।' उसने उसके रोग पर विजय प्राप्त की। एक वार जव वुद्ध वीमार पड़े और अन्य चिकित्सक कोई उपचार न कर सके, तो उनके सर्वप्रिय शिष्य आनन्द ने इस नवयुवक की प्रसिद्धि सुनकर इसको वुलाया। निर्धनपुत्र जीवक ने भव-व्याधिहर्ता के व्याधिहर्ता होने का गौरव प्राप्त किया। इस कथा से और अपने ही समय के सैकडों उदाहरणों से जाना जा सकता है कि ज्ञान की कोई आयु नही है। सकल्प के साथ अभ्यास करने से थोड़े समय में भी मस्तिष्क को प्रखर एवं ज्ञान-वृद्ध वनाया जा सकता है।

करत-करत अभ्यास के जड़मत होत सुजान

सवका सार यह है—गागर में सागर की तरह मस्तिष्क एक छोटी-सी खोपड़ी में भरा हुआ ब्रह्माण्ड है। एक प्रकार से हमारे शरीर-शैल पर महावरदानी शिव का मन्दिर जन्म से ही वना रहता है। वरदान के लिए केवल साधन की आवश्यकता होती है।

3

स्वास्थ्य, व्यायाम, विश्राम

स्वास्थ्य

अन्न ही प्रजापति है

शास्त्रों ने अन्न अर्थात् आहार को ही विधाता कहा है : 'अन्नं वै प्रजापतिः' (प्रश्नोपनिषद्)। अन्न से ही रस बनता है, रस से रक्त, रक्त से वीर्य और वीर्य से जीवन। इस प्रकार आहार से ही शरीर का धारण, पोषण और नवनिर्माण होता है। चरक ने भी लिखा है कि देह अन्न से ही बनती है : 'देहो ह्याहारसंभवः।' यह तो एक साधारण समझ की बात है कि शरीर की उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि मनुष्य के भोजन पर अवलम्बित रहती है। शरीर के जीवन और स्वास्थ्य का सर्वप्रमुख साधन आहार ही होता है। स्थूल शरीर को दार्शनिक भाषा में अन्नमय कोष कहते ही हैं। कोई इस तथ्य को अस्वीकार नहीं करेगा कि शरीर में जो बल, तेज और वर्ण का विकास होता है, उसका उत्पादक आहार ही होता है। आहार ही आरोग्य और आयुर्बल देता है, जिसको स्वास्थ्य कहते हैं। वैद्यक के मत से अन्न तत्काल चैतन्य देनेवाला, इन्द्रियों का पोषक, बुद्धि, स्मृति एवं ओज-तेजवर्द्धक होता है।

आहार के महत्त्व को मानकर हमें संक्षेप में इस बात पर विचार करना चाहिए कि किस प्रकार के आहार से शारीरिक स्वास्थ्य का विकास होता है। यह सर्वज्ञात है कि भोजन का उद्देश्य पेट भरना ही नहीं, मुख्यतः शरीर का पोषण करना है। पेट भरने से ही आहार का प्रयोजन सफल नहीं होता है। वही भोजन स्वास्थ्यवर्द्धक होता है, जो शरीर के अनुकूल होता है। प्रतिकूल होने पर वह प्रजापति नहीं बल्कि शरीर के लिए प्राणपति (यमराज) अर्थात् भारस्वरूप एवं नाशक होता है। कौन-सा आहार शरीर के अनुकूल पड़ता है, इसको समझने के लिए हमें सर्वप्रथम शरीर की रचना-सम्बन्धी निम्नलिखित बातों को ध्यान-

पूर्वक समझ लेना चाहिए :

1. एक-एक ईंट से बने हुए मकान की तरह शरीर असंख्य सूक्ष्म परमाणुओं[1] से निर्मित होता है। ये भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के होते हैं और भिन्न-भिन्न समूहों में संगठित होकर धातु[2] के नाम से पुकारे जाते हैं। भिन्न-भिन्न जाति की इन्ही धातुओं से मांस, रक्त, अस्थि और नाडियों आदि का निर्माण और संचालन होता है।

2. धातुओ-सहित सम्पूर्ण शरीर का संगठन पांच मूल तत्त्वों से होता है अर्थात् पांच मुख्य तत्त्व है, जिनके आधार पर शरीर की रचना होती है। वही परमाणुओं या धातुओं अथवा उनके द्वारा सयोजित शरीर के मूलाधार माने जाते है। आयुर्वेद के मत से ये पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु हैं। आधुनिक रसायनशास्त्रियों की वैज्ञानिक भाषा में वे पांच मूल पदार्थ ये है: (क) प्रोटीन अर्थात् मांस जातीय (पौष्टिक) पदार्थ, (ख) चरबी, (ग) खनिज या पार्थिव पदार्थ, (घ) कार्बोहाइड्रेट अर्थात् शर्कराजातीय पदार्थ, (ङ) जल। इन्हीके अन्तर्गत सम्पूर्ण शरीर में कुल तेईस तत्त्व मिलते हैं, जिनमें से ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन, फासफोरस, चूना, गंधक, क्लोरीन, सोडियम, लोहा और पोटेशियम मुख्य है। ऑक्सीजन के अतिरिक्त अन्य सभी यौगिक[3] रूप में मिलते हैं और सबको उक्त पांच श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। वैज्ञानिक परीक्षा से ज्ञात होता है कि शरीर में जल का अंश सत्तावन प्रतिशत, खनिज पदार्थों का अंश बीस प्रतिशत, चरबी, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट का अंश तेईस प्रतिशत होता है। इसका अर्थ यह है, जब ये मूल तत्त्व इन्ही परिमाणों में शरीर में रहते है, तभी धातुएं सक्रिय होती है और शरीर अपनी प्राकृतिक अवस्था में अर्थात् स्वस्थ रहता है। आयुर्वेदोक्त पंच महातत्त्वों का सम्मिश्रण भी जब उनकी उचित मात्रा में रहता है, तभी शारीरिक क्रियाए ठीक चलती है। दोनों में से जिस मत को भी मानिए, इतना निश्चित है कि

---

1 Cells
2 Tissues ,
3. Compounds

शरीर पचतत्त्वात्मक है। इस विषय को सामयिक दृष्टि से समझाने के लिए हम इस स्थान पर आधुनिक मत के अनुसार विचार करेंगे।

3 ये रासायनिक द्रव्य सदैव उपर्युक्त परिमाणों में नहीं रहते क्योंकि शारीरिक क्रियाओ से प्रत्येक क्षण लाखों परमाणु नष्ट होते रहते है। रक्त ही के स्वास्थ्यधारक लाल परमाणु प्रतिदिन 10, 00,00, 00, 00, 000 की सख्या में नष्ट होते हैं। शरीर स्वतः इस क्षति की पूर्ति नही कर सकता, और जब नही कर सकता तो धातुओं का स्वय परिमाण में रहना सभव नही है। इसके लिए यह आवश्यक है कि बाहर से कुछ ऐसे पदार्थ लिए जाए, जो नष्ट हुए परमाणुओ के स्थान में नये परमाणुओ का उत्पादन कर सके और इस प्रकार धातुओं को सतुलित रखकर शारीरिक क्रिया को स्थिर एवं सचालित रखे। ये पदार्थ आहार के रूप में ही लिए जा सकते है।

ऊपर के विवरण से एक बात स्पष्ट होती है; वह यह कि आहार का सगठन वैसा ही होना चाहिए जैसाकि स्वय शरीर का संगठन है। दूसरे शब्दो में—भक्ष्य पदार्थो के चुनाव में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनसे शरीर के मूल तत्त्वो के लिए उचित मात्रा में आवश्यक सार-सामग्री मिलती रहे। पचतत्त्वात्मक शरीर के लिए पचतत्त्वात्मक आहार ही उपयुक्त हो सकता है। उनकी प्रचुरता अथवा न्यूनता से धातुओ का सगठन नष्ट हो जाता है। शरीर मे वे क्या कार्य करते हैं और किन पदार्थो से उपलब्ध होते है, इनपर भी हम सक्षेप में विचार करेंगे।

प्रोटीन

प्रोटीन शरीर के परमाणुओ के जीवन का मुख्य तत्त्व होता है। धातु-वृद्धि और धातु की स्वाभाविक क्षति की पूर्ति इसीसे होती है। प्रोटीन के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ से धातु-तन्तुओं का उत्पादन नही हो सकता। यह नाइट्रोजन-प्रधान द्रव्य—मांस, दाल, अंडा और फल तथा वनस्पतियों के यौगिक पदार्थो से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। यदि ये पदार्थ आवश्यकता से अधिक मात्रा में लिए जाते है, तो सार रूप में जो अधिक प्रोटीन निकलता है, वह चरबी के रूप में

शरीर में सचित हो जाता है।

चरबी

चरबी के रूप में शरीर के लिए स्थायी शक्ति अधिक मात्रा में संचित होती है, उससे उष्णता और शक्ति उत्पन्न होती है। जीवों की चरबी, वनस्पतियों के तेल, मक्खन, घी और पिस्ता, बादाम आदि मेवों की गिरी से यह प्रचुर मात्रा में मिलती है। चरबी की शक्ति कार्बोहाइड्रेट की शक्ति से डेढ़ गुनी अधिक होती है।

खनिज द्रव्य

खनिज द्रव्यों से धातु-निर्माण में सहायता मिलती है। हड्डियां इन्हीसे बनती है। इनका प्रभाव शारीरिक शक्ति पर कम या बिल्कुल नहीं पड़ता किन्तु शरीर के पोषण, पाचन-क्रिया और धारक धातुओं पर इनका विशेष प्रभाव रहता है। हड्डी में $\frac{5}{6}$ भाग खनिज द्रव्यों का ही रहता है। रक्त के लाल कणों में, दांत, केश, पाचन-रस और मस्तिष्क में खनिज द्रव्य प्रचुर मात्रा में पाए जाते है और उक्त अंगों का पोषण इनसे विशेष रूप से होता है। दूध, अंडा, हरे साग और अनाज आदि द्वारा ये पर्याप्त मात्रा में सुलभ होते है।

कार्बोहाइड्रेट

शारीरिक शक्ति, स्फूर्ति और उष्णता का उत्पादक और सामर्थ्य-दाता द्रव्य कार्बोहाइड्रेट ही होता है। शारीरिक परिश्रम की क्षमता इसीसे प्राप्त होती है। उचित मात्रा में रहने पर यह शरीर की क्रियात्मक शक्ति को चैतन्य रखता है, आवश्यकता से अधिक होने पर चरबी के रूप में सचित हो जाता है। चावल में कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में होता है। फल, शहद, गुड़, शक्कर, गेहूं, आलू आदि का मुख्य पोषक पदार्थ कार्बोहाइड्रेट ही है। यह स्मरण रखना चाहिए कि वनस्पतियों द्वारा ही इस महातत्त्व की प्राप्ति होती है। मांस आहार से प्रोटीन और चरबी के तत्त्व अवश्य अधिक मिलते है, परन्तु कार्बोहाइड्रेट अन्नाहार और फलाहार से ही मिलता है।

जल

जल शरीर का एक मुख्य तत्त्व है। सारे तत्त्व उसीकी सहायता से

शरीर में प्रवाहित होते है और उनका साम्यीकरण भी उसीके आधार पर होता है । आहार को शरीर मे ग्रहण करने और निस्सार पदार्थो को शरीर से बाहर निकालने में वही सहायक होता है । उससे शरीर में कोई शक्ति नही उत्पन्न होती, परन्तु उसके बिना परमाणु न तो जी सकते हैं और न शरीर में फैलकर अपना कार्य ही कर सकते है।

भोजन के रूप में जो पदार्थ पेट में जाते हैं, वे पाचन-रस के सयोग से पाक-स्थान में पचते है। पाचन-यन्त्र स्वाभाविक रीति से आहार-परिवर्तन करते है। वे भक्षित पदार्थो में से उनके प्रोटीन, मेद, खनिज, जल और पिष्टमय (कार्बोहाइड्रेट) अशो को साररूप में ग्रहण करके रस-रक्तादि धातुओ में परिवर्तित करते है। उनके द्वारा नष्ट हुई धातुएं पुनः शरीर को प्राप्त होती है और शरीर की स्थायी शक्ति में क्षति नही होने पाती। आहार-परिवर्तन से ही शरीर की स्वाभाविक उष्णता उत्पन्न होती है। भोजन के आवश्यक तत्त्वो को अर्थात् आहार-सार को ग्रहण करने के अतिरिक्त भीतरी यत्र एक दूसरा कार्य भी करते है। वे आहार-मल को अलग करते है। शरीर के अनुपयुक्त पदार्थो के जो अनावश्यक अश होते है और जो आहार-परिवर्तन की प्रक्रिया में भीतर ही भीतर उत्पन्न होते है, उनको वे मल, मूत्र और प्रश्वास से बाहर निकालते है। आहार-परिवर्तन के समय आहार के रचनात्मक और विनाशात्मक कार्य साथ ही साथ होते है। इसको जान लेना आवश्यक है कि जब शरीर-यन्त्रों को सारयुक्त पदार्थ पर्याप्त मात्रा में मिलते है तो उनकी शक्ति का अपव्यय नही होता। वे अधिक से अधिक आवश्यक तत्त्व उनमें से निकाल लेते है। जब निस्सार पदार्थ मिलते है तो उनका परिश्रम त्याज्य पदार्थो को अलग करने में ही व्यय होता है।

सामने के पृष्ठ पर एक तालिका दी है, जिससे कुछ आवश्यक खाद्य-पदार्थो के आवश्यक-अनावश्यक अंशों को साधारण जानकारी प्राप्त होगी।

इस प्रसग में अन्य जाति के पदार्थो का उल्लेख कर देना आवश्यक है। आधुनिक वैज्ञानिको ने यह सिद्ध किया है कि यद्यपि ये पांचों तत्त्व शरीर के लिए परमावश्यक है, फिर भी इनके द्वारा सम्पूर्ण स्वास्थ्य की

पदार्थ	निस्सार अंश%	जल अंश%	प्रोटीन%	चरबी%	शर्करा अंश%	खनिज अंश%
अण्डा	112	65·5	13·1	9·3	—	0·9
मक्खन	—	11	1	85	—	3
चावल	—	12·3	8	0·3	79	0·4
शक्कर	—	—	—	—	100	—
टोमैटो	—	94·3	0·9	0·4	3·9	0·5
सेब	25	63·3	0·3	0·3	10·8	0·3
केला	35	48·9	0·8	0·4	14·3	0·6
अगूर	25	58·0	1	1·2	14·4	0·4
नारगी	27·0	63·4	0·6	1·1	8·5	0·4
बादाम	45·0	2·7	11·5	30·2	9·5	1·1
अखरोट	58·1	1	6·9	26·6	6·8	0·6
दूध	—	87	3·3	4	5	0·7
गोभा	15	77·7	1·4	0·2	4·8	0·9

रक्षा और वृद्धि नही होती। ये पचतत्त्व शरीर को भले ही स्थिर रख ले किन्तु रोग के आक्रमण से उसको नही बचा सकते। शारीरिक विकास और स्वास्थ्य-रक्षा के लिए एक अन्य द्रव्य की आवश्यकता भी होती है, जिसको विलायती वैज्ञानिक भाषा में 'विटैमिन' और अनुवादित भाषा में जीव-द्रव्य कहते है।

विटैमिन

जीव-द्रव्य के सम्बन्ध में इतना जान लेना आवश्यक है कि वे भोजन के सजीव अश होते है और पचतत्त्वो को अधिक क्रियात्मक बनाते है। वे मुख्यतः वनस्पतियों से उपलब्ध होते है। विटैमिनों की पांच मुख्य जातियां अभी तक निर्धारित हो पाई है। वे शरीर की जीवनी शक्ति के लिए नितान्त उपयोगी है, इसलिए संक्षेप में उनका परिचय दिया जाता है।

विटैमिन ए—शारीरिक वृद्धि और सक्रामक रोगों से बचाव के लिए शरीर मे इस जीव-द्रव्य का होना आवश्यक है। इसकी कमी से शरीर रोगाक्रान्त, दुर्बल एव क्षीण होता है और फेफड़े, पाचन-यन्त्र आदि निर्बल होते है। बच्चों की वृद्धि इसके अभाव में रुक जाती है। रात्रि-अधता (रतौंधी) इसीकी कमी से होती है। विटैमिन 'ए' हरे शाकों में प्रचुर मात्रा मे मिलता है। दूध, दही, मक्खन के अतिरिक्त अंडो, जानवरों के यकृत्, मछली के तेल (कॉड लिवर ऑयल) में भी यह विशेष रूप से रहता है।

विटैमिन बी—विटैमिन 'बी' के कई उपभेद है। सबकी उपयोगिता में अन्तर है। यह जीव-द्रव्य त्वचा और नाड़ी-सस्थान के पोषण के लिए आवश्यक होता है। इसकी प्राप्ति उड़द, मटर, गेहूं, चावल के भीतरी अंश, मूगफली और अडे आदि से होती है। गेहू, जौ के चोकर और अनाजों के ऊपरी पर्त में यह अधिक मिलता है।

विटैमिन सी—शरीर की जीवन-शक्ति बढ़ाने के लिए, दातो के पोषण और रक्षण तथा शरीर की वर्ण-वृद्धि के लिए विटैमिन 'सी' आवश्यक होता है। दूध, आम, नीबू, संतरा, हरे शाक, गोभी, आलू, गाजर, प्याज, टोमैटो, शलजम और अंकुरित अनाज इसके उत्पादक

होते है।

विटैमिन डी—विटैमिन 'डी' से अस्थियों का पोषण होता है और रक्त में गाढ़ापन आता है। दांतों में इसके कारण शक्ति आती है। इसके अभाव में बच्चों को सूखा रोग होता है, क्योंकि उनकी हड्डियां दृढ़ नहीं होती। यह द्रव्य मुख्यतः सूर्य की किरणों से मिलता है। गाय की अपेक्षा भैंस के दूध में इस जीव-द्रव्य की मात्रा अधिक रहती है। मक्खन, अडा और मछली के तेल द्वारा भी यह प्राप्त होता है।

विटैमिन ई—यह द्रव्य पुरुषार्थ-शक्ति का धारक माना जाता है। इसके सेवन से जननशक्ति प्रबल होती है। जिन माता-पिताओं के शरीर में यह जीव-द्रव्य नही होता, उनकी सन्तानोत्पादक शक्ति क्षीण हो जाती है और उनके बच्चे या तो होते ही नही या बहुत दुर्बल होते हैं। यह दूध, मक्खन, बीजों या उनके तेल, गेहूं तथा हरे शाकों में पाया जाता है। जीवनीय द्रव्यों के सम्बन्ध में जो सबसे आवश्यक बात ध्यान में रखनी चाहिए, वह यह कि वे प्रायः कच्चे पदार्थो में और ताजे फलों और हरी तरकारियों ही में सुरक्षित रहते हैं। उबालने अथवा बासी हो जाने से उनकी शक्ति कम हो जाती है या बिल्कुल नष्ट हो जाती है। फल, अनाज और शाकों से जो स्वास्थ्य-सुधार होता है, उसका रहस्य यही है। फल, अनाज और शाक आदि अपनी जीवनीय शक्ति सूर्य-प्रकाश से पाते है। इसलिए ऐसे पदार्थो में जो सूर्य की किरणों के सम्पर्क में रहते है, कन्दों की अपेक्षा अधिक विटैमिन होते हैं। ये तत्त्व अनाजों के ऊपरी पत्तों में विशेष रूप में मिलते हैं। इसलिए पालिश किए हुए चावल निस्सार होते हैं। अनाजों के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि उनके अंकुरित होने पर उनके पौष्टिक तत्त्वों के अतिरिक्त उनमें विटैमिन बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाते हैं।

विटैमिनों के आविष्कार के बाद से शरीर-शास्त्र और कम से कम रोग-विज्ञान के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का दृष्टिकोण ही बदल गया है। अभी तक लोग एक-एक पदार्थ को कीटाणुओं से मुक्त करने के लिए उन्हें नाना प्रकार के साधनों से उबालकर, रासायनिक द्रव्यों से धोकर—स्वच्छ बनाकर खाने के पक्षपाती थे। वे यह समझते थे कि शरीर को

रोग से वचाने का यही उपाय है। परन्तु अब वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि इन अप्राकृतिक उपायों से पदार्थों के प्राकृतिक सत्त्व ही नष्ट हो जाते हैं। और यही कारण है कि जो बच्चे गरीवी के कारण प्राकृतिक आहार लेते है, वे उन बच्चों से अधिक स्वस्थ एव दीर्घजीवी होते हैं जो वडे यत्न से शोधित आहार पर पाले जाते हैं। पहले की अपेक्षा अब लोगो को पाचन-विकार अधिक होते हैं, दातों की शिकायत अधिक होती है और गठिया आदि रोग भी वहुत होते है, यद्यपि अब खान-पान में पहले की अपेक्षा लोग अपने को अधिक सभ्य मानते है। इसका कारण यह है कि अब प्राकृतिक आहार को प्राकृतिक ढग से नहीं लिया जाता। और हम यह भी देखते है कि पुरानी कोष्ठवद्धता में जव हरे शाक और फल आदि प्राकृतिक ढग से लिए जाते है, तो वे रोग-निर्मूल भी हो जाते है, क्योकि तब विटैमिन जीवित रूप मे शरीर में पहुंचते हैं। इन बातों पर विचार करके हम एक निर्णय पर पहुंचते है, वह यह है कि दुनिया कम से कम आहार के विषय में घूम-फिरकर फिर वही पहुच रही है जहां प्राचीन आयुर्वेदज्ञ लोग पहुच चुके है। प्राचीन शास्त्रज्ञो ने धारोष्ण दूध पीने का जो विधान बताया था उसको अब तक लोग अस्वास्थ्यकर मानते थे और तीन वार उसको उबालने का विधान वताते थे, जिससे कि उसके जन्तु मर जाए। अव विटैमिनशास्त्री लोग प्रमाणित करते हैं कि दूध को उवालने से उसका जीवन-तत्त्व ही नष्ट हो जाता है।

सारांश यह है कि कल्पित जन्तुओं के भय से लोग खाद्य वस्तुओं के उस सार-अंश को नष्ट कर देते है जो शरीर में रहने पर उनसे भी प्रवल जन्तुओं के आक्रमण से शरीर को बचा सकते है। एक प्रकार से वे उस बन्दर के जैसा आचरण करते है जिसने अपने मालिक की नाक पर वैठी हुई मक्खी को उडाने के लिए उसपर पत्थर पटक दिया था।

कैसा आहार लेना चाहिए

आहार के पौष्टिक तत्त्वों और जीवनीय द्रव्यो की उपयोगिता को ध्यान मे रखकर यह कहना ही उचित होगा कि हमें ऐसे पदार्थों का सेवन करना चाहिए जो पौष्टिक एव सात्त्विक हों। इस सम्वन्ध मे निम्न-लिखित वातों का ध्यान रखना चाहिए :

1. प्रकृति ने सब जीवों के लिए प्राकृतिक आहार बनाए हैं। अपने स्वभाव के अनुकूल आहार लेने से उस जीव के स्वाभाविक स्वास्थ्य का विकास होता है। मांसाहारी लोग जो भी कहे, किन्तु हमें यह मानना पड़ेगा कि कम से कम इस देश के स्वाभाविक आहार अन्न, दूध, फल और शाक ही हैं। मांस में पौष्टिक अंश पर्याप्त मात्रा में होते हैं और उनसे पुष्टि के साथ उत्तेजना भी मिलती है, इसमें सन्देह नही, परन्तु उसमें जीवनीय शक्ति—आयुर्वल—बढाने की क्षमता नही होती। मनुष्य ही नही, बल्कि निरामिष पशु-पक्षी भी मांसाहारी पशु-पक्षियों से अधिक दीर्घजीवी होते हैं। पशुओं मे हाथी और पक्षियों में तोते सर्वाधिक दीर्घजीवी पाए जाते है और दोनों ही मांसाहारी नही होते। अन्य जीवों की अपेक्षा दोनो बुद्धिमान् भी अधिक होते है। मनुष्यों में भी अन्नजीवी व्यक्ति बुद्धि-सामर्थ्य और शरीर-सम्बल में मासाहारियों से किसी प्रकार निर्बल नही होते, जैसा कि गांधीजी और बर्नार्ड शॉ के जीवन से प्रकट होता है। स्वच्छता की दृष्टि से भी निरामिष अधिक हितकर होता है।

2. ऐसा आहार लेना चाहिए जिसमें पौष्टिक तत्त्वो का सार पर्याप्त मात्रा में हो और जिसको पाचन-यन्त्र सुगमता से ग्रहण कर सके। उदाहरण के लिए दूध को लीजिए। प्राचीन और आधुनिक दोनों मतो से दूध मनुष्य का सर्वोत्तम आहार माना जाता है। जीवनोपयोगी सभी पौष्टिक तत्त्व—प्रोटीन, चरबी, कार्बोहाइड्रेट (दुग्धशर्करा), जल, लोहा, गधक, फासफोरस, चूना, पोटेशियम आदि खनिज पदार्थ तथा सभी आवश्यक विटैमिन इसमें मिल जाते है। इसलिए इसको पूर्णाहार माना जाता है। इन गुणों के अतिरिक्त दूध आसानी से पच जाता है। उसको पचाने में इन्द्रियों को शक्ति का अपव्यय नही करना पड़ता। इन सब गुणों के साथ दूध अतड़ियों के विष और कीड़ो का प्रबल नाशक भी होता है। सब दृष्टियों से वह मनुष्य का स्वाभाविक आहार एवं जीवन-रक्षक होता है। पौष्टिक, जीवन-रक्षक और साथ ही सुपच होने के कारण वह अनुकूल पड़ता है। गत वर्षो से सोयाबीन की बडी चर्चा थी और वैज्ञानिक परीक्षा से यह सिद्ध हुआ था कि उसमें दूध ही के

समान गुण है, परन्तु अब पता चला है कि उसमें सर्वगुणसम्पन्नता होते हुए भी पाचन-यत्र उसके सार को ग्रहण नही करता, क्योंकि यह उसके स्वभाव के अनुकूल नही पड़ता। इसलिए सोयाबीन की महिमा अब घट गई है। वास्तव में इन्द्रियों की ग्राहिका शक्ति के अनुसार ही पदार्थों के सार अश उपलब्ध होते है। कैसा भी पौष्टिक आहार खाइए, यदि वह भीतर की प्रकृति के अनुकूल न पड़ेगा, तो शरीर उसको स्वीकार न करेगा।

दूध के अतिरिक्त केले को लीजिए। विटैमिन 'बी', 'सी' के साथ-साथ इसमें चरबी, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, जल तथा लोहा, फासफोरस, चूना आदि खनिज पदार्थ मिलते है और वह जन्तु-नाशक भी होता है। इसको भी पूर्णाहार मानते है। आयुर्वेदाचार्य डॉक्टर भास्कर गोविन्द ताणेकर ने सुश्रुद्यसहिता की टीका में प्रसगवश लिखा है कि 'तीन अच्छी तरह पके हुए केले और डेढ़ सेर दूध एक मनुष्य के लिए एक समय का उत्तम आहार होता है। दूध के साथ केले के मिलने पर सभी विटैमिन उपलब्ध हो सकते है क्योंकि केले में 'बी' और 'सी' विटैमिन तथा दूध में 'ए', 'डी' और 'ई' विशेष रूप से मिलते हैं।

3. पौष्टिक तत्वो और विटैमिनो के चक्कर में विशेष रूप से न पड़कर मोटे तौर पर यह मान लेना चाहिए कि जिस स्थान पर, जिस ऋतु में जो स्वाभाविक खाद्यपदार्थ उत्पन्न होता है, वही वहां का, उस समय का और वहां के लोगों का सबसे अधिक पौष्टिक और जीवनीय द्रव्य-सयुक्त आहार होता है। यही प्रकृति की व्यवस्था है। उन आहारों को उचित मात्रा मे संगठित करके और स्वाभाविक रूप से लेना चाहिए। स्वच्छता की दृष्टि से और स्वाद की दृष्टि से उनको पकाना चाहिए, पर इस बात का ध्यान रखकर कि उनके उपयोगी अश जले नही या व्यर्थ न जाए। उदाहरण के लिए चावल को लीजिए। बहुत-से लोग चावल के माड को फेक देते है। उसके साथ चावल का सारा तत्त्व निकल जाता है। बहुत-से लोग पालिश किए चावल खाते है, जिनके ऊपर की पर्त छिली रहती है। उसी आवरण में चावल के सारे पौष्टिक तत्त्व रहते है। उसके निकलने से वह निस्सार एवं और भारी रोग पैदा

करनेवाला हो जाता है। इसलिए आहार को यथासम्भव उसके प्राकृतिक रूप में लेना चाहिए। साथ ही सामयिक शाक-भाजी और फल अवश्य लेने चाहिए। उनको ठीक से पकाने और न पकाने से भी उनके गुणों में भेद पड जाता है, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। जब वे सुन्दर रीति से पके रहते हैं, तो स्वाद से खाने के साथ मुख का पाचन रस भी उनके साथ ठीक मात्रा में मिश्रित होता है और वे आसानी से पचते हैं।

4 व्यक्तिगत रुचि, अनुकूलता, आवश्यकता और पाचन-शक्ति के अनुसार ही आहार लेना चाहिए। सबके लिए एक-सा आहार अनुकूल नही पड़ सकता, क्योंकि सबकी प्रकृति और शारीरिक बनावट भिन्न होती है। अतएव रुचि को ध्यान में रखकर ऐसा ही आहार ग्रहण करना चाहिए जो शरीर के अनुकूल पड़े और जिसको अंतड़िया बिना उछल-कूद के पचाकर उसके सार को आवश्यकतानुसार ले सके। वह भोजन ऐसा हो और इतनी मात्रा में हो कि उसको हजम करने में शारीरिक शक्ति का अपव्यय न हो।

रुचि आदि के साथ शरीर की आवश्यकता का भी ध्यान रखना चाहिए। जिस समय शरीर को जैसे पौष्टिक तत्त्वों की मांग हो, वैसा आहार लेना ठीक होता है। परिश्रमी को प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट की विशेष आवश्यकता पड़ती है। इसलिए ऐसे पदार्थ जिनसे ये तत्त्व मिल सकें, लेना उसके लिए हितकर होगा। बैठकर मानसिक कार्य करने वाले को इनकी अधिक मात्रा मे हानि हो सकती है, क्योंकि उनसे चरबी बढेगी। इसलिए अंग्रेजी में एक कहावत है कि जो वस्तु एक व्यक्ति के लिए मांस (अर्थात् विलायती अमृत) हो सकती है, वही दूसरे के लिए विप हो सकती है।[1]

5 बाजार-भाव के अनुसार किसी खाद्यपदार्थ की उत्तमता का अनुमान न करना चाहिए। पोपक तत्त्वों के कारण वस्तुओं का मूल्य नही निर्धारित होता। वे कितनी कठिनाई या आसानी से मिलती हैं, उनकी खपत कैसी है और उनका स्वाद कैसा होता है, इन्हीके आधार

1. What is one man's meat is another man's poison

पर वाजार की सभी चीजो के दाम बधते है। अतएव इस भ्रम में न पड़ना चाहिए कि कोई महगी वस्तु ही स्वास्थ्यकर होगी। साथ ही किसी स्वास्थ्यकर वस्तु को स्वास्थ्य से वढकर मूल्यवान् न मानना चाहिए जिस वस्तु से स्वास्थ्य को लाभ पहुचे, वह महगी होकर भी वाद में सस्ती पड़ती है, क्योंकि ओषधियो का खर्च वचता है। सस्ती किन्तु अस्वास्थ्यकर वस्तु वाद में महगी पड़ती है। उन पदार्थों को लेना चाहिए, जो स्वास्थ्यप्रद होने के साथ सस्ते हों। भरण की अपेक्षा पोपण अधिक आवश्यक है, इसको भूलना न चाहिए।

6 खाद्यपदार्थों के चुनाव में इस बात का ध्यान विशेप रूप में रखना चाहिए कि उनके सेवन से किसी प्रकार का रक्त-विकार न हो। शरीर का सारा कार्य रक्त से ही चलता है और रक्त आहार से वनता है। जब वह शुद्ध होकर शरीर में ठीक-ठीक प्रवाहित होता है तभी स्वास्थ्य ठीक चलता है। उसके दूषित या शिथिल होने से शरीर निर्वल हो जाता है। उत्तेजक पदार्थ लेने से उसमे रूक्षता आ जाती है। रक्त का प्रवाह मन्द होने से शरीर ढीला पड जाता है। मस्तिष्क का रक्त-प्रवाह कम होने से चक्कर आता है और नेत्रो की ज्योति मन्द पड़ जाती है; अधिक होने से सिर-दर्द और किसी स्थान पर अवरुद्ध होने से पक्षाघात हो जाता है।

रक्त-शुद्धि के साथ स्नायुमडल को भी ध्यान में रखना चाहिए, क्योकि स्नायुमडल की शक्तता पर शरीर अवलम्बित रहता है। उत्तेजक आहार से वह वाद में ढीला हो जाता है। मस्तिष्क सस्थान के रक्त में यदि विटैमिनो के साथ फासफोरस और कैलसियम आदि का उचित सगठन नही होता तो नाड़ियो में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं और स्नायु-दुर्वलता से शरीर वेकार-सा हो जाता है। इसलिए रक्त-वर्द्धक और रक्त-शोधक पदार्थो को ही पथ्य मानना चाहिए।

भोजन कैसे करना चाहिए

क्या खाना चाहिए, इसकी अपेक्षा कैसे खाना चाहिए, यह जानना अधिक आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए :

1. स्वाद के साथ भोजन ग्रहण करना चाहिए। स्वाद के साथ साधारण आहार लेने पर भी शरीर के लिए रसायन बन जाता है। उसके साथ शरीर के पाचन-रस स्वाभाविक रीति से मिलकर उसको पचाते हैं। बिना स्वाद का खाया हुआ उत्तम भोजन भी ठीक से नहीं पचता और शरीर के लिए भारस्वरूप या खाद बन जाता है, जिसमें व्याधियों के कीड़े या अंकुर ही उत्पन्न होते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वाभाविक स्वाद भूख से ही उत्पन्न होता है। औदरिक या घस्मर (जिसके मन में खाने के अतिरिक्त कोई अन्य विषय न हो) व्यक्ति के मन में भोजन के प्रति जो अनुराग उत्पन्न होता है वह स्वाद नहीं, लोभ का परिचायक होता है। राजा धृतराष्ट्र को दिया हुआ विदुर का यह उपदेश इस प्रसंग में उल्लेखनीय है :

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा॥ (महाभारत)

अर्थात् दरिद्र व्यक्ति जो भी खाए, सदा अच्छा ही भोजन करता है, क्योंकि वह भूख से खाता है। स्वाद को उत्पन्न करनेवाली वह भूख धनिकों को दुर्लभ है।

2. सदैव स्वस्थचित्त होकर ही खाना चाहिए। आहार और पाचन-क्रिया पर चित्त-दशा का प्रभाव पड़ता है। बिना मन का खाया हुआ अन्न शरीर में नहीं लगता। मन से खाने पर साधारण पदार्थ भी तृप्ति-दायक होता है। चित्त प्रसन्न रहने से पाचन-ग्रंथियों द्वारा नियमित रूप से पाचन-रस द्रवित होता है। चित्त की विकलता से भोजन में अरुचि होती है, आहार बिना बुलाए हुए अतिथि की तरह पेट में पड़ा रहता है, कोई उसको पूछता नहीं।

चिन्ता, भय, मन की उद्विग्नता, ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध आदि विकारों का तात्कालिक प्रभाव पाचन-क्रिया पर पड़ता है। चिन्ता में आहार निष्फल जाता है, इसको तो आप किसी विरही की दशा देखकर समझ सकते हैं। आप स्वयं अनुभव करके देख सकते हैं कि किसी विषय पर देर तक चिन्ता करने से बार-बार मूत्र-विसर्जन करना पड़ता है। मधु-मेह के प्रधान कारणों में अधिक मानसिक परिश्रम और चिन्ता ही है।

अधिक चिन्ता और भय से सिर के बाल 24 घण्टो में सफेद होते सुने गए है। जब सम्पूर्ण शारीरिक स्वास्थ्य पर उसका इतना प्रभाव पड़ता है, तो आहार और पाचन-क्रिया पर क्यों न पड़ेगा ? भय का प्रभाव तो और भी स्पष्ट होता है। आपने सुना होगा कि बहुत-से लोग भय-ग्रस्त होने पर मल-मूत्र त्याग देते है। भयाक्रान्त होने पर भीतर के यत्र अशक्त हो जाते हैं, इसलिए खाए हुए पदार्थ को रोकने की शक्ति उनमें नही रहती। पाठ याद न करने पर अथवा अध्यापक की क्रूरता के भय से विद्यार्थी प्रायः पेशाब करने के लिए छुट्टी मांगते हैं। यह उनका बहाना ही नही कहा जा सकता; वास्तव में उन्हे पेशाब की हाजत होती है। क्रोध आदि से पाचन-क्रिया निश्चय ही बिगड जाती है क्योंकि क्रोध से रक्त उत्तेजित होता है, उसका दबाव बढता है और वह पाचन-यंत्र से हटकर मस्तिष्क में सचित हो जाता है। इससे आहार का पाचन नही होता, क्योंकि इन्द्रियां निर्बल होती है और क्षुधा-शक्ति क्षीण हो जाती है। महर्षि सुश्रुत का यह वचन मानने योग्य है :

ईर्ष्याभयक्रोधपरीक्षितेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्न न सम्यक् परिणाममेति ॥

(सुश्रुतसंहिता)

ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, चिन्ता, दैन्य तथा द्वेष से पीड़ित मनुष्यों द्वारा खाया हुआ भोजन ठीक से नही पचता। स्नानादि करके और हाथ-पैर धोकर भोजनगृह में खाने का जो प्राचीन नियम है, उसका उद्देश्य बाह्य शुद्धता ही नही, आन्तरिक शान्ति भी है। मनुष्य जब शान्तचित्त होकर ऐसे वातावरण में बैठकर भोजन करता है जहां अन्य आकर्षण नही होते, तो चित्त भोजन में लगा रहता है। अकेले भोजन करने की अपेक्षा कुछ साथियों और सहवर्गियों के साथ बैठकर भोजन करने में अधिक तृप्ति होती है, क्योकि तब चित्त चिन्ताओं से मुक्त रहता है और लोग आमोद-प्रमोद के साथ खाते हैं। आन्तरिक तृप्ति एव सन्तोष भोजन का विशेष प्रयोजन है। वह तृप्ति स्वादिष्ट भोजन से ही नही प्राप्त होती है। भोजन कैसा ही मधुर हो, किन्तु यदि गृहिणी कलहकारिणी हो तो उसका ठीक स्वाद न मिलेगा। भोजन देनेवाली

सुशील और मृदुभाषिणी हो तो रूखा-सूखा भोजन भी तृप्तिदायक होता है। मानसिक शान्ति-अशान्ति का ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। कर्कशा-नाथ तो घर में घुसते ही सशंकित रहता है कि पता नहीं आहार खाने को मिले या गालियां। वह भोजन को कम पचाता है और अपनी व्यथा को अधिक। मृदुला-पति को विश्वास रहता है कि जो भी उसको मिलता है या मिलेगा वह सर्वोत्तम होगा, क्योंकि वह प्रेम से दिया जाएगा। प्रेम से बढ़कर पाचन-रस कोई नहीं होता। मनुष्य खाद्य-पदार्थों का नहीं, मान-प्रतिष्ठा का भी भूखा रहनेवाला जीव होता है। किसी कंजूस आदमी के यहां बिना आदर-सत्कार के अच्छा खाना भी मिल जाए तो उससे चित्त नहीं भरता। साधारण किन्तु उदार हृदय वाले व्यक्ति का रूखा-सूखा भोजन भी अतिथि को बड़ा सुस्वादु लगता है। कृष्ण ने विदुर का साग बड़े स्वाद के साथ खाया था। मनुष्य का भोजन ऐसा होना चाहिए जिससे उसका पेट नहीं, बल्कि चित्त भी भर सके।

आत्म-संतोष के लिए यह भी आवश्यक होता है कि अपने परिश्रम की कमाई का खाना खाया जाए। वह साधारण होकर भी बल और तेज की वृद्धि करता है। चोरी का धन पचता नहीं है, क्योंकि मानसिक ग्लानि उसको पचने के पहले ही गलाकर निस्सार कर देती है। लोभ से आत्म-संतोष नष्ट हो जाता है, इसलिए कभी तृप्ति नहीं होती और बिना तृप्ति का आहार व्यर्थ हो जाता है। इस सम्बन्ध में एक बात और याद रखने योग्य है। वह यह है कि भोजन की स्वच्छता, उसके रंग, गंध, रूप आदि का भी यथेष्ट प्रभाव चित्त-दशा पर पड़ता है। रुचि को जगाने के लिए आहार की इन विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिए। गन्दगी आदि से मन भड़क जाता है।

3. आहार-भक्षण करते समय उसको धीरे-धीरे चबाकर और अच्छी तरह मर्दित करके तब अंतड़ियों को सौंपना चाहिए। खाने में शीघ्रता कभी हितकर नहीं होती। यथासंभव सादा और मृदु आहार ही नियमित रूप से नियत समय पर खाना चाहिए। अधिक मिर्च-मसालों के उपयोग से जिह्वा को सुख अवश्य मिलता है, परन्तु अंतड़ियों की दुर्दशा हो जाती है। उनसे रक्त की रूक्षता बढ़ती है, पाचन-रस का

अपव्यय और पुरुषार्थ का नाश होता है। यह भी याद रखना चाहिए कि अधिक नमक वैज्ञानिक दृष्टि से पुरुषार्थ-नाशक होता है। मिर्च-मसालों और नमकीन वस्तुओ के विशेष उपयोग से जल अधिक पीना पड़ता है। भोजन के समय और उसके उपरान्त अधिक जल पीने से पाचन-सामग्री पतली हो जाती है और पाचन-रस स्वयं इतना पतला हो जाता है कि भोजन ठीक से नही पचता। इसलिए थोडा-थोड़ा करके पानी पीना चाहिए और ऐसा आहार लेना चाहिए जो अधिक पानी न मागे : 'मुहुर्मुहुर्वारि पिवेदभूरि' (भावप्रकाश)। जल के विपय में हम विशेप रूप से आगे लिखेगे।

4. भोजन के बाद शारीरिक और मानसिक परिश्रम से वचना चाहिए। जव खाना पचने लगता है तो शरीर का रक्त-प्रसार मुख्यतः अतडियो पर होता है। अन्य अगों में, मुख्यतः मस्तिष्क में रक्त की कमी हो जाती है जिसके कारण सुस्ती, ठंडक और ऊघाई आदि का अनुभव होता है। उस दशा में शारीरिक या मानसिक परिश्रम करने से रक्त पाचन-यत्रों को सहयोग देना छोड़कर अन्य पेशियो की ओर भागता है, जिसके कारण ठीक पाचन नही हो पाता। इसलिए सुश्रुत ने कहा है कि खाने के वाद जव तक अन्न का भारीपन रहे, तव तक राजा की तरह (निश्चिन्त होकर) विश्राम करे, उसके बाद सौ पद चलकर वाई करवट लेटना चाहिए।

भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नक्लमो गतः।
ततः पादशत गत्वा वामपार्श्वेन सविशेत्॥ (सुश्रुतसहिता)

आजकल स्वास्थ्य-नाश का एक मुख्य कारण यह है कि लोग खाने के वाद प्रायः काम में लग जाते है। वावू, विद्यार्थी, व्यापारी आदि खाने के वाद दौड़ते है और फिर मानसिक परिश्रम करते है। इससे भोजन ठीक तरह से नही पचता और परिणाम होता है अजीर्णता, कोष्ठवद्धता तथा शक्ति-क्षय। सस्कृत की प्राचीन लोकोक्ति है कि जो भोजन के बाद दौडता है उसके पीछे मृत्यु दौड़ती है : 'मृत्युर्धावति धावत।'

5. भोजन के वाद शरीर में कफ वढ़ता है। इसीलिए सुश्रुत ने

लिखा है कि उसको दबाने के लिए बुद्धिमान् को उचित है कि वह पान, धूम्रपान, कपूर, लौंग या कषाय, कटु, तिक्त पदार्थों का सेवन करे। सुश्रुत ने यह भी लिखा है कि भोजन के बाद चित्तवृत्ति को विगाड़ने-वाले शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श से बचना चाहिए।

जल का महत्त्व

जल के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातों का उल्लेख कर देना आवश्यक है, क्योंकि वह जीवन का एक मुख्य आधार है। उसका संस्कृत नाम भी जीवन तथा जीविका है। अन्न-जल ही शरीर को जीवित रखते हैं। आदिकाल से ही इसके महत्त्व को स्वीकार किया गया है। वेदों ने भी जल की स्तुति की है:

आपः इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्॥ (अथर्ववेद)

जल ही ओषधि है; वही रोग-नाश का कारण है; वही सकल व्याधियों की ओषधि है। जल! तुम लोगो की ओषधि बनो।

जल में स्वयं कोई पौष्टिक तत्त्व नही होता, फिर भी शरीर के पौष्टिक तत्त्वों का धारक और प्रवाहक वही होता है। उसके अशुद्ध होने से अन्य तत्त्व अशुद्ध हो जाते हैं। उसके अभाव से शरीर मे शुष्कता एवं विकलता उत्पन्न होती है, क्योंकि रासायनिक द्रव्य शुष्क होने लगते हैं और रक्त की गति शिथिल पड़ जाती है। जल का प्रभाव मस्तिष्क की क्रिया पर विशेष रूप से पडता है। इसका एक प्रमाण तो यही है कि गर्मी के दिनो में पानी न मिलने से बेचैनी होती है और बुद्धि ठिकाने नही रहती। परिश्रम के बाद पसीने से जब जल का अंश शरीर से बाहर आ जाता है तो थकावट का अनुभव होता है। पानी पीने से चित्त और शरीर दोनो स्वस्थ हो जाते हैं।

एक प्रसिद्ध रूसी डॉक्टर (डॉ० ई० पॉदोलस्की) ने इस सम्बन्ध में कुछ उपयोगी बातें लिखी है। उसने लिखा है कि सुचारु रूप से मानसिक क्रिया के संचालन के लिए उचित मात्रा मे पानी की आवश्यकता पड़ती है। बहुत कम या आवश्यकता से अधिक होने पर वह मस्तिष्क के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। इससे मानसिक क्रिया-शक्ति का ह्रास

होता है। जब जल का अंश विशेष रूप से अधिक या कम हो जाता है तो प्रायः चित्त-भ्रान्ति, तन्द्रा और संज्ञा-नाश होता है। जल आवश्यक तत्त्वों को सम्मिश्रित और संयुक्त रखता है। शरीर का जल-अंश कम या अधिक होने से मनुष्य की विचारशक्ति अस्त-व्यस्त हो जाती है।[1]

जल को हमेशा शुद्ध रूप में और प्यास के अनुसार लेना चाहिए। प्यास से ही ज्ञात होता है कि शरीर और मस्तिष्क को कब उसकी आवश्यकता है। कभी-कभी कृत्रिम तृषा भी लगती है; जैसे उत्तेजक और चटपटी वस्तुएं खाने पर। मांस खाने पर भी अधिक पानी की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि उससे उत्पन्न 'यूरिक एसिड' नामक दूषित पदार्थ को बाहर निकालने के लिए अधिक जल की आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था में आवश्यकता से अधिक जल पीना पड़ता है, अन्यथा रक्तविकार उत्पन्न होता है। अधिक जल का कुपरिणाम हम ऊपर लिख चुके हैं। अतएव सर्वोत्तम यह है कि ऐसा आहार खाया ही न जाए जिससे अस्वाभाविक प्यास लगे।

प्रातःकाल दातुन आदि करके पेट-भर पानी अमृत जैसा लाभ करता है। उसको उषा-पान कहते हैं। वह पेट को शुद्ध करता है, रक्त को शुद्ध एवं शान्त करता है और नेत्रों के लिए हितकारी होता है। अनुभवी लोगों का कहना है कि नियमित रूप से उषा-पान करने से शिरोरोग नहीं होता और केश वृद्धावस्था तक काले रहते हैं। घाघ ने भी लिखा है :

प्रातकाल खटिया ते उठिके, पियै तुरन्तै पानी।
ता घर कबहूं वैद न आवै, बात घाघ कै जानी॥

मस्तिष्क पर आहार का प्रभाव

आहार का प्रभाव मस्तिष्क पर कैसे पड़ता है, इसको ठीक-ठीक

---

1 The efficiently functioning brain also requires proper amount of water—too little or too much is disastrous, not only resulting in decreased mental efficiency, but when this balance is profoundly upset it leads to delirium, stupor and coma Water holds the essential chemicals in solution and in the required amount of concentration A shift in the either direction may result in distorted thinking —Medical Record

जान लेना चाहिए क्योंकि मस्तिष्क द्वारा ही शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन होता है। भोजन का क्षणिक और स्थायी प्रभाव मस्तिष्क पर तत्काल पड़ता है जैसा कि मद्यसेवन के प्रभाव से समझा जा सकता है।

उक्त रूसी डॉक्टर (डॉ० ई० पॉदोलस्की) ने इस विषय में विशेष रूप से अध्ययन करके कुछ महत्त्वपूर्ण बातें प्रकाशित की है। उसका कहना है कि भक्षित पदार्थों में से जो खनिज तत्त्व निकलते हैं, वे मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव डालते हैं। स्वस्थ मस्तिष्क के रक्त में उनका सम्मिश्रण ठीक परिमाण में मिलता है। परन्तु अस्वस्थ मस्तिष्क में वे अधिक या न्यून मात्रा में मिलते है। ज्यों-ज्यों वे रासायनिक तत्त्व अपनी स्वाभाविक मात्रा से अधिक या कम होते है त्यों-त्यों मनुष्य की चित्त-वृत्ति और बुद्धि-शक्ति में अन्तर पड़ता है और प्रायः मनुष्य का सारा व्यक्तित्व ही परिवर्तित हो जाता है। वैज्ञानिक परीक्षा करने पर कई प्रकार के पागलों के मस्तिष्क में शर्करा-अंश आवश्यकता से अधिक पाया गया है। बहुत-से पागलों की परीक्षा से ज्ञात हुआ कि उनके मस्तिष्क में कैलसियम और फासफोरस अत्यधिक मात्रा में थे। कई ऐसे रोगियों की परीक्षा की गई जिनकी विचार-शक्ति लुप्त हो गई थी और पता चला कि उनके रक्त में चीनी का तत्त्वांश बहुत कम था। गंधक और लौह तत्त्वों की कमी से अनेक मानसिक क्रियाएं स्तब्ध होती देखी गई हैं। कई प्रकार के मानसिक रोग इनकी अधिकता के कारण उत्पन्न होते पाए गए हैं, क्योकि गधक और लौह तत्त्वों के आधिक्य से मस्तिष्क उत्तेजित एवं विक्षिप्त हो जाता है।

अधिक अम्ल अथवा क्षार-विशिष्ट पदार्थों से मस्तिष्क बहुत जल्दी प्रभावित होता है। मधुमेही के मस्तिष्क में अम्लरस[1] का प्राचुर्य मिलता है। अपस्मार, मानसिक व्याकुलता और सज्ञाहीनता के विकार प्रायः क्षार द्रव्यों की प्रचुरता से उत्पन्न होते हैं। कैलसियम और फासफोरस दोनों उचित मात्रा में मज्जा-तंतुओ को बल, तेज और स्फूर्ति देते है। यह कम हो जाते है तो आलस्य और जड़ता के लक्षण प्रकट होते हैं।

1 Acid

और उन्हीके बढने से विचारों में चचलता, झुंझलाहट होती है तथा विकलता का अनुभव होता है। लौह तत्त्व से विचारों में दृढता आती है और मस्तिष्क पुष्ट होता है। बच्चों के ज्ञान-ततुओं में अवस्था के अनुसार लौह-अश वयस्क की अपेक्षा कम होता है, इसलिए वे चचल और विवेकहीन होते है। ज्यो-ज्यो आहार द्वारा वे लौह-अश प्राप्त करते है, त्यो-त्यो उनका मस्तिष्क पोषित होता है।

हरी शाक-भाजी और फल खाने से मन क्यों साफ हो जाता है, यह ऊपर के विवरण से समझा जा सकता है। उनमें खनिज अश प्रचुर मात्रा मे होता है जो मस्तिष्क के अनुकूल पडता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि खनिज द्रव्य अन्य द्रव्यों की भाति पाचन-क्रिया से रस के रूप मे परिवर्तित होकर तब रक्त में नही मिलते। वे सीधे रक्त मे मिश्रित हो जाते है इसलिए उनका प्रभाव जल्दी दिखलाई पडता है।

इस प्रसग में दो-एक अन्य जानने योग्य बातो का उल्लेख हम इसलिए करेगे कि उनके विषय में लोगों में कुछ भ्रम है। पहली बात तो यह है कि ज्ञानोत्कर्ष के लिए कौन-सा यौगिक पदार्थ परमावश्यक है, इसका अभी तक ठीक-ठीक पता नही चला है। लोगों में यह विश्वास फैला है कि मछली में फासफोरस का अश बहुत होता है, इसलिए वह मस्तिष्क-शक्ति की वृद्धि के लिए उत्तम खाद्यपदार्थ है। परन्तु वैज्ञानिक परीक्षा से यह असिद्ध प्रमाणित हुआ है। अंग्रेजी विश्वकोष में इस सम्बन्ध में ऐसा लिखा है।[1]

दूसरी बात चावल के सम्बन्ध में है। चावल मस्तिष्क-पोषक होता है। विश्व-प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक डॉक्टर एन० आर० धर ने 2 अगस्त, 1948 को कलकत्ते में एक लेक्चर दिया था। उसमे उन्होंने बताया कि प्रोटीन में जो ऐमिनो एसिड[2] नामक पदार्थ होता है, उसके

---

1 What compounds are especially concerned in intellectual activity is not known The belief that fish is especially rich in phosphorus and valuable as a brain food has no foundation in observed fact.

—Encyclopaedia Britannica

2. Amino acid

दो भेद होते है—एक विशिष्ट, दूसरा सामान्य[1]। विशिष्ट प्रकार का द्रव्य शरीर तथा मस्तिष्क के विकास और पोषण के लिए नितान्त आवश्यक होता है। दूध, मछली, अडे आदि के प्रोटीन में ऐमिनो एसिड का विशिष्ट अंश ही अधिक होता है। गेहूं में यद्यपि चावल की अपेक्षा प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है, परन्तु चावल के प्रोटीन में एमिनो एसिड का विशिष्ट भाग गेहूं की अपेक्षा अधिक होता है। धर महोदय के मत से पूर्वीय देशों के बौद्धिक विकास का प्रधान कारण चावल में प्राप्त होनेवाला उच्चकोटि का प्रोटीन ही है और इसलिए इधर चावल की खेती विशेष रूप से की जाती है। चावल से भड़कनेवाले लोग चावल खाकर देखे; सम्भव है, ज्ञान तीव्र होने पर उनको पता चले कि चावल के विषय में उनका जो भ्रम था वह चावल न खाने के कारण ही था।

आहार के प्रभाव के सम्बन्ध मे यह बात सर्वमान्य है कि उसके अनुसार शरीर बनता है। मस्तिष्क और साथ ही स्वभाव और चरित्र भी बनता है; क्योंकि स्वभाव, चरित्र एव मस्तिष्क शरीर से ही सम्बन्ध रखते हैं। सात्त्विक आहार की महिमा प्राचीन विद्वानों ने इसीलिए गाई है। इसमें सन्देह नही कि जो जैसा खाता है, वैसा ही बन जाता है। किसी संस्कृत नीतिकार ने कहा है कि जिस प्रकार दीपक अन्धकार को कालिमा का भक्षण करके कज्जल की कालिमा ही पैदा करता है, उसी प्रकार मनुष्य भी जैसा खाता है वैसा ही अपने ज्ञान को प्रकट करता है।

स्वास्थ्य के अन्य सहायक

अब आहार के अतिरिक्त स्वास्थ्य के अन्य प्रमुख सहायको को लीजिए। अकेला भोजन ही जीवन-सर्वस्व नही होता। आयु और आरोग्य के लिए आहार के समान अथवा कुछ अंशो मे उससे भी अधिक उपयोगी कुछ अन्य वस्तुए भी है। उनमे से वायु सर्वप्रमुख है। भोजन के बिना तो मनुष्य दो-एक महीने तक जीवित रह सकता है, परन्तु वायु के बिना कुछ मिनट भी नहीं जी सकता। समस्त प्राकृतिक जीवन वायु

1. Essential, Non-Essential

द्वारा ही चलता है। शास्त्र का यह वचन सर्वथा सत्य है :

वायुना वै गौतम सूत्रेणाऽयञ्च लोकः परश्च लोकः
सर्वाणि च भूतानि सम्बद्धानि भवन्ति ।

हे गौतम ! वायु धागे की तरह है; जैसे धागे में मणियां पिरोई रहती है, वैसे ही समस्त भूत वायु-सूत्र में गुथे रहते है।

वायु का साधारण धर्म है प्रकृति को प्रगतिशीलता देना और सर्वगामी, सर्वात्मा होकर जीवन को स्पन्दित करना तथा वस्तुओं को परिवर्तित करना। उसका दूसरा मुख्य धर्म है जीवों में जीवनाग्नि उद्दीप्त करना। शास्त्रों ने वायु को अग्नि का तेज और अग्नि की आत्मा कहा है। आधुनिक विज्ञान भी उसको दहनात्मक मानता है क्योकि उसके मुख्य तत्त्व ऑक्सीजन से ही दहन-क्रिया सम्पन्न होती है। वही प्राणवायु है। तीसरा वायु-धर्म है धातुवर्द्धन और पोषण। उसके नाइट्रोजन नामक अश से ही धातु-तन्तुओं का निर्माण एव सवर्द्धन होता है। ऑक्सीजन की दहनात्मक क्रिया पर नाइट्रोजन ही नियन्त्रण रखता है।

शरीर के साथ वायु का सम्बन्ध

स्वस्थ दशा मे मानव-शरीर को प्रतिघण्टे लगभग चार गैलन ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। उसका अधिकांश भाग श्वास द्वारा भीतर जाता है, शेप रोम-छिद्रो से। फेफड़े ऑक्सीजन को ग्रहण करके उसको रक्त में मिश्रित करते है। उसीसे हृदय का कार्य चलता है। ज्यों-ज्यो शरीर की शक्ति व्यय होती है, त्यों-त्यो अधिक प्राणवायु की आवश्यकता होती है और वह फेफडों द्वारा सुलभ होती है। ऑक्सीजन से दैहिक ताप उत्पन्न होता है और उसीसे पाचन-क्रिया चलती है। उसके द्वारा रक्त को नवजीवन मिलता है, शरीर मे शक्ति, स्फूर्ति और कान्ति की वृद्धि होती है तथा शरीर में उत्पन्न विपो का नाश होता है। वायु के ताप से भीतर पक्वाशय में जव खाद्य पदार्थो का परिपाक होता है तो उसमे से कार्वन डाइआक्साइड नामक एक विपाक्त गैस निकलती है। शरीर में कार्वन (अंगार) प्रचुर मात्रा में रहता है। उसके साथ ऑक्सीजन का सयोग होने से वे जलते है और यह गैस पैदा होती है, प्रश्वास से वह वाहर निकलती है। श्वास से जव फेफड़ों में

ऑक्सीजन गृहीत होती है तभी बाहर से कार्बन डाइआक्साइड बाहर निकलती है।

कार्बन डाइआक्साइड

कार्बन डाइआक्साइड के विषय में कुछ जानना आवश्यक है। यह वही गैस है जो प्रायः कोयले के जलाने पर निकलती है। इसमें इतना विष होता है कि कभी-कभी जो लोग बन्द कमरों में अंगीठी जलाकर सोते हैं वे प्रातःकाल मरे हुए या बेहोश पाए जाते हैं। प्रकृति में यह गैस गन्दी वस्तुओं की सड़न से, शहरो की गन्दी नालियों से, दलदल, पुराने कुओं और मिलों-फैक्टरियों के धुएं से उत्पन्न होती है। कोई भी वस्तु जब सड़ने लगती है तो यह उसमें से प्रचुर मात्रा में निकलती है। कभी-कभी बन्द कमरों में पके फल रखकर सोने से रात में उनकी सड़न से लोग बेहोश हो जाते हैं या मर जाते है।

यह घातक गैस होती है। शरीर में सचित होकर यह व्याधि ही नही, मृत्यु का भी कारण होती है। तीस वर्ष की आयु तक पुरुष के प्रश्वास से यह अधिक मात्रा में निकलती है। फिर क्रमशः घटने लगती है। स्त्रियों के प्रश्वास में यह कम मात्रा में होती है। दिन में यह अधिक निकलती है और वायुमण्डल में आकर मिलती है, सन्ध्या में कम होती है। सूर्य-किरणों का स्वाभाविक गुण होता है कि वे सब वस्तुओं में से कार्बन डाइआक्साइड को खींचकर बाहर करती हैं। रात्रि में बाहर का ताप कम रहने से और शारीरिक क्रियाओ की शिथिलता के कारण यह प्रश्वास से भी कम निकलती है, और आधी रात को बहुत ही कम हो जाती है। प्रातःकाल वायुमण्डल में यह गैस कम मात्रा मे रहती है; क्योंकि एक तो मनुष्य के प्रश्वास से कम निकलती है, दूसरे सूर्य-ताप के प्रभाव के कारण वह अन्य वस्तुओ से निकलकर वायु में व्याप्त नही होती। प्रभातकालीन वायु का महत्त्व इसलिए अधिक है कि उसमें ऑक्सीजन प्रचुर मात्रा में मिल जाता है जिसके कारण विशेष स्फूर्ति और शक्ति मिलती है।

प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार वनस्पतियां इस विष को पीकर जीवों के लिए ऑक्सीजन रूपी अमृत दान करती है। उनका यह स्वाभा-

विक गुण ही है कि वे स्वय खाद खाकर फल उत्पन्न करती है। इसलिए जो लोग खुले स्थानो में वनस्पतियो के सम्पर्क में रहते है वे विशेष चैतन्य रहते है क्योकि उनको प्राण-वायु अधिक मिलती है। गांववालों की परिश्रम-शक्ति और जीवन-शक्ति इसी कारण से प्रवल होती है। शहरो में वनस्पतियो का अभाव होता है, बहुत-से लोग सकुचित स्थानों में रहते है और जनसंख्या की अधिकता से एक सीमित क्षेत्र में कार्बन डाइआक्साइड प्रश्वास द्वारा अत्यधिक मात्रा में निकलती है। दूसरे नालियो की गन्दगी, मिल के धुए आदि से यह और भी वढती है और उस हलाहल को पीने वाले शिव—पेड़—वहां नही रहते, इससे यह विपाक्त गैस वहा निरन्तर व्याप्त रहती है। लोगों की श्वास-वायु में इसीकी मात्रा अधिक होती है। परिणामत. फेफडे दुर्बल हो जाते है। इस रहस्य को आप इस रूप में समझिए—बहुत-से आदमी जब किसी एक सकीर्ण कमरे में साथ सोते है तो प्रातःकाल सुस्त या अस्वस्थ हो जाते है क्योकि वे शुद्ध वायु नही बल्कि रात-भर एक-दूसरे का प्रश्वास पिए रहते है। मुह ढककर सोनेवालों की भी यही दशा होती है, क्योकि वे अपनी ही निकाली हुई दूषित वायु को रात-भर पिए रहते हैं। जब वाहर से ऑक्सीजन नही मिलता तो स्वभावतः भीतर कार्वन डाइ-आक्साइड सचित रहता है। प्राकृतिक नियम है कि जब फेफड़े में ऑक्सीजन पुलिस की तरह पहुंचता है तभी दूपित वायु चोर की तरह भागती है। प्राण-वायु के न पहुंचने पर नाश-वायु ही रक्त में मिश्रित होती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मासपेशियों के विशेष सचालन, ज्वर-ताप की अधिकता और मनोवेग की तीव्रता से शरीर के भीतर कार्बन डाइआक्साइड की उत्पत्ति अधिक होती है। इसलिए उसको निकालने के लिए परिश्रमी, रोगी और भावुक मनस्ताप से पीड़ितों को स्वच्छ वायु का सेवन नितान्त आवश्यक होता है।

वैज्ञानिक परीक्षा से ज्ञात होता है कि कार्बन डाइआक्साइड का कुप्रभाव मस्तिष्क पर विशेष रूप से पड़ता है। इसके आधिक्य से मस्तिष्क पर थकावट होती है, मन की एकाग्रता नष्ट होती है और चित्त अस्थिर तथा विकल हो जाता है। सज्ञाहीनता, स्नायुवीय दुर्ब-

लता, शिरोरोग इसके मुख्य परिणाम हैं। मुह ढंककर सोने पर जो सांस फूलती है और बेचैनी होती है, वह इसीलिए। दम घुटने पर सज्ञा-हीनता के लक्षण ही पहले प्रकट होते हैं क्योकि बाहर से ऑक्सीजन न मिलने पर भीतर कार्बन डाइग्राक्साइड फैल जाता है।

मस्तिष्क पर ऑक्सीजन का प्रभाव

ऑक्सीजन ही ज्ञान-तंतुओं का प्राण है। एक अनुभवी डॉक्टर (डॉ० ई० पॉदोलस्की) ने लिखा है कि जहां तक बुद्धि के चैतन्य का सम्बन्ध है, ऑक्सीजन एक परमावश्यक तत्त्व है।[1]

आधुनिक ढग से इसकी वैज्ञानिक परीक्षा की गई है। सन् 1862 में इसकी परीक्षा के लिए दो प्रसिद्ध वैज्ञानिक ग्लैशर और काक्सवेल बैलून द्वारा उडकर 48 मिनट में 28,000 फुट की ऊचाई पर गए थे। वहां हवा का दबाव कम होने के कारण ऑक्सीजन बहुत कम मात्रा में उपलब्ध था। परिणामत ग्लैशर महोदय की ज्ञान-शक्ति तत्काल लुप्त हो गई। वे अपनी घड़ी देखकर उससे समय भी नही बता सके थे। उनकी जडता का अनुमान करके गुब्बारे को कुछ नीचे उतारा गया और ऑक्सीजन पाते ही उनकी बुद्धि फिर सचेत हो गई।

दो अन्य वैज्ञानिकों ने इसकी परीक्षा दूसरे ढग से की है। वे लौह-निर्मित एक छोटी-सी कोठरी में घुसे जिसमें यन्त्र की सहायता से हवा का दबाव उतना रखा गया था जितना कि 24,500 फुट की ऊचाई पर होता है। परिणाम यह हुआ कि एक तो शीघ्र ही किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसकी लिखने-पढने और वस्तुओं को पहचानने की क्षमता नष्ट हो गई। कोठरी की छोटी खिड़की से देखने पर उनकी विमूढ़ता का पता चलता था। उनसे कोई भी बात पूछी जाती थी तो वे यही कहते थे कि बस, हमें ऐसा ही पड़े रहने दो। उनका मानसिक विकास पूर्णतया रुक गया था। इसके बाद हवा का दबाव बढाया गया। वे कुछ चैतन्य हुए। उनमें से एक ने पास में रखे हुए शीशे को उठाया, पर उसको इतना ज्ञान नही था कि किस प्रकार उसमें अपना मुह देखा जा सकता है। वह

---

1 Oxygen is the most important element in the brain as far as intelligence is concerned —Medical Record

उसके पीछे के भाग में अपनी मुखाकृति देखने की चेष्टा करने लगा। जब हवा का दबाव बढाकर 14,500 फुट के बराबर लाया गया तो ऑक्सीजन की उचित मात्रा मिलने से उनकी चेतनाशक्ति पुनः सजग हो गई, परन्तु दोनो को यह याद नही था कि इस बीच में उन्होंने क्या-क्या सोचा था और कैसे बेसिर-पैर के काम किए थे। ऑक्सीजन न मिलने से उनकी विचारशक्ति और स्मृति दोनो लुप्त हो गई थी।

उपर्युक्त उदाहरणो से समझा जा सकता है कि प्राचीन ऋषियो ने उपाकाल को क्यों इतना महत्त्व दिया था। सवेरे ऑक्सीजन अधिक से अधिक मात्रा मे सर्वसुलभ रहता है, इसलिए उस समय चिन्तन करने से मस्तिष्क प्रौढ होता है और विचारशक्ति तीव्र होती है। पूर्वकाल में प्रभात दिन का सुवर्णकाल था। उसका लोग, मुख्यतः विद्यार्थीगण और बुद्धि-व्यवसायी जन, पूर्ण उपयोग करते थे। परिणाम भी सुन्दर ही होता था। अब इसका उल्टा होता है। प्रात काल लोग व्यर्थ गवाते हैं और दस बजे जब वायुमण्डल विशेप दूपित हो जाता है तब वे बुद्धि का उपयोग करने निकलते है। फलतः उनकी बुद्धि थक जाती है।

शुद्ध वायु के ये गुण स्पष्ट है—इससे श्वास-प्रश्वास का क्रम ठीक चलता है, शरीर की कार्य करने की शक्ति सचालित होती है। मन में उत्साह तथा चेतना की वृद्धि होती है, चित्त-प्रवृत्ति ठीक रहती है, धातु और इन्द्रियो की पुष्टि होती है, शरीर के तत्त्वो को गति मिलती है, हृदय, रक्त और सम्पूर्ण जीवन का प्रवाह नियमित रूप से चलता है।

वायु-सेवन

शुद्ध वायु का सेवन श्वास से तथा रोम-कूपों से भी करना चाहिए। रोम-कूपो से वायु ग्रहण करने की उत्तम विधि है, उनको स्वच्छ और खुला रखना। स्नान से रोम-छिद्र खुल जाते हैं, तब उनके द्वारा शुद्ध वायु अन्दर जाती है और पसीने के रूप में अन्दर का दूपित द्रव्य भी बाहर आता है। इसलिए स्नान करना नितान्त आवश्यक है। यथा-सम्भव शरीर को खुला रखना चाहिए अथवा हल्के कपड़े पहनने चाहिए। इससे वायु का स्पर्श ठीक होता है। इस स्पर्श का महत्त्व इसीसे समझा जा सकता है कि दिन-भर के परिश्रम के बाद खुले मैदान

में जाते ही भीतर प्रसन्नता, स्फूर्ति की एक लहर उमड़ पडती यह है। स्मरण रखना चाहिए कि यह लहर प्राकृतिक हवा से ही उमडती है, पखे की कृत्रिम हवा से नही। पखे की हवा वात-प्रकोपक होती है।

जब स्पर्श-मात्र से स्वाभाविक वायु शरीर को इतना चैतन्य देती है तो भीतर रक्त से मिश्रित होकर तो वह अवश्य ही विशेष गुण करती होगी। वास्तव में, जब शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर का सेवन किया जाता है तो सम्पूर्ण स्वास्थ्य उद्दीप्त होता है। सुवासित वायु ओषधियो के तत्त्व और पुष्पों का गन्ध-सार लेकर चलती है, इसलिए वेद ने इसकी स्तुति करके कहा है कि हे वायु! तुम्ही विश्व के लिए ओषधि हो, तुम देवताओं के दूत बनकर जाओ: 'त्व हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।' बहुत-सी व्याधियां केवल वायु-परिवर्तन से ठीक हो जाती है और इसके लिए लोग स्वास्थ्यप्रद स्थानों में जाते हैं। सर्वसाधारण के लिए यही सुसाध्य है कि वे प्रातःकाल खुली जगह में अधिक से अधिक वायु-सेवन करे और दिन में भी अशुद्ध वायु से बचे। अधिक से अधिक का अर्थ यह नही कि आंधी मे खड़े वायु-पान करे। उसका अभिप्राय यह है कि शुद्ध वायु से फेफड़ों को स्वच्छ करे। खड़े होकर वायु-सेवन ठीक-ठीक नही हो सकता, इसलिए टहलकर फेफड़ों को अधिक क्रियाशील बनाना चाहिए जिससे वे शुद्ध वायु ग्रहण करके भीतर की दूषित वायु बाहर फेक सकें।

स्वरोदय-विज्ञान

इस प्रसग में स्वरोदय-विज्ञान का परिचय देना अनुचित न होगा। श्वास द्वारा किस क्रम से वायु शरीर में धारित होती है तथा उसका क्या प्रभाव शारीरिक क्रिया पर पडता है, यही इस प्राचीन भारतीय विज्ञान का मुख्य विषय है। कई लोगों ने इसकी सत्यता को परीक्षा की है। इस शास्त्र के अनुसार सूर्योदय के समय अढाई-अढाई घड़ी के क्रम से एक-एक नासिका-छिद्र से सांस बाहर आती-जाती है। दिन-रात में बारह बार एक छिद्र से कार्य होता है और बारह बार दूसरे से, और कभी-कभी कुछ देर दोनों से। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी [illegible] शी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को [illegible]
के समय [illegible] नासिका-छिद्र श्वास [illegible]

करता है। कृष्ण-पक्ष की इन्ही तिथियों में और अमावस्या को दाहिना छिद्र कार्यारम्भ करता है। यदि इसमें व्यतिक्रम हो तो समझना चाहिए कि शरीर में गुप्त या प्रकट रूप से कोई व्याधि है। बाई नाक से श्वास चलते समय स्थिर कार्य करना चाहिए और दाहिनी नाक के समय कठिन कार्य तथा दोनो के चलते समय चिंतन-ध्यान आदि। कोई रोग होने पर उस समय जो नासा-छिद्र कार्य करता हो उसको कपड़े से बन्द कर देना चाहिए। इससे शीघ्र ही दूसरा छिद्र खुल जाता है और उधर का फेफडा, जिसकी निष्क्रियता के कारण विकार हुआ रहता है, ठीक कार्य करने लगता है। सिरदर्द में जिधर को श्वास चलती हो, उसको बन्द कर देने से सचमुच लाभ होता है, इसको हम देख चुके है। खाते समय दाहिना श्वास चलने से भोजन ठीक-ठीक पचता है। भोजन के बाद भी दस-पन्द्रह मिनट दाहिनी नाक का चलना हितकर होता है। इसलिए खाने के बाद बाई करवट लेटने का नियम बताया गया है, क्योंकि बाई करवट लेटने से दाहिनी नाक अपने-आप खुल जाती है, ऐसा प्राकृतिक नियम है। दाहिनी करवट लेटने से बाई नाक काम करती है। उक्त शास्त्र के अनुसार जिधर की नासिका से श्वास चलती हो, उधर के अगों द्वारा किया हुआ तात्कालिक कार्य अधिक सुचारु रूप से सम्पन्न होता है। होठो को ढीला करके धीरे-धीरे वायु खीचकर उसको नाक से धीरे-धीरे छोडने से बडा लाभ होता है। दो-चार वार इसका अभ्यास करने से रक्त, अजीर्ण और कफ-विकार ठीक होते है।

प्राणायाम

श्वास-प्रश्वास के प्रसग में प्राणायाम की चर्चा कर देना भी आवश्यक है। प्राणायाम फेफड़े का व्यायाम ही नही, यह आयुर्बलवर्धक, रक्त-शोधक, मस्तिष्क-पोषक एव शक्ति-स्फूर्तिदायक एक श्रेष्ठ क्रिया भी है। वह योगियो के उपयोग का ही नही प्रत्येक स्वास्थ्य-प्रेमी व्यक्ति के लिए एक उपयोगी साधना है।

प्राणायाम का महत्त्व समझने के लिए सर्वप्रथम यह जानना चाहिए कि आयु के साथ श्वास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आयु की नाप श्वास से ही होती है। एक दिन में, 21,600 बार श्वास-प्रश्वास की क्रिया होती

है। इसका अर्थ यह हुआ कि इतनी सांसों में एक दिन का जीवन गत होता है। एक वर्ष में इसकी संख्या 77,76,00,0C0 होती है। यदि कुछ समय प्रतिदिन श्वास को रोका जाए तो उसका अर्थ यह होगा कि उतनी देर जीवन का व्यय न होगा और एक वर्ष से कुछ अधिक समय में उतनी श्वास (और उससे सम्वद्ध आयु) का व्यय होगा, जितना स्वाभाविक दशा में एक ही वर्ष में होता है। इस प्रकार प्राणायाम से आयु वचती है अथवा आयु का क्षय घटता है। दूसरी वात यह है कि इससे फेफड़े शुद्ध वायु से भर जाते हैं और उनके रोगाणु उसके द्वारा मर जाते हैं। फेफड़ों के शुद्ध होने से शरीर का रक्त शुद्ध होता है और रक्त की शुद्धता से ही स्वास्थ्य वनता है।

प्राणायाम का प्रत्यक्ष लाभ तो यह है कि उससे शरीर की शक्ति, विचारशक्ति और मानसिक स्थिति दृढ़ होती है। रोग में, क्रोध में अधीरता में तथा भय आदि किसी भी शारीरिक या मानसिक अशक्ता में सांस की गति वढ़ जाती है। इसका अर्थ यह है कि सांस का वढ़ना भीतर की उत्तेजना या अशक्तता का द्योतक होता है। यदि इसका उलटा किया जाए, अर्थात् सांस को रोककर उसको स्थिर करने का अभ्यास किया जाए तो निश्चय ही उत्तेजना और अशक्तता का हनन होगा। इसको तो निजी अनुभव से देखा जा सकता है कि चित्त जव उद्विग्न रहता है तो सांस का वेग वढ जाता है और शान्त रहने पर श्वास मन्द-मन्द चलती है। इससे यह सहज मे समझा जा सकता है कि मानसिक स्वस्थता पर श्वास-सयम का प्रभाव अवश्य पड़ेगा। प्राणायाम से एक और प्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि उसकी साधना से मन की एकाग्रता वढ़ती है। क्योंकि श्वास रोकने से जब मन की उत्तेजना शमित होती है तो उसकी चंचलता भी रुकती है। इससे व्यक्तित्व सचेत होता है और वुद्धि स्थिर एव विशुद्ध होती है।

एक जर्मन यहूदी डॉक्टर ने प्राणायाम से सम्बन्ध रखने वाली एक अन्य क्रिया को महत्त्व दिया है। उसका कहना है कि श्वास को बाहर निकालकर फेफड़ों को वायु-शून्य कर देना चाहिए और अधिक से अधिक समय तक उनको इस अवस्था में रखना चाहिए। ऐसा करने से

हवा न मिलने के कारण भीतर के हानिकर जीवाणु मर जाते हैं। उसका कहना है कि कफ के रोगो (दमा, खांसी, सर्दी आदि) में इससे आश्चर्य-जनक लाभ होता है। यह वात युक्ति-सम्मत प्रतीत होती है।

ब्रह्मचर्य

स्वास्थ्य का एक प्रमुख सरक्षक शरीर का वीर्य भी है। अच्छा आहार खाकर और खूब ऑक्सीजन पाकर भी यदि वीर्य-रक्षा न की जाए तो स्वास्थ्य कभी ठीक नही रह सकता। शरीर के समस्त ओज[1] का धारक-विस्तारक वीर्य ही होता है। उसीसे पुरुपार्थ की प्रतिष्ठा और वृद्धि होती है और पुरुपार्थ ही जीवन का सच्चा सुख है। वीर्य की महत्ता का इससे प्रवल प्रमाण क्या होगा कि उसीसे जीवन-उत्पत्ति होती है। वह मनुष्य को वनानेवाला ब्रह्म और प्राणदायक तत्त्व होता है। ऐसी ब्रह्मशक्ति शरीर में रहकर निश्चय ही आत्मशक्ति की वृद्धि करती होगी। वीर्य उस वस्तु को कहते हैं जिसमे विशेष कार्य करने का गुण हो अर्थात् जो किसी वस्तु का प्रधान कार्यकारी गुण है : 'प्रभूत-कार्यकारिणी गुणे वीर्यम्' (सुश्रुत)। मानव-शरीर का प्रधान तत्त्व वीर्य ही होता है। वही शरीर को पुष्टि देता है; रोगो के वाहरी आक्रमण से वचाता है, मन में धैर्य, शान्ति, उत्साह और विक्रम की भावना भरता है। हम प्रत्यक्ष देखते है कि दुराचारियो की अपेक्षा सयमी लोग स्वभावत: धैर्यवान्, उत्साही, मेधावी, मनस्वी और तेजस्वी होते हैं। क्लीवो या कामोत्कट व्यक्तियो को ऐसा होते नही देखा जाता। इससे वीर्य की ओजस्विता सिद्ध होती है।

स्वस्थ होने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। उसका यह अर्थ नही की वालब्रह्मचारी वनकर वैठा जाए। यह असम्भव एव अस्वा-भाविक है। आवश्यकता से अधिक वीर्य-सचय से स्वास्थ्य को हानि पहुचती है। ससार की कोई भी शक्ति जव उपयोग में नही लाई जाती तो वह स्वय नष्ट होती है अथवा सलग्न वस्तु को नष्ट करती है। वीर्य का उपयोग अवश्य करना चाहिए पर आवश्यकतानुसार। उसको शरीर की मुख्य सम्पत्ति मानकर सम्पत्ति ही की तरह अच्छे काम में लगाना

1 Vitality

चाहिए। इसीको व्यावहारिक जगत् में ब्रह्मचर्य कहते हैं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए :

1. 'अन्नाद्रेतः सभवति' (सुश्रुत)—वीर्य अन्न से बनता है। इसलिए उसका एक नाम अन्न-विकार भी है। आहार की शुद्धता से ही शुद्ध वीर्य बनता है और आहार की शुद्धता से ही वह स्वाभाविक अवस्था में रहता है। उत्तेजक पदार्थ लेने से वह विकृत हो जाता है और परिणामस्वरूप चित्त में चचलता और शरीर में विकार की उत्पत्ति होती है। इसलिए यथासम्भव शुद्ध और सरल आहार लेना चाहिए।

2. मन की वासनाओं से वीर्य-दशा प्रभावित होती है। मन में वासना उठने पर कामोत्तेजना होती है। यदि उस समय उसको रोका जाए तो शरीर को क्षति पहुंचती है और यदि बार-बार वासनाओं के उठने पर उसका व्यय किया जाए तो शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है। इसलिए ब्रह्मचर्य-रक्षा के लिए मानसिक संयम आवश्यक है।

3. रक्त दूषित होने से या कम होने से वीर्य भी दूपित तथा कम हो जाता है। व्यभिचार आदि से जब रक्त दूपित होता है तो वीर्य भी सदोष हो जाता है। आहार की कमी आदि से जब रक्त की कमी होती है तो वीर्य-रचना भी कम होती है। दोनों दशाओं में शरीर की स्थायी शक्ति का ह्रास होता है। अतएव चरित्र की शुद्धता तथा आहार-सयम का ध्यान रखना चाहिए।

4. वीर्योत्पादक अगों से मस्तिष्क का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इसलिए उसको सुव्यवस्थित, सबल और स्वस्थ रखना आवश्यक है। वैज्ञानिक परीक्षा से देखा गया है कि काम-ग्रंथियों के नष्ट होते ही उत्साह, साहस, धैर्य, चैतन्य और पौरुप-बल समाप्त हो जाते हैं। यह भी देखा गया है कि जर्जर काम-ग्रथियों को पुनः सजीव बनाने या बदल देने से वृद्धों के मन में भी युवावस्था की तरंगे आ जाती है और वे शरीर से भी पुरुपार्थी बन जाते है। जिनके काम-यत्र निर्बल होते है वे युवावस्था में भी वृद्ध का सा आचरण करते है। काम-अंगो की सशक्तता, सुदृढ़ता और उनकी तृप्ति का मानव-स्वभाव और विचारधारा पर अपरम्पार प्रभाव पड़ता हैं। इस सम्बन्ध मे यह जान लेना चाहिए कि जननेन्द्रिय और

मस्तिष्क का सीधा सम्बन्ध है। रीढ से लगी हुई एक मोटी नस होती है जिसको वीर्य-प्रवाहिनी शिरा कहते हैं। वह शिरा रीढ के साथ मस्तिष्क से जुडी रहती है। इसलिए जननेन्द्रिय के रोगग्रस्त, विकृत या ग्रशक्त होने से मस्तिष्क भी वैसा ही हो जाता है। साथ ही मस्तिष्क की ग्रवस्था का पूर्ण प्रभाव इस ग्रग पर पड़ता है। ग्रतएव इस शक्ति-उत्पादक ग्रंग का रक्षण एवं उपयोग सावधानी ग्रौर प्राकृतिक ढग से करना चाहिए।

5 ग्रति सर्वत्र वर्जयेत्—इस सिद्धान्त का पालन यदि किसी कार्य में करने की ग्रावश्यकता है तो वह भोग-विलास के सम्बन्ध में। ग्रधिक भोग-विलास से ग्रधिक वीर्य-क्षय के कारण, रोग ही नही राजरोग (क्षय) तक हो जाता है। व्यभिचार से उपदश होता है जिसमे शारीरिक यत्रणा तो होती ही है, मानसिक यत्रणा ग्रौर भी भयकर होती है। पागलपन का तो यह एक प्रमुख कारण होता है, क्योंकि सिफलिस (उपदश, गर्मी) से मस्तिष्क के सूक्ष्म ततु बिलकुल बेकार हो जाते है। मानसिक विकार में इसलिए ग्रनुभवी डाक्टर रक्त-परीक्षा द्वारा पहले ही देख लेते है कि कही उसमें उपदश के कीटाणु तो नही हैं। यदि परीक्षा न की जाए ग्रौर वास्तव में पागल व्यक्ति उपदश-पीड़ित हो तो कोई दवा देने से उसको लाभ नही होता।

शरीर पर मानसिक दशा का प्रभाव

ग्राहार ग्रादि पर मन का प्रभाव क्या पडता है, इसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके है। स्वस्थचित्त स्वास्थ्य के लिए कहां तक ग्रौर किस प्रकार सहायक होता है, यहा हम इसपर विचार करेगे। विस्तार के भय से हम इस विषय को निम्नलिखित भागों में विभाजित करके देखेगे कि किन-किन मानसिक वृत्तियो का प्रभाव शरीर के स्वास्थ्य पर कैसा पडता है।

मनोयोग

मनोयोग के बिना स्वास्थ्य-निर्माण कभी नही हो सकता। किसी ग्राहार या व्यायाम में मन न लगे तो उसका पूर्ण प्रभाव शरीर पर नही पडता। स्वास्थ्य-सुधार के लिए सुबह-शाम मन लगाकर थोड़ा भी टहलना लाभदायक दिखलाई पड़ता है। पोस्टमैन लोग दिन-भर घूमते

हैं, पर उससे उनका स्वास्थ्य औरों की अपेक्षा अच्छा नही प्रतीत होता, क्योकि वे स्वास्थ्य-सुधार की भावना लेकर नहीं टहलते।

मनोयोग से इच्छा-शक्ति दृढ होती है और इच्छा-शक्ति बड़े से बड़े चमत्कार कर सकती है। मनुष्य जब इच्छा कर लेता है कि उसको स्वस्थ होना है तो वह अवश्य स्वस्थ बन जाता है। शक्तियों का सग्रह और योग मनोयोग से ही होता है।

विश्वास

मन के विश्वास का प्रभाव स्वास्थ्य पर कई प्रकार से पड़ता है। आत्मविश्वास से स्नायु-मण्डल स्वभावत: प्रबल हो जाते है और उसकी क्षीणता से इन्द्रियां क्षीण हो जाती हैं। आत्मविश्वास से शरीर में अतिरिक्त बल की अनुभूति होती है और उसके अनुसार शरीर की बल-वृद्धि होती है। कई प्राचीन महावीरों के सम्बन्ध में जो यह कहा जाता है कि उनमें दस हजार हाथियों का बल था, उसका अर्थ हम यह समझते हैं कि उनमें उनका मनोबल था। आत्मविश्वास से एक व्यक्ति कई व्यक्तियों से अधिक बलवान् होता देखा जाता है।

जिनमें आत्मविश्वास नही होता वे कई प्रकार की कल्पित व्याधियों से पीडित देखे जाते हैं। ऐसी बीमारियां ओषधियों से नही, युक्ति से मन का सन्देह मिटाने से ही मिटती हैं।

मन में झूठा विश्वास जमने से कभी-कभी आत्मविश्वासी लोग सचमुच बीमार हो जाते है। इसकी परीक्षा कुछ अमरीकन डॉक्टरों ने इस प्रकार की थी। एक बिलकुल चगे आदमी से एक डॉक्टर ने कहा, 'आज आप कुछ ढीले लगते है।' कुछ देर बाद दूसरा डॉक्टर पूर्व-योजना के अनुसार उसको मिला और कहा, 'क्या मामला है, आपका चेहरा उतरा है, आंखे लाल है और आप अस्वस्थ लगते हैं।' बाद में तीसरा डॉक्टर मिला। उसने कहा, 'आपको तो बुखार मालूम देता है, घूमिए-फिरिए नही।' तीनों की बातों से वह स्वस्थ व्यक्ति अपने को सचमुच बीमार समझने लगा और थर्मामीटर से देखा गया तो उसको काफी टेम्परेचर हो आया था।

मन के विश्वास का कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका एक और दृष्टान्त

किसी विलायती पत्र में छपा था। एक बच्चे को विचित्र प्रकार का सूखा रोग हो गया था। निदान से कोई कारण ज्ञात नही हुआ। तब एक अनुभवी डॉक्टर ने एक विचित्र औषधि बताई। उसने कहा कि इस बच्चे को हर तीसरे घंटे प्यार किया जाए। ऐसा किया गया और बच्चा मोटाताजा होने लगा। उसको विश्वास हो गया कि उसपर प्यार होता है। इसके उदाहरण हम भारतीय परिवारो मे यत्र-तत्र-सर्वत्र देख सकते है। विपत्नियो या विमाताओ द्वारा पालित बच्चे सूखकर कांटा हो जाते है, क्योकि उनके मन में यह बात बैठी रहती है कि ससार में कोई उनको चाहनेवाला नही है। विश्वास से प्रेम होता है और प्रेम से मन तथा शरीर का पोषण। इसके अभाव में क्लेश, विरह, स्वास्थ्य-नाश होता है। सुन्दर परिवारों में पारस्परिक विश्वास ही सबको स्वस्थ एव प्रसन्नचित्त रखता है।

निश्चिन्तता

निश्चिन्तता से आयु और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है, इसमें तो कोई सन्देह ही नही। चिन्ता से शरीर कृश होता है। कहा भी है कि 'चिन्ता सम नास्ति शरीरशोषणम्।' चिन्ता के समान अन्य कोई वस्तु शरीर-शोषक नही है। एक सस्कृत-नीतिकार ने लिखा है कि चिन्ता चिता से दस गुनी बडी है (चिता की अपेक्षा उसके आगे एक बिन्दु '0' भी है), क्योंकि चिता तो मरे हुए शरीर को जलाती है और चिन्ता जीवित शरीर को ही दग्ध करती है। चिन्ता की अनिद्रा और क्लान्ति का अनुभव तो सभीने किया होगा।

चिन्ता प्राय: धन की कमी, निराशा, सशय आदि के कारण उत्पन्न होती है। जब आदमी अपने को अरक्षित तथा भविष्य को अधकारमय देखता है, तभी उसको चिन्ता होती है। यह चिन्ता चाहे झूठी ही हो पर स्वास्थ्य पर उसका प्रभाव पडता है। अमरीका के एक पत्र (गार्डियन) में इस विषय का समर्थक एक वृत्तान्त हाल ही में छपा है। जर्मनी की पराजय के बाद जर्मन बच्चो का शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट होने लगा। भोजन की कमी तो थी ही, पर सबसे बडी बात यह थी कि उन बच्चो के मन में यह शका पैदा हो गई थी कि आज जो खाने को मिल रहा है, वह

कल भी मिलेगा या नही। दूसरे दिन की अनिश्चित दशा का विचार करके वे रात को चिन्तावश सो भी नही सकते थे। तब उनकी मनोदशा का अध्ययन करके उनके अभिभावकों ने यह उपाय किया कि रात को लेटने से पहले प्रत्येक वच्चे को एक-एक रोटी का टुकडा दिया जाने लगा। वच्चे उसको गुड़िया की तरह लिपटाकर इस निश्चिन्तता के साथ सो जाते थे कि उनके पास अगले दिन के लिए भोजन है। यह वृत्तान्त 'मैगजीन डाईजेस्ट' के जून, 1948 के अक में उद्धृत हुआ है।

स्वस्थ रहने के लिए यह आवश्यक है कि जो गत हो चुका है, उसकी चिन्ता न करे: 'गत न शोचामि।' और भविष्य की अनावश्यक एवं निराशाजनक कल्पना न करे।

मनोव्याधियां

चिन्ता के अतिरिक्त अन्य कई मानसिक व्याधियां हैं जो कुछ समय में शारीरिक व्याधियो के रूप मे फूट निकलती है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान् डॉक्टर (डॉ० एस० बी० व्हाइटहेड) का यह कथन उल्लेखनीय है:

"मनोविकार कई सूक्ष्म ढगो से शरीर द्वारा अपने प्रभाव को प्रकट करते हैं। उत्तेजनात्मक स्वभाव रक्त का प्रसार वढ़ा देता है; उदासीनता या उद्विग्नता नाड़ियो को शिथिल कर देती है। भय पाचन-क्रिया को गड़वड़ा देता है। सैकड़ो प्रकार से मनोदशा का प्रभाव शारीरिक स्वास्थ्य और मनुष्यो के व्यवहार एवं आचरण पर पड़ता है।"[1]

इस सम्वन्ध में अमरीका की एक सुप्रसिद्ध पत्रिका (रीड मैगज़ीन, अगस्त, 1945) में एक सारगर्भित लेख छपा था। उसमे लिखा था कि प्रायः लोग अपने परिवार ही के किसी व्यक्ति के प्रति मन में अर्से तक गुप्त घृणा लिए रहते है, जिसके कारण उनको आत्मग्लानि होती है। ये दुर्भाव अन्तर्मन में बैठ जाते हैं और वर्षो बाद एक्जीमा, दमा, हाई-ब्लडप्रेशर या दृष्टि-दोष के रूप में प्रकट होते है। गुप्त अन्तर्वेदना,

---

1 In many subtle ways, mentality reflect themselves through your body Your hot temper sends up your blood pressure Your sulks depress your nerves . your fear inhibits your digestion. In thousand and one ways mental health reflects itself in your physical health and the way you react to people and circumstances

व्यग्रता तथा भय-शका की भावना का शरीर-दृष्ट्या लक्षण है थकावट। जब आपको बिना किसी शारीरिक व्याधि के क्लांति तथा शिथिलता का अनुभव हो तो समझ लीजिए कि कोई दुर्भाव आपके अन्तर्मन में समा गया है जो रह-रहकर जाग उठता है और आपको पीडित करता है। थकावट (या बेचैनी) विकार-प्रेरित द्वन्द्व की सूचना है।[1]

इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि शरीर से स्वस्थ रहने के लिए मन से स्वस्थ होना परम आवश्यक है। मन का पाप शरीर पर प्रकट होता है, उसी तरह जैसे : 'जीभ तो कहि भीतर गई, जूता खात कपाल' (तुलसी)।

संगति का प्रभाव

सगति का शारीरिक प्रभाव तो स्वास्थ्य पर पड़ता ही है, क्योंकि एक का रोग दूसरे को पकड लेता है, पर मानसिक प्रभाव विशेप रूप से पड़ता है। स्वस्थ व्यक्ति की सगति से उत्साह होता है, क्योकि प्रत्यक्ष स्वास्थ्य-देवता के दर्शन होते है और देवदर्शन के बाद उपासना की भावना स्वभावत: उठती है। स्वस्थ व्यक्तियों की संगति से अपना स्वास्थ्य सुधारने की मनोवृत्ति उठती है। पहलवान लोग अखाड़ों में हनुमान् जी की मूर्ति इसीलिए तो रखते है। अतएव स्वस्थ होने के लिए सामने एक आदर्श रखना आवश्यक है।

स्वास्थ्य और व्यायाम

शरीर और मस्तिष्क की स्वाभाविक शक्ति और स्फूर्ति को उद्दीप्त करने के लिए व्यायाम की आवश्यकता होती है। व्यायाम का अर्थ पहलवानी नही है। व्यायाम किसी भी ऐसे कार्य को कह सकते है जिसके द्वारा शरीर की स्थायी शक्ति सतेज, सक्रिय एवं सुदृढ़ हो। प्राकृतिक चैतन्य प्राप्त करना ही उसका उद्देश्य होता है। वह चैतन्य टॉनिक पीने या मद्य-सेवन से नही आ सकता, क्योकि वह पुष्टिकर होने पर भी स्थायी एव स्वाभाविक नही होता। व्यायाम ही एक साधन है जिसके द्वारा मासपेशियो को बल मिलता है, नाड़िया स्वस्थ होती हैं, हृदय,

---

1 Fatigue is the red flag of emotional conflict. —Curtis Reed

फेफड़े, मस्तिष्क और पाचन-यन्त्र विशेष क्रियावान् होते हैं और शरीर में अनावश्यक चरबी बढ़ने नही पाती, क्योंकि भीतर का बहुत-सा दूषित मल, श्वास और पसीने से बाहर निकल जाता है। व्यायाम से ही प्रत्येक अग सुगठित रहता है, रक्त का प्रवाह ठीक रहता है, मन में उत्साह तथा आत्म-बल का अनुभव होता है। व्यायाम द्वारा अंगों के संघर्षण और संचालन से शरीर की विद्युत्-शक्ति गतिमान् होती है और शरीर सतेज होता है। यही सब व्यायाम के लाभ हैं और इन्हीके लिए व्यायाम करना भी चाहिए।

शारीरिक व्यायाम अनेक ढंग के होते है; जैसे : योगासन, खेल-कूद, दण्ड-बैठक, दौड़ना आदि। इनके ढग और लाभ आदि सर्वविदित हैं। इनमें सबसे सरल टहलना है, क्योकि उसको सभी सुगमता से मनो-विनोद के लिए भी कर सकते हैं। कई दृष्टियों से वह सर्वोत्तम भी है। कोई भी व्यायाम किया जाए, उसको नियमित रूप से और पूर्ण मनो-योग से ही करना चाहिए। उसके लिए प्रभात का समय सर्वोपयुक्त होता है। उस समय जिन शारीरिक क्रियाओं से शरीर को चैतन्य-लाभ मिले, उन्हीको करना चाहिए। यह आवश्यक नही कि उछल-कूद ही मचाई जाए। जो ऐसा नहीं कर सकते वे खाट पर ही हाथ-पैर तानकर, लम्बी सासे लेकर और मासपेशियों को थोड़ा हिला-डुलाकर अपनी शक्ति को जगा सकते हैं। घर ही में थोड़ा टहल लेने से भी साधारण व्यायाम हो जाता है, किन्तु तब जबकि इच्छा-शक्ति दृढ़ हो। इसी प्रकार दफ्तर में काम से थकने पर कुर्सी पर ही थोड़ा हाथ-पैर तानने से मांसपेशियो में नव-स्फूर्ति आ जाती है। उस समय आंखो को दो-चार बार कसकर बन्द करने तथा खोलने और दो-चार बार अंगड़ाई लेने से नव-स्फूर्ति आ जाती है। वह भी एक उत्तम व्यायाम है; कम से कम रेल-यात्री और बुद्धि-व्यवसायियो के लिए। परन्तु इन सबसे स्थायी लाभ नही होता। ये तो चुटकुले हैं। स्थायी शक्ति के लिए किसी प्रकार का नियमित परि-श्रम करना चाहिए और सावधानी के साथ, क्योंकि : 'अंतरे-खोतरे कसरत करे, दैव न मारे अपने मरे'—अर्थात् अनियमित व्यायाम से शारीरिक विनाश होता है।

सर्वोत्तम व्यायाम

हमारी सम्मति में केवल एक व्यायाम है जो सभी दृष्टियों से सबसे उपयोगी और शरीर के समस्त अंगों के लिए समान रूप से हितकर हो सकता है—वह है धनुष-बाण चलाने का अभ्यास करना। आनन्द-प्रमोद के साथ शरीर और मस्तिष्क को स्वस्थ बनाने के लिए इससे सुन्दर कोई व्यायाम नहीं हो सकता। आगे चलकर यह व्यायाम ही नहीं रह जाता बल्कि एक गुण और आत्मरक्षा का साधन भी बन जाता है। प्राचीन भारत का यह सर्वमान्य व्यायाम था। भारत ही नहीं, पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक यह इंग्लैण्ड का भी राष्ट्रीय व्यायाम था। पन्द्रहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के प्रत्येक व्यक्ति के लिए धनुष रखना और प्रतिदिन उसका अभ्यास करना अनिवार्य था। चतुर्थ एडवर्ड के काल में यह कानून बनाया गया था कि जब बच्चे सात वर्ष की आयु के हो जाएं तो उनको बाण चलाना अवश्य सिखाया जाए और इसके लिए प्रत्येक ग्राम में व्यवस्था थी। ग्रामवासियों और नगरवासियों के लिए नियम था कि वे प्रत्येक रविवार को और उत्सव के दिनों में धनुष-बाण का अभ्यास करें। जो इसमें आलस्य करते थे उनको जुर्माना देना पड़ता था। सुप्रसिद्ध हैरो स्कूल के संस्थापक ने यह नियम बनाया था कि जो माता-पिता अपने बच्चे को वहां भर्ती करें वे उसको धनुष-बाण देकर स्कूल भेजें। काल-परिवर्तन से इस कला का उपयोग लोग भूल गए, परन्तु इससे उसकी उपयोगिता नष्ट नहीं हुई। एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ी मासिक पत्र (हैल्थ एण्ड एफीशेन्सी) के 1946 के विशेषांक में एक अनुभवी लेखक ने लिखा है कि सङ्कुचित फेफड़ों को खोलने के लिए, झुके कन्धों को सुडौल बनाने के लिए, तोंद घटाने के लिए, मांसपेशियों को सुदृढ़ बनाने के लिए यह एक राष्ट्रीय व्यायाम है, जिसको अत्यधिक लोकप्रिय बनाना चाहिए।[1]

अब देखिए कि किस प्रकार इस एक ही व्यायाम से शारीरिक एवं

---

1. As an antidote for cramped lungs, round shoulders, flabby abdomen and soft muscles, this is a national sport that should be a lot more popular than it is today.
—James Dudley

मानसिक शक्तियों का सगठन, सतुलन तथा विकास होता है। जब आप धनुष चलाने खड़े होगे, तो स्वभावत. पैरों को सीधा करके दृढता से जमीन पर खडे होगे। पैर ही नही, पूरे शरीर को सीधा रखना पडेगा; और आंख को भी। इस प्रकार आप उस दशा में हो जाएगे जिस दशा में होने से मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुंचता है। दूसरे शब्दो में आप कमर कसकर एक लक्ष्य की ओर ध्यान को केन्द्रित करके लक्ष्य-वेध के लिए तैयार हो जाएगे।। वाण-संधान करते समय मौर्वी को आप दृढता से खीचेगे, उससे हाथ की मांसपेशियों का व्यायाम होगा। शरीर का तना स्वभावत: तना रहेगा और वक्षस्थल तथा सिर पीछे की ओर तन जाएगे; पैर आगे-पीछे हो जाएगे। मौर्वी को खीचते समय स्वाभाविक रीति से आप अपनी सांस को खीचेगे और जब तक वाण नही छोडते, तव तक सांस को भीतर भर रखना पड़ेगा। इससे फेफड़े पूर्ण रूप से खुल जाएंगे, छाती चौडी हो जाएगी, पसलियां खुल जाएगी और पेट तो ढीला रह ही नही सकता। जब तक लक्ष्य-वेध नही हो जाता तव तक चित्त एकाग्र रहता है, दृष्टि एकाग्र रहती है, आशा-उत्साह प्रबल रहता है और सफलता की एक ऊची आकांक्षा मन में रहती है। शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए और क्या चाहिए? यह ऐसा व्यायाम है जिसको सव स्वय अपने अभ्यास से सीख सकते है। योग, प्राणायाम, व्यायाम, मनोरजन और एक सैनिक कला का ज्ञान—यह सव धनुष चलाने का अभ्यास करने से होता है, इसमें सन्देह नही। हॉकी-फुटबाल खेलने की अपेक्षा सरकार विद्यार्थियो को धनुर्विद्या का अभ्यास कराए तो उनको व्यक्तिगत लाभ ही नही वल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र को लाभ होगा, क्योंकि भावी नागरिक कम से कम स्वावलम्वी और लक्ष्य-वेध में पटु होंगे। यह स्मरण रखना चाहिए कि धनुष-सचालन के अभ्यास से स्वावलम्बन की भावना स्वत: उद्दीप्त होती है। अपने पैरो पर खड़े होकर, अपने वल से ही मौर्वी को खीचकर, अपनी ही एकाग्रता-शक्ति के अनुसार लक्ष्य को भेदकर आप सफलता प्राप्त करते हैं।

बुद्धि का व्यायाम

बुद्धि के व्यायाम के सम्बन्ध में भी कुछ जान लेना आवश्यक है। यों तो बुद्धि का व्यायाम ठीक विचार करने और रचनात्मक कार्य करने से हो जाता है, परन्तु उसके कुछ और भी साधन है। एक साधन तो है शतरज खेलना। यह शुद्ध भारतीय खेल है जिससे मनोविनोद के साथ ही बुद्धि का भी विकास होता है। कहते है, रावण ने इसका आविष्कार मन्दोदरी के लिए किया था। वाद मे कूटनीतिज्ञ चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की बुद्धि को तीक्ष्ण करने के लिए उसको यह खेल सिखाया। उसके वाद बुद्ध-कालीन भारत में इसका प्रचार वढा, क्योंकि मनुष्य की युद्ध-प्रवृत्ति को बुझाने का यह अच्छा साधन माना गया। इसकी अहिंसात्मक युद्ध-प्रणाली को वौद्धो ने वहुत पसन्द किया। शतरज का पूर्ण परिचय न देकर हम निश्चित रूप से इतना ही कहना चाहते है कि यह एक मनो-रजक और बुद्धिवर्द्धक व्यायाम है।

बुद्धि का सर्वश्रेष्ठ व्यायाम है उपासना

प्रार्थना से देवता वरदान दे या न दें, परन्तु मन उनके तेजोमय रूप को अपने भीतर प्रतिष्ठापित करके निश्चय ही सबल हो जाता है। उससे आत्मशक्ति की दृढता वढती है और चित्त की एकाग्रता वढ़ती है। मनुष्य एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर की सहानुभूति का विश्वास न करके अपने को स्वयं शक्तिमान् समझने लगता है और मनोवल से उसका वौद्धिक एवं शारीरिक विकास होता है।

विश्राम

स्वास्थ्य के लिए आहार, व्यायाम आदि के समान विश्राम की भी आवश्यकता होती है क्योंकि उसीके द्वारा शरीर की खोई हुई शक्ति पुन: वापस मिलती है और शरीर-यन्त्र जर्जर नही हो पाता। मान-सिक और शारीरिक परिश्रम में मांसपेशियों तथा नाडियो पर जो कार्य-भार पड़ता है उसको हल्का करने का साधन विश्राम ही है। विश्राम से स्नायु-मण्डल दृढ होता है। शरीर, मन दोनो स्वस्थ होकर जीवन-संघर्ष के लिए पुन: समर्थ हो जाते है और धातु-तन्तुओं की क्षतिपूर्ति होती है।

इसलिए परिश्रम के बाद विश्राम करना भी आवश्यक है और विश्राम ऐसा करना चाहिए जिससे तन-मन दोनों को पूर्ण शान्ति मिले, क्योकि यही उसकी उपयोगिता है।

मानसिक विश्राम तो बहुत कुछ विषय-परिवर्तन और स्त्री-बच्चों तथा मित्रों के साथ हास्य-विनोद करने से हो जाता है। हसने से भी मन का विश्राम होता है, क्योंकि हसी से रक्त का प्रसार बढ़ता है, रक्त की गति तीव्र होती है और मुख्यतः मस्तिष्क का अवरुद्ध रक्त ठीक से प्रवाहित होता है। उससे फेफड़े खुलते है और एक-एक नस से दूपित वायु बाहर निकल आती है। इससे मन को शान्ति होती है, बहुत-सी चिन्ताए हसी की हवा में उड़ जाती हैं। किसी भी प्रकार के मनोरजन से मन को विश्राम मिल जाता है।

पूर्ण विश्राम का प्रधान साधन निद्रा है। स्वाभाविक, मानसिक तथा शारीरिक शान्ति पूर्ण मात्रा में उसीसे मिलती है। इसलिए उचित मात्रा में प्रगाढ़ निद्रा शरीर के लिए सबसे प्रमुख 'टॉनिक' है। निद्रा के सम्बन्ध में विशेष रूप से कुछ जान लेना आवश्यक है।

1. निश्चित समय पर स्वाभाविक निद्रा ही स्वास्थ्यप्रद होती है। उसको प्राप्त करने के लिए सुन्दर पलग और बिछौने की उतनी आवश्यकता नही होती जितनी कि स्वाभाविक आहार और परिश्रम की। पाचन-क्रिया ठीक रखने और दिन में कुछ शारीरिक परिश्रम करने से रात में अच्छी नीद आती है।

2. नीद एक शारीरिक क्रिया नही मुख्यतः मानसिक क्रिया है। मस्तिष्क को हल्का करने से ही नीद आती है; मन मे चिन्ता रहने से वह दूर भागती है। इसलिए लेटने पर किसी ऐसे कार्य की चिन्ता नही करनी चाहिए जिसके सुलझाने में मन को विचार करना पड़े। किसी पुराने विषय को सोचिए, ऐसे विपय को सोचिए जिसमें आपको सफलता मिल चुकी हो; किसी मधुर स्मृति में मन को लगाइए। उससे यह होगा कि मन को चिन्तन न करना पडेगा; वह सुलझी-सुलझाई बातो का रस लेगा और जानी-बूझी गलियों में ही घूमेगा। उसपर नये विचारों का दबाव न पड़ेगा और वह रस-मग्न होकर सो जाएगा।

मनोवैज्ञानिको ने निद्रा का यही श्रेष्ठ उपाय बताया है। दूसरा उपाय है सोने के पहले कोई मनोरजक उपन्यास, कहानी या काव्य पढना, अथवा स्वजनो से प्रेमालाप करना। इससे मन किसी गम्भीर चिंता में न फसेगा। आयुर्वेद के प्राचीन पण्डित का कहना है कि इन्द्रियो से मन को हटा लेने से ही नीद आती है।

3. वैज्ञानिकों ने अनिद्रा के कारण और उसके निवारण के कुछ अच्छे उपाय बताए हैं। अनिद्रा एक भयकर रोग है। यदि इसका शीघ्रातिशीघ्र निवारण न किया जाए तो शरीर और मस्तिष्क दोनों अस्वस्थ हो जाते हैं तथा बाद में यह किसी भी उपचार से ठीक नही हो सकता। आत्मघातियों में अनिद्रा-पीड़ित व्यक्तियो की सख्या काफी होती है। यह रोग प्राय बुद्धि-सम्बन्धी काम करनेवालो को तथा व्यवसायियो को ही होता है।

अधिक मानसिक परिश्रम और चिन्ता से अनिद्रा रोग होता है। इसका रहस्य यह है : साधारण निद्रा की अवस्था में मस्तिष्क के रक्त का अधिक भाग वहा से निकल आता है और रक्तवाहिनी नसो का सकोचन होता है। परन्तु जागरितावस्था में और मुख्यतया विचार करते समय मस्तिष्क की नसों में रक्त प्रचुर मात्रा में रहता है, इसलिए उनका फैलाव होता है। दोनों अवस्थाओं के ये कार्य प्राकृतिक हैं। मस्तिष्क से जब रक्त निकल जाता है और नसे सकुचित होती है तभी नीद आती है। अधिक चिन्ता, रात्रि-जागरण और अनवरत परिश्रम से रक्त मस्तिष्क में निरन्तर भरा रहता है और परिणाम यह होता है कि नसे फैलकर ढीली हो जाती है तथा उनका स्वाभाविक सकोचन नही हो पाता। ऐसी दशा में वे रक्त को मस्तिष्क से बाहर निकालने मे असमर्थ हो जाती है और रक्त की उष्णता के कारण नीद नही आती। यदि शीघ्र सावधानी न की जाए तो स्नायु-मण्डल अशक्त बना रहता है और आगे उसको ठीक नही किया जा सकता। मूर्खो और दरिद्रो को यह रोग नही होता, क्योकि वे बुद्धि पर जोर डालनेवाला कोई कार्य हो नहीं करते। मूर्ख जब चाहे तब सो लेता है, क्योंकि विचार न करने के कारण उसका मस्तिष्क रक्त से सदैव रिक्त रहता है। उसको सोने की ही

बीमारी हो जाती है, क्योंकि मस्तिष्क की नसे सकुचित ही रहती हैं।

अनिद्रा में अधिक से अधिक विश्राम लेना ही हितकर होता है। निश्चिन्तता से नसें पुनः स्वाभाविक कार्य करने लगती है। समुद्र की हवा इस रोग में जादू का-सा काम करती है। दिन मे सोना, स्वच्छतम वायु का सेवन, घर से बाहर रहना, व्यायाम करना ये सब इसमें बहुत लाभ करते है। लेटने से पूर्व कोई गरम पेय, मुख्यत. दूध पीने से गरमी पाकर मस्तिष्क का रक्त वहां से नीचे उतर आता है। सोने से पूर्व और जब जगें तब गरम दूध पीना बहुत गुण करता है। गरम दूध पीकर थोड़ी देर गरम पानी में पैर रखने सेमस्तिष्क का रक्तप्रसार कम हो जाता है और नीद आ जाती है।

जिस तरह भी हो सके, प्राकृतिक और पर्याप्त विश्राम लेना स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है। अच्छी नीद के बाद थोड़े समय में भी दूना काम होता है। नीद न आने से दूने समय में भी आधा काम होता है।

ओषधियां

स्वास्थ्यरक्षक एव स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तुओं में हम ओषधियों को भी लेते है। ओषधियों से हमारा तात्पर्य रस-भस्म या काष्ठ ओषधियो से ही नही है। प्राचीन विद्वानों के मत से जिस वस्तु के द्वारा शरीर को आरोग्य प्राप्त हो, वही भेषज है। उनके मत से जल, वायु, तप, उपवास, मन्त्र सभी भेषज है। सूर्य की किरणे सर्वोत्तम भेषज है। सूर्य से तीन प्रकार की किरणे—तापदायक, प्रकाशदायक और रसायनोत्पादक निकलती है। तीनो स्वास्थ्यकर है। इसी प्रकार वायु आदि के गुण हैं जिनका उल्लेख हम ऊपर यथास्थान कर चुके है।

1. वास्तव में अन्न अर्थात् आहार ही सर्वोत्तम ओषधि है। आहार-सयम और पाचन से यथासभव कोई रोग नही होता और यदि हो भी जाए तो आहार-परिवर्तन से ही वह अधिक सुगमता से ठीक हो सकता है। आहार की कोई साधारण वस्तुएं ही ठीक ढग से लेने पर चमत्कार करती है। उदाहरण के लिए नमक को लीजिए। मलेरिया में दो तोला

नमक भूनकर गरम पानी के साथ पीने से रामवाण का काम करता है। ज्वर के बाद की निर्वलता में नमक-मिश्रित पानी पीने से शरीर की शक्ति बहुत शीघ्र वापस आ जाती है, क्योकि ज्वर की दशा में पसीने से शारीरिक नमक का जो व्यय हुआ होता है उसकी पूर्ति हो जाती है। किसी भी समय थकावट या बेचैनी होने पर हल्का नमक-मिश्रित जल पीने से स्फूर्ति आती है। दात के रोगो में नमक और कड़वा तेल मिलाकर मांजना अद्भुत गुण करता है और यदि उसके साथ एक भाग सोडा-बाईकार्ब भी मिला लिया जाए तो और भी। इसके अतिरिक्त नमक एक सर्वसुलभ जन्तुघ्न ओषधि भी है।

खाद्यपदार्थों में करेले को लीजिए। कुछ दिन पूर्व 'अमृत बाजार पत्रिका' (इलाहाबाद) में डॉक्टर अग्रवाल नामक एक सज्जन का एक पत्र छपा था। उसमें उन्होने लिखा है कि करेले के ऊपरी छिलके में मधुमेह को निर्मूल करने की विचित्र शक्ति है। इसलिए करेला प्रत्येक रूप मे मधुमेहियो के लिए लाभदायक है। यदि कोई 'मेही' उसको सुरक्षित रखना चाहे तो उसके छिलके को किसी काठ की छुरी (धातु की छुरी से नही) से छीलकर छाया में सुखा ले और साल-भर खाए। उक्त सज्जन को यह प्रयोग किसी अनुभवी मिस्र-निवासी से ज्ञात हुआ था। उन्होने इसका अनुभव करके देखा है और तभी छपवाया है। ऐसे ही, पपीते को लीजिए। कोष्ठबद्धता के लिए यह राम-रसायन है। कैसा भी जीर्ण कोष्ठबद्ध हो, प्रात.काल एक छोटे चम्मच-भर शक्कर में कच्चे फल का दस-पन्द्रह बूद दूध डालकर पीने से पाचनक्रिया ठीक हो जाती है। दूध के लिए फल तोड़ने की आवश्यकता नही है। सुई चुभाने से दूध टपक पडता है। नीबू भी प्रातःकाल एक प्याले गरम पानी में लेने से पेट को तथा रक्त को शुद्ध करता है।

ऐसी छोटी-मोटी किन्तु असाधारण वस्तुओ में हम 'लहसुन' को नही भूल सकते। वाग्भट ने उसको अमृत-संभूत रसायनराज माना है: 'साक्षादमृतसभूतेर्ग्रामणी: स रसायनम्।' महर्षि सुश्रुत ने भी उसको बलकारक; बुद्धि, स्वर, वर्ण, चक्षु के लिए उपयोगी, टूटी हड्डी को जोडनेवाला; हृदय-रोग, जीर्ण-ज्वर, पार्श्वशूल, कोष्ठबद्धता, गुल्म,

अरुचि, कास, शोथ, अर्श, कुष्ठ, अग्निमांद्य, कृमि, वायु, श्वास और कफ का नाशक कहा है। वास्तव में यह फेफड़े के रोगों मे, राजयक्ष्मा तक में, अवलता मे, पेट के कृमि रोग में और लकवा आदि वात-रोगों में आश्चर्यजनक लाभ करता है। यह अपने वातारि श्रीमस्त महौषध, रसायनकर और अस्थिसंधानकर आदि नामों को सर्वथा सार्थक करता है। क्षय रोग की प्रारम्भिक दशा में एक से दस तक कच्चे लहसुन प्रातःकाल खाने से उक्त रक्त रोग निर्मूल हो जाता है। इसको हम दो-एक व्यक्तियों के अनुभव के आधार पर कह सकते है। पक्षाघात में लहसुन के दस यव दूध मे पकाकर चालीस दिन तक खाने से स्थायी लाभ होता है। यह भी वह अनुभूत है। साधारणतया चार यव लहसुन प्रातः-काल बासी मुह रोज़ खाने से पेट अवश्य शुद्ध रहता है और तेज-ओज की वृद्धि होती है। महात्मा गाधी प्रतिदिन नियमित रूप से लहसुन खाते थे और अन्त तक पूर्ण स्वस्थ थे। वृद्धो के लिए तो यह ओषधि भी है, क्योकि उनको वातविकार होता है और यह वात को हड्डियों तक से निकाल भगाता है। इसको कुछ लोग कामोत्तेजक मानते है, परन्तु गांधीजी ने एक बार कहा था कि लहसुन के नियमित सेवन से मैंने उसको कभी ऐसा अनुभव नही किया।

ओपधियों का निर्देश करना हमारा विषय नही है। हमने प्रसगवश यह दिखलाने के लिए कुछ अनुभूत प्रयोगों का उल्लेख कर दिया है कि साधारण घरेलू वस्तुओं से भी वड़े-वड़े रोगो का मारण-निवारण हो सकता है; केवल समझ-बूझकर प्रयोग की आवश्यकता होती है। ठीक से प्रयोग करने पर सखिया भी अमृत हो जाता है और मूर्खता से मधु भी विष हो जाता है।

2. ओपधियों में हम उपवास को भी लेते हैं। उपवास से शरीर की सफाई हो जाती है और पाचनेन्द्रियों को विश्राम मिलता है। अजीर्णता आदि में लंघन विशेप गुण करता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि उपवास में धातु-तन्तुओ का विनाश होता है और उनके स्थान की पूर्ति सचित मांसपेशियो की धातुओं से होती है। शरीर के साधारण अंगों से ही धातु-व्यय अधिक होता है; उदाहरणार्थ—उपवास में जितने समय

मे मासपेशियों का वजन चालीस प्रतिशत घटता है, उतनी देर में हृदय का तीस प्रतिशत ही घटता है। इसलिए यह भ्रम निकाल देना चाहिए कि उपवास से हृदय दुर्बल होता है। आवश्यक अगो की रक्षा का विधान प्रकृति ने कर रखा है।

3 मन्त्र भी ओषधि-वर्ग में माने गए हैं। उनपर कोई विश्वास करे या न करे, इतना तो सत्य ही है कि उनमें हृदय को बल, विश्वास और धैर्य देने की शक्ति है। उनसे चित्त में जो शान्ति और आशा उत्पन्न होती है, उसका लाभ स्वास्थ्य पर अवश्य पडता है। शब्द हृदय पर आघात करते है। किसीके लिए आप मंगल-कामना सुमधुर शब्दों में व्यक्त कीजिए तो वह फूल जाता है। किसीको भर्त्सनात्मक शब्द कह दीजिए तो वह बिना काटे ही कट जाता है। इससे शब्दों की मन्त्रशक्ति प्रमाणित होती है। शब्द अन्तस्तल को स्पर्श करते है और स्पर्श में कितनी शक्ति होती है, इसका अनुभव आप शीत या उष्ण वायु के स्पर्श से कर सकते है। वायु के साथ जब मन्त्रों के मंगलमय सुव्यवस्थित शब्द हृदय को छूते है तो हृदय अवश्य आन्दोलित होता है। उन मन्त्रों में कल्याण की भावना ही तो रहती हैं। मन्त्र के साथ मागलिक द्रव्यों के स्पर्श से भी शरीर को लाभ होता है। इस स्पर्श को भी साधारण न मानना चाहिए। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के स्पर्श से ही रोमाचित हो जाते हैं। इसी तरह माता पुत्र के स्पर्श से स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करती है। चाणक्य ने लिखा है कि चन्दन का स्पर्श शीतल अवश्य होता है, परन्तु पुत्र का शरीर-स्पर्श उससे भी अधिक शीतल होता है। जिस वस्तु से जिसका अनुराग होता है उसको वही आनन्ददायक होती है।

4 मणि-रत्नों और सुवर्ण आदि धातुओ का प्रभाव भी शरीर के स्वास्थ्य पर पडता है, ऐसा कहा जाता है। शास्त्रीय मत से ग्रहो का प्रभाव शरीर पर पडता है और मणि-रत्न उन्ही ग्रहों से शक्ति-सचय करते है। उनका कुप्रभाव भी पडता है। इसमें कहा तक सत्यता है, हम कह नही सकते। जब ठण्डे पानी जैसे साधारण पदार्थ के स्पर्श मे शरीर मे शीतलता आती है और अगों का सकोचन होता है तो हीरे जैसे कान्ति-विशिष्ट पदार्थो के स्पर्श का प्रभाव भी पड़ सकता है। शुक्राचार्य

ने अपने नीतिशास्त्र में लिखा है कि पुत्र की कामना करनेवाली नारियों को कभी हीरा न धारण करना चाहिए : 'न धारयेत् पुत्रकामा नारी वज्र कदाचन।' धनी परिवारों में सन्तानकष्ट प्राय: रहता है। यह देखना चाहिए कि आभूपणों में हीरा पहनने से तो कही स्त्रियों की गर्भधारण-शक्ति पर प्रभाव नहीं पडता। स्वर्ण के विपय मे यह कहा जाता है कि वह शरीर को प्राकृतिक विद्युत् से सयुक्त करता है। ऐसा हो या न हो, पर इतना अवश्य होगा कि त्वचा द्वारा स्वर्ण का धातु-अश रक्त से संयुक्त होकर स्वास्थ्यकर होता होगा।

5. स्नान, तेल-मालिश आदि को भी हम ओषधि में ले सकते है। स्नान के विषय में हम लिख चुके है। तेल-मालिश के सम्बन्ध में यह जानना चाहिए कि वह परम पुष्टिवर्द्धक होती है। पेड़ को जल का सिचन जितना लाभ करता है, उतना ही शरीर को स्नेह-सिंचन।

6. दवाओ के उपयोग के सम्बन्ध में कुछ लिखना यहा पर अनावश्यक होगा; वह वैद्य-डाक्टरों का विपय है। हां, इतना स्मरण रखना चाहिए कि वलाबल के अनुसार ही ओपधियों का सेवन हितकर होता है; अर्थात् युवक के लिए जो दवा जिस मात्रा में दी जाएगी उससे वालक तथा वृद्ध को दवा और उसकी मात्रा में भिन्नता होगी। साथ ही, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अप्राकृतिक ढग से ली हुई दवाए स्थायी गुण नही करतीं। जिस देश का जो प्राणी होता है, उसी देश की दवाए उसको स्वभावत: लाभ करती हैं।

स्वास्थ्य-नाश के कारण

सक्षेप में हमें स्वास्थ्य-नाश के सम्बन्ध में कुछ साधारण कारणों पर विचार कर लेना चाहिए। प्रधान कारण तो रोग ही है। रोग उसको कहते हैं जिसका संयोग मनुष्य को दु:ख दे : 'तद्दु:खसंयोगा व्याधय उच्यन्ते' (सुश्रुत)। यह परिभापा बहुत व्यापक है। इसके अन्तर्गत विपय, भोजन, प्रतिकूल जलवायु और कुसगति आदि सभी आ जाते हैं जिनपर ऊपर कुछ लिखा जा चुका है। यहां हम कुछ आवश्यक वातों का निर्देश-मात्र करेगे।

त्रिदोष—आयुर्वेद के मत से वात, पित्त और कफ ये तीन शरीर के मुख्य धारक है। इनके बिना शरीर का होना सभव नहीं। ये समपरिमाण में रहते है तो शरीर स्वस्थ रहता है। इनमे से एक भी घटता-बढता है तो शरीर व्याधिग्रस्त हो जाता है। कफ बढ़ने से कफ के अनेक रोग होते है, और पित्त बढने से रक्त के विकार तथा वात से पेट और मस्तिष्क के। जन्म से ही मनुष्य की प्रकृति में एक न एक की प्रधानता होती है। जलवायु, आहार-विहार और मानसिक व्यतिक्रम से वे घटते-बढते रहते हैं। इनमें से सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करना यहा सभव नही। उदाहरण के लिए हम वात के विषय में कुछ बातों का उल्लेख करेगे क्योकि उसका मस्तिष्क से भी विशेष सम्बन्ध रहता है। मस्तिष्क और उससे निकली नाड़िया इस वात-धातु से बनती हैं। सोचने-विचारने और सवेदना-सम्बन्धी कार्य इसीके सहारे होते हैं। शरीर के वायु-सम्बन्धी सभी कार्य शरीरस्थ वात-धातु से होते है।

जिनकी प्रकृति वात-प्रधान होती है वे स्वभाव से ही आतुरमति होते है, ऐसा सुश्रुत का मत है : 'वातलाद्या. सदातुरा:।' वाग्भट के मत से वात-प्रकृति के व्यक्ति क्रोधी, चचल, बहुवक्ता तथा सशयालु स्वभाव के होते है। ऐसे लोग रूक्ष, बकवादी, जागरणशील और कल्पना-प्रिय होते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वृद्धावस्था मे मनुष्य के शरीर में जब वाताधिक्य हो जाता है तो उसके स्वभाव में यही बाते दिखलाई पड़ती है।

वात-प्रकृति होने का अर्थ यह नही है कि जन्म से ही मनुष्य ये दुर्गुण ले आता है। होता यह है कि जब प्रकृति वात-प्रधान रहती है तो किसी भी कारण से वात के कुपित होने से ये वासनाएं भड़क उठती है। कोई वात-प्रकृति का न हो तो भी दुष्ट आहार या अशुद्ध वायु-सेवन अथवा रहन-सहन की गडबड़ी से वात-ग्रस्त हो जाता है। वैद्यक मत से वाताधिक्य मुख्यत: इन कारणों से होता है—कड़वा, रूखा, कसैला, ठण्डा पदार्थ, सूखा शाक, सांवा-कोदो जैसे भारी पदार्थ खाने से; अधिक उपवास, अजीर्ण भोजन, अधिक व्यायाम; मार्ग-गमन, मैथुन, चिन्ता, आघात, शारीरिक पीड़ा, रात्रि-जागरण, मल-मूत्र, शुक्र, वमन, अधो-

वायु हिचकी, आंसू, उद्गार आदि को बलात् रोकने से और वर्षाऋतु में तथा दिन के तीसरे पहर और वायु का वेग प्रबल होने पर।

वात-प्रकोप से शरीर में शूल, श्वास और गठिया आदि तो हो ही जाते है, साथ ही मानसिक क्षति विशेष रूप से होती है। उसके बढ़ने से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से रक्त उत्तप्त होता है और श्वास का घोर अपव्यय होता है। यही नहीं, उससे उन्माद हो जाता है। कम से कम सीता को इसका ज्ञान था। लंका में हनुमान् को एकाएक सामने देखकर उनको विश्वास नही हुआ और वे सोचने लगी कि क्या यह मेरा चित्तभ्रम है या वायु का विकार अथवा उन्माद से उत्पन्न विकार है या मृगतृष्णा है :

किं नु स्याच्चित्तमोहऽय भवेद्वातगतिस्त्वयम्।
उन्मादजो विकारो वा स्यादियं मृगतृष्णिका॥ (रामायण)

वात के कुपित होने पर मनुष्य क्रोधान्ध और उन्मत्त होकर प्रलाप करता है, निरर्थक वाक्य बकता है :

स्वदेहकुपिताद्वातादसम्बन्ध निरर्थकम्।
वचनं यन्नरो ब्रूते स प्रलापः प्रकीर्तितः॥ (वैद्यक निघण्टु)

उस अवस्था मे विचारों में अस्थिरता आ जाती है, बुद्धि मारी जाती है। क्रोध से मोह, मोह से स्मृति-नाश, स्मृति-नाश से बुद्धि-नाश और बुद्धि-नाश से सर्वनाश होता है। क्रोधावेश में बहुतो को क्रोधाज्वर, बहुतों को पागलपन और बहुतों को पक्षाघात हो जाता है। क्रोधावस्था में शरीर का तापमान स्वभावतः बढ़ता है और ताप बढने से वायु कुपित होती है, क्योंकि वह स्वयं दहनात्मक होती है और तब मनुष्य प्रलाप करता है, जैसे ज्वर में।

क्रोधी मनुष्य प्रायः वातुल (पागल) या पक्षाघात जैसे रोग से ग्रस्त पाए जाते है क्योंकि उनके ज्ञान-तन्तु बार-बार उत्तेजित होकर शिथिल पड़ जाते हैं। हिन्दुओं के कर्म-विपाक शास्त्र (कर्मफलोदय) के अनुसार भी दूसरों का दिल दुखाने, सभा में अन्याय, पक्षाघात तथा अकारण दोषारोपण करनेवाले के लिए पक्षाघात ईश्वरीय दण्ड माना गया है। ये सब कार्य मनुष्य वात-विकार से ग्रस्त होकर ही करता है।

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि प्राय: क्रोधालु राजाओं को प्राकृतिक कोप से नष्ट होते सुना गया है.

प्राय: कोपवशा राजान: प्रकृतिकोपैर्हता श्रूयन्ते।

ये प्राकृतिक कोप ऐसी ही आकस्मिक व्याधिया है। इससे बचने के लिए वात-विकार से बचना चाहिए। उससे बचने के आयुर्वेदोक्त उपाय ये है—पेट को साफ रखना, घृत-तेल का नियमित सेवन, उपवास, मधुर, अम्ल, लवण और पके द्रव्यो का हल्का आहार, तेलमर्दन, चिन्ता और भय-त्याग। मस्तिष्क पर वायु का प्रकोप होने पर वह प्राय: भय-प्रदर्शन से ही शान्त होता है। यह प्रमाण-सिद्ध है। कोई व्यक्ति जब अनर्गल प्रलाप या क्रोधावस्था में कोई अपकर्म करने लगता है तो दण्ड के भय से ही वह स्वस्थचित्त होता है। लोग कहते हैं कि होश ठिकाने आ गए। यह इसलिए होता है कि वायु शमित हो जाती है। उसीको लोग बोलचाल की भाषा मे कहते है कि जब डाट पडी तो हवा खिसकने लगी। आयुर्वेदज्ञो ने इस रहस्य का पता पहले ही पा लिया था। आज-कल भी नये पागलो का इलाज भय-प्रदर्शन से हो होता है। डाक्टर लोग उनको बिजली के करेण्ट[1] छुआकर भय दिखलाते है और इससे बहुत-से लोग चगे हो जाते है।

इन सब बातो को समझकर अपने को वातग्रस्त होने से बचाना चाहिए। इसी तरह कफग्रस्त और पित्तग्रस्त होने से भी। अब हम अन्य स्वास्थ्य-नाशक विषयो को लेते हैं।

विष सेवन

विप-सेवन से हमारा अभिप्राय उन विषों से है जिनको हम व्यसन-वश प्रतिदिन खाते है। मद्य की चर्चा हो चुकी है। दूसरा मुख्य विष तम्बाकू है। तम्बाकू के विषय में शिकागो के एक शरीर-शास्त्री ने लिखा है कि उसमें होने वाले 'निकोटीन' नामक पदार्थ में इतना विप होता है कि उसके एक औंस का $\frac{1}{400}$ भाग यदि मनुष्य के रक्त में इन्जेक्शन द्वारा मिला दिया जाए तो वह मर जाएगा। इसका $\frac{1}{8}$ भाग प्रत्येक सिगरेट में रहता है। निकोटीन से हृदय की गति बढती है, चौबीस घटे में सिगरेट

1 Electric-shock treatment

पीनेवाले के हृदय को तीस हजार बार अधिक धड़कना पड़ता है।[1]

अंग्रेजी के प्रसिद्ध काम-शास्त्र विषयक विश्वकोष[2] में लिखा है कि तम्बाकू से काम-शक्ति घट जाती है। बहुत-से नपुसक जब किसी ओषधि से चगे नही हुए तो उनसे सिगरेट का परित्याग करवाके देखा गया। परिणामत. वे पुन: पुरुपार्थी हो गए। उसमें एक लोक-प्रचलित उक्ति का उल्लेख है, जिसका अर्थ है कि तम्बाकू और स्त्रिया परस्पर शत्रु है; एक के प्रति अनुराग होने से दूसरे के प्रति अनुराग नष्ट हो जाता है।[3]

टाल्स्टाय का अनुभव था कि तम्बाकू से विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है। उनके अनुसार रूस के अधिकाश नरघातियों में सिगरेट पीने के वाद ही हत्या करने का दुस्साहस उत्पन्न होता था। निकोटीन से मुख्यत: स्मरणशक्ति नष्ट होती है, फेफड़े भ्रष्ट होते है और आहार-पाचन में कष्ट होता है। तम्बाकू खाने या पीने से दांतो की चमक जाती रहती है और मुख दुर्गन्धित हो जाता है। कम से कम सिगरेट एक भयकर व्यसन है। 1916 के विश्वयुद्ध के कामुक जीवन पर अग्रेजी में एक प्रामाणिक ग्रथ[4] है। उसमें लिखा है कि फ्रांस आदि देशो मे सिगरेट का अभाव हो जाने पर वहा की तरुणियां एक-एक सिगरेट लेकर अपना सतीत्व सिगरेटदाता को किराये पर दे देती थी। सिगरेट से उद्दण्डता और निर्लज्जता दोनों की भावनाए जगती हैं।

पान को हम विपो मे ले सकते है। एक सीमा तक वह मुखरजक ही नही, कान्तिवर्द्धक, उद्दीपक और रक्तशोधक भी होता है। पर व्यसन बढ़ने पर यह भूख को मारता है, रक्त को रूक्ष करता है और दांतों को निर्बल करता है। पान की जड में भयंकर विष होता है। उसके

---

1 If less than four hunderdth part of an ounce of Nicotine were injected into a man's blood, he would die , and there is about one-third of this quantity in every cigarette smoked. Nicotine excites the heart to go faster. In the course of 24 hours, a smoker's heart may have to beat 30,000 extra time. —Dr Steinhans (Chicago)

2 Encyclopaedia of Sex

3 Tobacco and woman are enemies A taste for one spoils the taste for the other

4 Sexual Life during the World War

विपय में प्रसिद्ध है कि उसका चूर्ण फांक लेने से स्त्रियो की गर्भधारण-शक्ति सदा-सर्वदा के लिए जाती रहती है। ऐसी दशा में पान खाने का कुप्रभाव कम से कम स्त्रियों पर तो अवश्य पड़ता होगा। ऋतुकाल में स्त्रियो को पान खाना वैद्यक में वर्जित है। विलासिनी स्त्रियां पान अधिक खाती है। उनकी गर्भधारण-शक्ति पर इसका प्रभाव अवश्य पड़ता होगा।

वनस्पति घी भी एक प्रकार का विष ही है। आजकल घी की जगह उसीका व्यवहार होता है। शुद्ध घी अमृत माना गया है। वह इतना विपघ्न होता है कि उससे सर्प-विष तक शमित हो जाता है। उससे आयुर्वल वढता है। उसका एक सस्कृत नाम ही आयु है। पुष्टि, कान्ति, मेधा वढाने में वह अप्रमेय है। वनस्पति घी उसका स्थान इन वातों में नही ले सकता, हलवाई की दुकान में भले ही ले ले। इस कृत्रिम घी से पाचन-शक्ति स्वयं पच जाती है, पुस्त्व का सत्त्व निकल जाता है और दृष्टि का धीरे-धीरे लोप हो जाता है। जीवों पर इन बातों की वैज्ञानिक परीक्षा की गई है। दो-तीन पीढ़ी के वाद उनके वशधर नपुसक और अधे मिलते है।

आलस्य

आलस्य भी स्वास्थ्य-नाशक होता है क्योंकि उससे अनावश्यक स्थूलता वढती है, हृदय रक्त प्रसारित करने में असमर्थ हो जाता है, और शरीर मे भारीपन आ जाता है। आलसी दिन-भर पड़ा रहता है, इससे उसकी आयु तीव्रता से क्षीण होती है। वैज्ञानिक परीक्षा से यह ज्ञात होता है कि खड़े या बैठे रहने पर हृदय को उतना नही धड़कना पड़ता है, जितना कि लेटने पर।

सुप्रसिद्ध 'मेट्रोपॉलिटन वीमा कम्पनी' ने हिसाब लगाकर प्रकाशित किया है कि आत्महत्या का प्रधान कारण आलस्य है। आलस्य और अकर्मण्यता से ही यह प्रवृत्ति उठती है। उक्त कम्पनी की गणना के अनुसार क्षीणकाय व्यक्तियो की अपेक्षा मोटे आत्मघातियो की सख्या अधिक है।

आलस्य और स्थूलता, सरल आहार व परिश्रम से ही नष्ट होते

हैं। प्रातःकाल मधु-मिश्रित या नीबू-मिश्रित पानी पीना इसमें गुण करता है। नहाने के पानी में एक नीबू निचोड़कर स्नान करने से भी लाभ होता है। उससे एक लाभ यह भी होता है कि चमड़े पर झुरियां नही पड़ती ग्रौर त्वचा का रग निखरता है।

कोष्ठबद्धता

कोष्ठबद्धता के सम्बन्ध मे हम ऊपर कुछ लिख चुके हैं। यह रोग रक्त को दूपित करता है ग्रौर शरीर को जीते-जी सड़ाता है। ज्वर ग्रादि की जननी-जनक यही होता है। 'ग्रांत भारी तो माथा भारी' की उक्ति सर्वविदित है। त्रिफला-सेवन इसकी एक ग्रच्छी ग्रोषधि है। ग्राधुनिक उपचारों में 'एनिमा' का प्रयोग सर्वोत्तम है।

आहार-विरह

ठीक समय पर ग्रथवा क्षुधा-भर को ग्राहार न प्राप्त होने से भी शरीर का नाश होता है। इसको प्रमाणित करने की ग्रावश्यकता नही क्योंकि भारतवर्ष में ग्रसख्य ग्राहार-विरही मिलते हैं, जिनकी दशा से इसके कुप्रभाव का ग्रनुमान किया जा सकता है।

इसी प्रकार कई कारणों से स्वास्थ्य-नाश होता है, जिनमें से एक तो ग्रस्वच्छ रहन-सहन ग्रौर बाजार का गन्दा खाना है। मक्खियों से जितना नाश होता है उतना मानव-विनाश सम्भवतः तोप के गोलों से भी नही होता। दूषित जलवायु से भी स्वास्थ्य-नाश प्रत्यक्ष ही होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि जलवायु का प्रभाव शरीर पर ही नही, मस्तिष्क पर भी बहुत पड़ता है। उससे मनुष्य का स्वभाव ही बदल जाता है। वैज्ञानिक परीक्षा से देखा गया है कि ग्रावश्यकता से ग्रधिक शोत-सेवन से ज्ञान-तन्तु स्वच्छन्द हो जाते है ग्रौर स्वभाव में निर्लज्जता ग्रा जाती है। उष्ण जलवायु से स्वभाव में कर्कशता, झुझलाहट, ग्रालस्य, थकावट, बेचैनी ग्रौर स्नायविक शिथिलता उत्पन्न होती है ग्रौर चित्त की एकाग्रता नष्ट होती है। यह ऑक्सीजन का खेल है।

स्वास्थ्य की परीक्षा

ग्रन्त में हमें यही कहना है कि सभी बातों को ध्यान में रखकर ग्रपने

स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए और अपने शरीर को इतना समर्थ बनाना चाहिए कि वह औरों का नही, तो कम से कम अपना बोझ स्वय उठा सके। इसके लिए अपने त्रिमर्म—हृदय, मस्तिष्क, फेफड़े—का ध्यान रखना चाहिए क्योकि वे ही प्रधान शरीर-सचालक है, और रक्त की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि सुश्रुत के शब्दों में रुधिर ही शरीर का मूल है; वही शरीर को धारण करता है। वास्तव में, वही जीवन है। स्नायु-मण्डल सुदृढ़ रखना चाहिए, क्योंकि वही शरीर-जाल को बुनते हैं। नाना उपायों से रोज स्वास्थ्य की परीक्षा करनी चाहिए। उदाहरणार्थ—सिर भारी हो, जीभ गन्दी हो, तो आतों का भारीपन समझना चाहिए। अत्यधिक उत्तेजना या शिथिला से स्नायु-दुर्बलता तथा लाल-पीले या जलनयुक्त मूत्र से अस्वास्थ्य और बिना फेन के मूत्र से पुरुषत्व-विनाश मानना चाहिए।

4

सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति

सुप्रसिद्ध नीतिकार भर्तृहरि ने लिखा है कि जिसके पास धन है वही कुलीन है, वही पण्डित, विद्वान्, गुणज्ञ, वक्ता एवं रूपवान् माना जाता है; धन से सव गुणों को आश्रय मिलता है। वास्तव में धन ही मनुष्यों का ऐश्वर्यदाता, सहायक, वन्धु, संकट-मोचन और अलादीन का चिराग है। उसीसे जीविका चलती है, प्रतिष्ठा वढ़ती है, मनोरथों की पूर्ति होती है। अनुभवी व्यास ने सत्य ही कहा है कि धन का न होना पुरुष की मृत्यु है: 'पुरुषस्याऽधनं वधः' [उद्योग-पर्व] नीति के इस कथन को कौन शरीरधारी अस्वीकार करेगा कि निर्धनता ही सर्वाधिक कष्ट-दायिनी होती है: 'सर्वकष्टा दरिद्रता।'

द्रव्योपार्जन करना मनुष्य का एक व्यक्तिगत धर्म है, क्योंकि विना उसके जीवन की क्रिया नही चल सकती। इस पृथ्वी का नाम वसुमती (अर्थात् धनवाली) है। इसमें जो वसुता नही प्राप्त करता वह भौतिक जीवन का आनन्द नही पा सकता। जो वसुमत् (धन-सम्पन्न) होता है, वही वसुमती का भोग करता है; जो वसुकीट (भिक्षुक) होता है, वह 'नानारत्ना वसुन्धरा' [कालिदास] मे भी नरक का जीवन भोगता है। लौकिक जीवन की ऐसी ही व्यवस्था है।

धनोपार्जन एक वड़ा स्वार्थ ही नही वल्कि परमार्थ भी है। वह एक श्रेष्ठ राष्ट्र-धर्म है। राष्ट्र व्यक्तियों से ही बनते हैं। अतएव व्यक्तियों की सामूहिक सम्पन्नता-विपन्नता का प्रभाव राष्ट्र की दशा पर पड़ता है। जव देश धनधान्य से समृद्ध रहता है तो उसकी सभ्यता एव स्वतंत्रता का विकास होता है, राष्ट्र शक्तिशाली होता है, समर्थ और शान्तिमय होता है। राजनीतिक परिस्थिति के ठीक पीछे आर्थिक परिस्थिति खड़ी मिलती है। युद्धों में भी सैन्य-बल के पीछे राष्ट्र का धन-बल ही रीढ़ वनता है। देश की आर्थिक स्थिति ठीक न हो तो सेनाए अधिक समय तक मैदान में खड़ी नही रह सकती। लोग जव भूखे रहते है तो राष्ट्र के

नियम ढीले पड जाते है, लोक-मर्यादा टूट जाती है, विद्रोह होता है, अनाचार बढता है। 'क्षीणा नराः निष्करुणा भवन्ति' का अनुभव करके ब्रिटिश गवर्नमेण्ट भारतवर्ष से उजड़ चुकी है।

सभी दृष्टियों से धन-सचय करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। तत्त्व-ज्ञानियों का यह मत है कि धन से धर्म होता है और उससे सुख—'धना-द्धर्म ततः सुखम्।' वैरागियो की तरह धन को पाप का मूल मानना मूर्खता है। धन पाप का बाप नही होता, बल्कि उसका न होना मनुष्य से पाप कराता है। पाप की खेती निर्धन के ही मन में पनपती है, क्योंकि तब कष्ट से उत्पन्न आंसुओ की बरसात होती रहती है। निकम्मा आदमी अपने ही साथ नही, देश और समाज के साथ भी अपराध करता है, क्योकि वह स्वय कुछ न कमाकर दूसरे के धन का उपभोग करता है और राष्ट्रीय सम्पत्ति को क्षीण करता है। जो धन-सग्रह के लिए उद्यत रहता है, वह अपने पौरुष से स्वय तथा देश-समाज का भी कुछ न कुछ कल्याण करता है। यही मानिए कि धन से ही लोक-जीवन का कल्याण होता है। प्रकृति यही चाहती है कि आप निर्धन न बने। शेखसादी के शब्दों में : 'सूर्य-चन्द्र सब इसलिए कार्यमग्न है कि आपको खाने के लिए रोटी मिलती रहे, धन मिलता रहे।'

धन-प्राप्ति के साधन

अब धन-प्राप्ति के साधनों पर विचार कीजिए। भाग्य से भी धन मिलता हुआ देखा जाता है, परन्तु भाग्य एक ऐसा बल है जिसपर किसीका स्वतन्त्र अधिकार नही होता। अतएव भाग्य के भरोसे अकर्मण्य बनना ठीक नही। तुलसी का मत है कि घर में कल्पतरु एव कामधेनु के चित्र टाकने से विपत्ति नाश नही होती : 'चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नसावे।' कौटिल्य का भी मत है कि धन, धन से ही पैदा होता है, तारे बेचारे क्या सहायता करेगे : 'अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्र किं करिष्यन्ति तारकाः'। हमें यही मानना चाहिए कि बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य से धन पैदा होता है और पैदा होने पर उससे उसीकी वृद्धि होती है। परि-श्रम पैसे का पिता है।

कार्य या परिश्रम व्यापार के रूप में भी हो सकता है और नौकरी

के रूप में भी। सेवा-वृत्ति को शास्त्रों ने हेय माना है। इसमें सन्देह नहीं कि यथेच्छ धन का अर्जन और उपभोग व्यापार से ही हो सकता है।

जो सम्पत्ति का पूर्ण उपभोग करना चाहे, उसे व्यवसाय को ही धनागम का साधन बनाना चाहिए। व्यवसाय चाहे छोटा ही हो, नौकरी से अधिक लाभप्रद और आशाप्रद होता है। दासता में पराधीनता रहती है, इसलिए अपने को दूसरो के अनुकूल बनाने में बड़ा कृत्रिम रूप बनाना पडता है।

इन बातों को ध्यान में रखिए

परिस्थितिवश आप चाहे व्यापार करे या नौकरी, यदि आप उन्नति करना चाहते है तो इन बातो को ध्यान में रखिए :

1 किसीके हाथ अपने आत्माभिमान और अपनी नैतिकता को न बेचिए—चाहे आप नौकरी या व्यापार करते हों अथवा करने निकले हों, अपने मनुष्योचित आदर्शों को न भूलिए। नैतिक पतन होते ही मनुष्यता पतित हो जाती है। ऐसा कार्य न कीजिए जो आत्मा के प्रतिकूल हो। धन से सब कुछ खरीदा जा सकता है, परन्तु किसी भले आदमी की मान-मर्यादा नही खरीदी जा सकती।

2. दूसरों की दया-कृपा पर अवलम्बित न रहिए—दूसरों में हम भाग्य को भी लेते है। भाग्य से अच्छी नौकरी मिल सकती है, अथवा व्यापार के लिए अच्छा अवसर प्राप्त हो सकता है, पर उसके उपयोग में उसकी (भाग्य की) सहायता काम नही देगी। आत्मयोग्यता से ही अच्छे पद या अच्छे अवसर का लाभ लिया जा सकता है। दूसरों में हम मित्रो और बड़े आदमियों को भी लेते है। वे एक सीमा तक ही आपके सहायक हो सकते है। यदि आपमें आत्म-समर्थता न होगी तो वे आपकी रीढ़ नही बन सकते हैं। अग्रेजी में एक कहावत है कि भगवान् उन्हीको सहायता देता है, जो स्वावलम्बी होते है।[1] एक सुप्रसिद्ध विलायती विचारक (सर विलियम टेम्पल) का यह अनुभवात्मक कथन इस सम्बन्ध में याद रखने योग्य है :

---

1 God helps those who help themselves

"ऐसा व्यक्ति जो केवल ग्रन्थों का अनुवाद करता है, कभी कवि अर्थात् मेधावी नही हो सकता; ऐसा व्यक्ति जो केवल दूसरों के चित्रों के आधार पर चित्र बनाता है, कभी चित्रकार अर्थात् कलाकार नही हो सकता, ऐसा व्यक्ति जो केवल वायुगर्भित रबर की थैली के सहारे तैरता है, कभी तैराक अर्थात् पारगत नही हो सकता; उसी तरह जो लोग अपने व्यवसाय अर्थात् परिश्रम पर अवलम्बित न होकर केवल दूसरो की सहायता के भरोसे रहते है, वे सदैव दरिद्र अथवा संकट में ही रहेगे।"[1]—'काकी प्रभुता नहि घटी पर घर गए रहीम।'

अतएव स्वावलम्बी बनिए; दूसरों का मुह न ताकिए; दूसरों का मुह ताकना श्वान-वृत्ति है। मुह देखने का आनन्द तभी आता है, जब दोनो ओर से हो, अर्थात् कोई आपकी उपयोगिता को देखे और आप उसकी जेब को सच्ची नजर से देखें।

3. भूलकर भी सन्तोष न कीजिए—साधुओं की दृष्टि में 'सतोषः परमं सुखम्' एक अच्छा सिद्धान्त हो सकता है, परन्तु सासारिक मनुष्य के लिए सतोष करने का अर्थ है जड होकर बैठ जाना। जड़ता या स्थिरता कम से कम लक्ष्मी को प्रिय नही है। वे महाचंचला है। उनके साथ दौड़ने पर ही उनका साहचर्य प्राप्त होता है। उसीसे आशा बनी रहती है और आशामय जीवन ही सबसे सुखी जीवन है। सतोषी होकर निराशावादी या निराशावादी होकर सतोषी न बनिए। इच्छाशक्ति को प्रबल और चैतन्य रखिए।

4 भविष्य को देखिए—यदि आपमें आशा की एक भी चिनगारी है तो भविष्य को देखिए, क्योंकि आज के बाद का प्रत्येक क्षण आपको उसमें बिताना है। उसपर आपका कुछ अधिकार है और वह आपके बनाने से बन भी सकता है। समय से आगे सोचने-विचारनेवाला नेता ही अग्रगामी माना जाता है। अतएव यदि आप अपने क्षेत्र के नेता बनना चाहते है तो आज से दस वर्ष बाद का कार्यक्रम बनाकर तब चलिए, उसी

---

1 A man that only translates shall never be a poet, nor a painter that only copies, nor a swimmer that swims always with bladder, so people that trust wholly on others's charity and without industry of their own will always be poor.

तरह चलिए जैसे एक स्थान से दूसरे स्थान की रेल-यात्रा करते समय आप मार्ग की सारी तैयारी करके और निश्चित स्थान का टिकट लेकर चलते हैं। भविष्य को देखिए परन्तु अंधकारमय भविष्य को नहीं।

5 समय को पकड़िए—समय सबसे बडा सेठ है। वह एक ऐसा सेठ है जो बड़ी-बड़ी जुल्फे रखकर चलता है और पीछे से खल्वाट है। सामने से पकड़ने पर ही वह पकड़ में आता है। उसके पीछे दौड़ने से अवसर हाथ से निकल जाता है और समय के पीछे रहनेवाला व्यक्ति बैठकर पछताने के सिवा कुछ नहीं कर सकता। अंग्रेजी में एक कहावत है कि समय ही धन है।[1]

हमारे शास्त्रो मे भी महाकाल की बड़ी महिमा गाई गई है। उसका अभिप्राय यही है, कि समय बड़ा बली है, उसका सम्मान करना चाहिए। सम्मान-स्वागत आगे बढ़कर ही किया जाता है, पीठ पीछे प्रायः निन्दा ही होती है। समय की बलवत्ता इससे सिद्ध होती है कि वह सबको परिवर्तित एवं व्यतीत करता है। वह आयु को भोगता है। काल-स्वामी सूर्य प्रत्येक दिन सबकी आयु का एक भाग लेकर तभी अस्त होता है। जब वह आपसे कुछ लेता है, तो बुद्धिमानी इसीमें है कि आप भी उससे अपनी आयु का उचित मूल्य ले, अपनी वस्तु को व्यर्थ न जाने दे।

अतएव एक-एक घण्टा और एक-एक क्षण को पकड़िए। पकडने का अर्थ है, प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ करते रहना। कुछ करते रहने का अर्थ खुराफात करना नहीं, बल्कि कोई न कोई उपयोगी कार्य करना है। वे क्षण ही आपके लिए मूल्यवान् हो जाएगे। बुद्धिमान् का एक घण्टे का जीवन मूर्ख के सम्पूर्ण जीवन के बराबर माना जाता है, क्योंकि बुद्धिमान् व्यक्ति उस एक घण्टे का उचित उपयोग करना जानता है और करता भी है। अतएव एक मिनट को भी व्यर्थ व्यतीत न होने दीजिए। आवश्यक कार्यों में 'कभी' की अपेक्षा 'अभी' को अधिक महत्त्व दीजिए। दुनिया बड़ी तेजी से भागती है; एक मिनट में वह कही से कही एक दूसरे वातावरण में चली जाती है। अतएव यथासम्भव कामों को वादे पर न टालिए। तत्काल करने योग्य कामो को तत्काल कीजिए। कल

1 Time is money

का दिन अपने अनेक झंझटो को लेकर आएगा, यही मानिए। 'शुभस्य शीघ्रम्' की नीति को अपनाइए।

स्वर्ण-सयोग की प्रतीक्षा न कीजिए। स्वर्ण-सयोग अपने-आप नहीं आ सकता। उसका बीज यदि आप आज बोइएगा, तभी वह कल फला, हुआ मिल सकता है। यही प्रकृति का नियम है। 'कल' का विधाता या पिता 'आज' आज ही निर्बल होगा तो उसका पुत्र 'कल' भी जन्म से निर्बल होगा। भविष्य के भरोसे बैठना मूर्खता है। भविष्य का थोडा भाग तो अपने प्रत्येक क्षण और प्रत्येक घण्टे के बाद तत्काल प्राप्त होता है। उसको अपने से दूर न मानना चाहिए और अपने लक्ष्य पर वही से चल पड़ना चाहिए जहां आप खड़े है। एक विद्वान् ने कहा है कि जीवन-यात्रा का मार्ग ठीक वही से प्रारम्भ होता है, जहा आप खड़े है।

भविष्य स्वर्ण-अवसर तभी बन सकता है जब कि आप स्वय उसके लिए तैयार मिले। इगलैड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री डिजरायली ने कहा है कि जब अवसर आए तब उसके लिए तैयार मिलना ही मनुष्य की सफलता का गुप्त रहस्य है।[1]

यह तैयारी आज से ही शुरू करने से पूरी हो सकती है। आग लगने पर आप कुआ खोदने दौडेगे तो उससे आपका घर नही बच सकता। परिस्थिति के पूर्व तैयारी करने ही में बुद्धिमानी है। साधनो का सचय आज ही से करने से ठीक अवसर पर उनका उपयोग हो सकता है। अतएव दूरदर्शी बनिए। आंखे इतनी ऊचाई पर इसीलिए रखी गई है कि मनुष्य दूर तक देख सके।

6 समय को पहचानिए—समय का सम्मान करने के साथ ही उसको पहचानने का भी अभ्यास कीजिए। समय को पहचानना या पढ़ना सरल नही है, क्योकि वह सर्वदा एक-सा नही रहता, बदलता रहता है। पचाग, कलेण्डर वा घडी के सहारे नही, बल्कि उसके प्रभाव के आधार पर उसकी गति को पहचानिए। कालज्ञ होना एक महान् गुण है, इसीलिए प्राचीन विद्वानों को कालदर्शी या त्रिकालदर्शी कहा

---

1 The secret of success for a man is to be ready for his opportunity when it comes.
—Disraeli

जाता था। समय को पहचानकर उसके अनुसार आचरण करनेवाला ही सर्वसफल होता है। समय को, परिस्थिति को शीघ्र पहचाननेवाला ही प्रत्युत्पन्नमति होता है। उसको ठीक पहचानकर उसके अनुकूल अपने जीवन में परिवर्तन करना चाहिए। इसका अर्थ अवसरवादी होना नहीं, वल्कि कालानुवर्ती बनना है। समयानुसार विचार करना, व्यवहार करना और कर्म करना सफलता का साधक होता है। अतएव समय को पढ़िए। उसको पढने का मुख्य साधन है, आपका विवेक; बाह्य साधन है, अखवार। पंचांग से काल-ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा अखवार से प्राप्त कीजिए। पचांग पण्डितों के काम की वस्तु है, व्यवसायी और कर्मचारी की पोथी अखबार ही है।

समय को क्यों पढ़ना चाहिए, इसके मर्म को सरदार पटेल के निम्न-लिखित वाक्यों से समझिए। मत्स्य-राज्य का निर्माण करके सरदार ने 15 जुलाई, 1948 को राज्योद्‌घाटन करते हुए यह कहा था: "आधुनिक जगत् प्राचीन जगत् से भिन्न है। पहले हर चीज धीरे-धीरे निश्चित गति से चलती थी इसलिए अधिक अवकाश रहता था, अब एक दिन एक शताब्दी के बरावर हो गया है। देखते ही देखते कितने राज्य, कितने ही साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट होकर लुप्त हो गए। कौन कह सकता है कि समय के पंख नहीं होते हैं और इसको देखते हुए समय की प्रतीक्षा में वैठना या उसको गवाना कौन पसंद करेगा?"[1]

आधुनिक काल को देखिए जिसमें आपको रहना है। इस दृष्टि से देखिए कि यह वायुयान-युग है, बैलगाड़ी-युग नही। अल्प समय में युक्ति या शक्ति अथवा दोनों से आप जितना अधिक कार्य कर सकेंगे उतना ही आपका मूल्य बढ़ेगा। समय के इस बड़े विभाजन के ही नही, उसकी नवीन परिस्थितियों के प्रति भी सजग बनिए। सक्षेप में, सूक्ष्म-दर्शी बनिए—समय के सम्वन्ध ही में नही, प्रत्येक उपयोगी वस्तु के

---

1 The world today is different from the world of yesterday. Things could move slowly and steadily in the old world where there was more leisure and less speed. Today, one day is equal to a century. See how overnight states have fallen and empires have vanished Who can say then that time does not fly and that we can afford to wait

सम्बन्ध में। देश-काल को सूक्ष्म दृष्टि से देखिए; प्रत्येक कार्य को सामयिकता और उपयोगिता की दृष्टि से देखिए।

7. मन की शक्तियों को चैतन्य रखिए—चाहे आप व्यवसायी हों अथवा कर्मचारी, अपने आत्मविश्वास को सदैव दृढ़ रखिए। अपने को असमर्थ न मानिए। जीवन की महान् भूल वही होती है जहां मनुष्य अपने को असमर्थ और निस्सहाय मानकर हताश हो जाता है। हार मानने की मनोवृत्ति का त्याग करके उत्साही बनिए और यह निश्चय कीजिए कि आपको सफल बनना है, कुछ करके दिखाना है। निश्चय करके ही मनुष्य में आत्म-बल आता है। अपनी कल्पना-शक्ति को दौड़ाइए, परन्तु सप्रयोजन। कल्पना-शक्ति में भी बड़ी शक्ति है। आगे की सीढी वही ढूढती है। उसके बाद विवेक का आश्रय लीजिए। वही आपकी कल्पना द्वारा ढूढी हुई सीढियों में ठीक सीढ़ी का निर्णय कर सकेगा। अपनी स्मरणशक्ति को सबल बनाइए—परन्तु व्यर्थ की बातों को याद रखने के लिए नही। विवेकपूर्वक अनुभवसिद्ध उपयोगी बातो को ध्यान में रखिए। अपने विचारों को इसका अभ्यस्त बनाइए कि वे किसी वस्तु के यथातथ्य रूप को तत्काल पहचान सके। सफलता के लिए यथातथ्य ज्ञान, सफलता में विश्वास और उच्च कल्पना-बल—इन तीनों का आश्रय लेना आवश्यक है। और सबसे अधिक आवश्यक है—साहस।

महर्षि व्यास ने महाभारत में लिखा है कि साहस ही में लक्ष्मी निवास करती है। भीरुता एक विनाशात्मक भावना है। जो भी बडे-बड़े व्यवसाय आज खड़े मिलते है, वे साहस से ही खड़े किए गए थे। यदि आवश्यकता से अधिक सावधानी का ध्यान रखा जाता तो एक फैक्टरी भी खडी नही हो सकती थी। रणक्षेत्र और व्यावसायिक क्षेत्र दोनों ही में साहस की आवश्यकता होती है, क्योकि दोनो में संघर्ष और प्रतियोगिता की भावना रहती है। आत्मरक्षा का विशेष ध्यान रखने-वाला व्यक्ति बहुत आगे नही जा सकता। यदि आप विजयी होना चाहते है तो बांहें चढाकर साहस के साथ कर्मक्षेत्र में खड़े होइए, परिस्थितियों से सघर्ष कीजिए और साथ ही धैर्यसहित जमे रहिए। साहस-धैर्य प्राय:

कभी विफल नहीं होते। मन को इतना बलवान् बनाइए कि उद्देश्य की प्राप्ति तक मनोयोग ढीला न पड़े।

8. सहनशील और प्रयत्नशील बनिए—सहनशीलता धैर्य ही से आती है। उसका अर्थ यह नही है कि कोई आपका अपमान कर दे तो आप विष का घूंट पीकर बैठ जाएं। उसका प्रयोजन है, स्थिरमति होकर शान्तिपूर्वक प्रत्येक बात को सुनना, समझना तथा विवाद के प्रसंग को बचाना। सहनशील होकर प्रयत्नशील होने पर कार्य निर्विघ्न रूप से समाप्त होता है।

9. व्यवहारकुशल बनिए—व्यापार मुख्यत: व्यवहार से चलता है। उसका एक संस्कृत पर्यायवाची शब्द ही व्यवहार है। व्यापारी को व्यवहारक कहते हैं। व्यवहार में सत्य और विश्वास का सदैव ध्यान रखिए क्योंकि इन्हींके द्वारा संसार का व्यापार चलता है। छल-कपट का व्यवहार अर्थ-नाशक होता है। किसी व्यवसाय की साख जम जाने पर बाद में उसका नाम ही बिकता है। साख उखड जाने पर उसका सामान बिकता नहीं, नीलाम भले ही हो जाए। साख सच्चे व्यवहार से जमती है। व्यापार में कृत्रिमता की मिलावट वही तक कीजिए जहां तक अनिवार्य है। धोखा देना लक्ष्मी को डंडे मारकर घर से खदेड़ना है। विश्वासपात्रता लक्ष्मी की मां है।

व्यक्तिगत रूप से भी व्यवहारकुशल होना अर्थ-सिद्धि का प्रथम सोपान है। व्यवहार के सौजन्य से कौन नही वश में होता! लिवरपूल के एक सुप्रसिद्ध व्यापारी से किसीने पूछा कि आपने इतना धन किस व्यापार से कमाया? उसने उत्तर दिया कि केवल एक वस्तु के व्यापार से, जिसको आप भी कर सकते हैं; वह है सौजन्य, विनम्रता। अमरीका के धनकुबेर रॉकफेलर ने कहा है कि व्यवहारकुशलता उसी प्रकार एक खरीदने योग्य वस्तु है जैसे चीनी या कॉफी; और मै उस योग्यता के लिए ससार की किसी भी वस्तु से अधिक मूल्य देने को तैयार हूं।[1]

---

1 The ability to deal with people is as purchasable a commodity as sugar or coffee, and I will pay more for that ability than for any other under the sun.
—Rockfeller

धन कमाने के लिए विद्वान् होना उतना आवश्यक नही जितना व्यवहारकुशल।

10. सिद्धहस्त वनिए—धन ज्ञान से नही, ज्ञान के प्रयोग से मिलता है। अतएव शुद्ध ज्ञानी न वनकर कर्मयोगी वनिए। संक्षेप में योगी वनिए, ऋपि वनिए, आर्य वनिए और शाक्त वनिए—तभी धन मिल सकता है। इसका यह अर्थ नही है कि मन्दिर में वैठकर 'सवके दाता राम' से धन मांगिए। इन शव्दों से भड़कने की आवश्यकता नही है। कार्यकुशलता को ही योग कहते हैं : 'योगः कर्मसु कौशलम् ।' और गीता के अनुसार जीवन-धारण के लिए शारीरिक व्यापार का नाम कर्म है। योग कोई जादू नही है। ऋपि 'ऋप्' धातु से वना है, जिसका अर्थ है गति; और व्याकरण पण्डितो के मत से गति का अर्थ है ज्ञान, गमन और प्राप्ति। आर्य भी 'ऋ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है गति। *जिसके द्वारा कर्म सम्पन्न हो—योग्यता, सामर्थ्य—वही शक्ति है।* उसकी साधना करनेवाला शाक्त है।

कार्य द्वारा ही ज्ञान और शक्ति का विज्ञापन हो सकता है और कम से कम इस विज्ञान के युग में उसीसे धन प्राप्त हो सकता है। अतएव केवल ज्ञान-श्रेष्ठता पर विश्वास करके न वैठिए। योजनानुसार हाथों को चलाइए और विद्वान् व्यास के इस नीति-वाक्य को ध्यान में रखिए कि कामकाजी आदमी वलवान् और धनवान् होता है, इसमें सन्देह नही : 'पाणिवन्तो वलवन्तो धनवन्तो न संशयः ।'

11. रुचि और योग्यता के अनुकूल लगन से कार्य कीजिए—पहली वात तो यह है कि आप ऐसे व्यवसाय को ही यथासम्भव चुनिए जो आपकी रुचि और योग्यता के अनुकूल हो। ऐसा न होगा तो आप उस व्यक्ति की तरह प्रतीत होगे जो मगनी का ढीला-ढाला कोट पहनकर मेला देखने जाता है। अतएव अपने नाप का ही कपडा पहनिए। दूसरे, जिस कार्य को कीजिए, लगन, एकाग्रता और अध्यवसाय से कीजिए। समुद्र में डुवकी लगाने से जिस प्रकार मोती मिलता है, उसी प्रकार काम में डूवने या लीन होने से धन मिलता है। प्रत्येक कार्य को करते समय सुरुचि-सम्पन्नता का ध्यान रखना रखिए। मनुष्य स्वभाव से ही

सौन्दर्य-प्रेमी होता है।

सुरुचि और तन्मयता से किया हुआ प्रत्येक कार्य प्रशंसनीय, सफल एवं धनद होता है। तन्मयता में आप एडिसन का आदर्श सामने रखिए। एडिसन ने अपने सत्तर वर्ष के जीवन में पन्द्रह सौ नये आविष्कारों को पेटेण्ट कराया था। वह एक ही धुन में लगा रहता था और किसी सभा-सोसाइटी या कमेटी में भाग नही लेता था। लक्षपति होने पर भी वह धन-प्रतिष्ठा की चिन्ता नही करता था, यद्यपि दोनों उसके पीछे दौड़ते थे। समस्याओ का हल करना ही उसका व्यसन था और उसके पीछे वह एकाग्रचित्त होकर अनवरत उद्यम करता था। परिणाम सर्वविदित है। निरन्तर उद्योगी मनुष्य सब कुछ कर सकता है, और काम करनेवाले से काम स्वयं डरकर सरल हो जाता है[1]—ऐसा उद्योगशील रूसियों का कहना है।

12. गुण-सग्रह कीजिए और असाधारण बनिए—यदि आप निर्धन होकर भी गुणी हैं तो कोई न कोई गुण-ग्राहक आपको मिल ही जाएगा। ईश्वर भी सगुण होने पर, चाहे वह राम-कृष्ण के रूप में हो अथवा ईसा-मुहम्मद के रूप में, अधिक लोक-वन्दित होता है, फिर मनुष्य का तो कहना ही क्या है! गुणो का सग्रह सदैव लाभप्रद होता है। गुण ही रुपये का जन्म-स्थान है। नये गुणों का सग्रह कीजिए और किसी एक विषय के विशेषज्ञ बनिए, तभी आप सर्वसाधारण से ऊचे गिने जाएगे और आकर्षण के केन्द्र होंगे। किसी कार्य में दक्ष होने से जीविका का भय नही रहता। आत्मसबल, योग्यता और अभ्यास—यही लक्ष्मी-मन्दिर के सिद्ध सोपान है।

13. सेवाभाव को अपनाइए—आप किसी भी स्थिति में हों, सेवा द्वारा दूसरो को वश में करके उनसे लाभ ले सकते हैं। समाज में सेवा का मूल्य अवश्य मिलता है। सेवा से मनुष्य की उपयोगिता सिद्ध होती है और उसीके अनुसार प्रधानता मिलती है। शुक्राचार्य ने लिखा है कि समय पर यथोचित सेवा करने से अप्रधान भी प्रधान हो जाता है और सेवा में आलस्य करने या चूक जाने से प्रधान भी अप्रधान हो जाता है:

1. Job fears the craftsman.

अप्रधानः प्रधानः स्यात्कालेनाऽत्यन्तसेवनात् ।
प्रधानोऽप्यप्रधानः स्यात्सेवालस्यादिना यतः ।। (शुक्रनीति)

यदि आप स्वतन्त्र व्यापारी हैं तो भी सेवा-भाव को न त्यागिए। हेनरी फोर्ड ने एक भाषण में कहा था कि इस युग के बड़े-बड़े व्यवसायी जनता के सेवक[1] ही होकर रह सकते है। क्योंकि जनता जब उनकी चीजों की कद्र करेगी तभी बाजार में उनकी खपत होगी, जनता ही मालिक बनकर उनको पैसे देती है। अब वह युग बीतता जा रहा है जब कि लोग अर्थ-पिशाच बनकर जनता का रक्त चूस सकते थे। जनता की सरक्षता में ही अब व्यापार का विकास हो सकता है। यदि आप नौकरी करते है तब तो सेवा ही आपकी पूजी है।

14. अर्थ-शुद्धि को धर्म मानिए—प्राचीन शास्त्रकारों के मत से अर्थ-शुद्धि ही प्रधान शुद्धि है। पैसे के विषय में निष्कलक रहना सचमुच बड़ा कठिन है। चोरी न करना ही अर्थ-शुद्धि के अन्तर्गत नही आता। उसका अर्थ है—धन का दुरुपयोग न करना, लोभ न करना, कामचोरी न करना और अनुचित साधनों से धन-सग्रह करने का प्रयत्न न करना। अर्थ-शुद्धि न होने से धन कभी ठहरता नही, इसको सत्य मानिए। धन के सम्बन्ध में जो साफ-सुथरे नही होते, वे प्रायः धन-दास होते है, धन-स्वामी नही। इसकी परीक्षा आप इसीसे कर लीजिए कि कोई चोर, डाकू या रिश्वती थानेदार अपने पाप-अर्जित धन को भोगता हुआ नहीं मिलता।

15. आसन के बली बनिए—स्थान-बल एक बड़ा बल है। इसको इसीसे समझिए कि जब तक बाल आपके सिर में रहते हैं तब तक आप उनको सवारते है, तेल लगाते हैं, उनसे अपनी सौन्दर्यवृद्धि करते है। यही नही, बाप बच्चो के सिर सूघते हैं। वही बाल जब काट डाले जाते तो अशुद्ध और गन्दे मानकर फेंक दिए जाते हैं। यही दशा मनुष्यों की है। जब तक वह किसी पद पर, गद्दी पर, कुर्सी पर बैठा रहता है, तब तक उसकी मर्यादा बनी रहती है, उसकी कद्र होती है। स्थान रिक्त होते ही उसकी महिमा घट जाती है। इसलिए शास्त्रो का यह उपदेश

1 Public servant

है कि स्थान का त्याग मत करो : 'संस्थानं न त्यजेत् ।' महाभारतकार
ने लिखा है कि एक पैर को जमाकर तभी बुद्धिमान लोग दूसरे पैर को
आगे बढ़ाते हैं; आगे के स्थान की परीक्षा किए बिना पहले के स्थान
को नहीं त्यागते :

तिष्ठत्येकेन पादेन चलत्येकेन बुद्धिमान् ।
न परीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतन त्यजेत् ।। (व्यास)

16. भवसागर का मथन कीजिए—इसको व्यावहारिक दृष्टि से
सत्य मानिए कि विष्णु जैसे सर्वशक्तिमान् को भी समुद्र-मंथन से ही
लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी। परिश्रम के बिना अर्थ-प्राप्ति नही हो सकती।
शास्त्र में लिखा है कि धन की कामना अग्नि से करनी चाहिए : 'धन-
मिच्छेत् हुताशनात् ।' अग्नि को धनदायी और धनजय कहते भी है।
इसका अर्थ यह नही है कि हाथ जोड़कर अगीठी के सामने बैठिए तो धन
बरसने लगेगा। अर्थ स्पष्ट है। देखिए तो पता चलेगा कि कितने ही
धन-प्रवर्द्धक कर्म अग्नि की सहायता से होते है। दूसरा अर्थ यह है कि
शरीर की अग्नि अर्थात् परिश्रम की अग्नि उद्दीप्त होने से ही धन की
प्राप्ति होती है। पैसे में गरमी होती है, यही एक प्रमाण है कि उसमें
अग्नि होती है। शब्दों पर न जाइए, भाव को देखिए। पसीना बहाने
से जो पैसा मिलता है, वही पचता है। बिना पसीना वहाए प्राप्त हुए
पैसे की गरमी असह्य हो जाती है, उससे दिमाग में चक्कर आता है।
साररूप में यही समझिए कि बिना द्रवित हुए द्रव्य नही मिलता। अत-
एव मन से द्रवित—विनम्र—वनिए और शरीर से श्रम-जल द्रवित
कीजिए। परिश्रम से मनुष्य की श्री बढ़ती है; श्री ही नही उससे सह-
योगिता की भावना भी बढती है। मनोवैज्ञानिक का कथन है कि
परिश्रमी लोग कम सघर्ष, कलह करते हैं। कलह के मूल बुद्धि-व्यसनी
और अकर्मण्य लोग होते है। अतएव परिश्रमी व्यक्ति समाज-सुधारक
भी होता है यही गौरव क्या कम है !

आवश्यकता से अधिक विश्राम न कीजिए, क्योंकि वह श्रम-शक्ति
का नाशक होता है। एक अमरीकन लेखक ने लिखा है कि अमरीका के
नगर जो इतने धन-सम्पन्न लगते हैं उसका कारण यह है कि वहां बैठने

का कोई स्थान नही है।[1] इस कथन की यथार्थता को समझने के लिए इस देश के किसी ऐसे दो नगरों की तुलना कर लीजिए जिनमें से एक व्यवसाय का केन्द्र हो और दूसरा सैरसपाटे का स्थान हो। हमारे कहने का अभिप्राय यही है कि कर्मक्षेत्र में खड़े रहने से सम्पन्नता बढती है।

17 कार्यसिद्धि को महत्त्व दीजिए—कार्य की कठिनाइयो, विघ्न-बाधाओ को विशेष महत्त्व न दीजिए। शुरू करते समय साधारण कार्य भी कठिन लगता है, क्योकि सहजसाध्य कुछ भी नही है और हल हो जाने पर बडी-बडी समस्याए भी सरल लगती है। दो जर्मन कहावतें है—एक का अर्थ है कि हरएक कार्य का आरम्भ कठिन होता है।[2] दूसरी का अर्थ यह है कि समस्या हल हो जाने पर सरल लगती है।[3] इनको ध्यान में रखिए। ससार में सफलता ही मान्य होती है—चाहे वह पेड की हो, चाहे कार्य की, चाहे मनुष्य की। अतएव सफल होने की चेष्टा कीजिए। यदि किसी कार्य में आपके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति कभी सफल हो चुका है तो आप भी अवश्य सफल होंगे—यदि उद्योग करें तो! 'करत-करत अभ्यास के जडमति होत सुजान!'

18 दैनिक आय-व्यय का चिन्तन कीजिए—जीवन के अन्त में अथवा साल के अन्त में हिसाव-किताब मिलाने की आदत न डालिए। रोज देखिए कि आय कितनी है, कैसे बढ सकती है, व्यय कितना है, कैसे घट सकता है। प्रात.काल इसपर विचार करके अपना कार्यक्रम बनाइए और उस योजना के अनुसार दिन-भर कार्य करके सन्ध्या में देखिए कि आप लाभ में हैं या हानि में। अपनी परिस्थिति को रोज तौलिए। आपकी कमाई का वही हिस्सा अधिक मूल्यवान् है जो उचित व्यय के बाद बैंक में पहुचता है। आपत्ति के समय वही काम आता है और शास्त्र का वचन है कि आपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए: 'आपदर्थे धन रक्षेत्।' यदि आपके पास पैसा हो तो बचाना सीखिए

1 The reason American cities are prosperous is that there is no place to sit down

2 All beginning is difficult

3 The problem when solved becomes simple

और न हो तो कमाकर बचाना सीखिए। यह तभी सम्भव है जब आप रोज इस प्रश्न पर विचार करें। इस सम्बन्ध में चाणक्य मुनि का यह श्लोक ध्यान में रखने योग्य है :

क: काल: कानि मित्राणि को देश: कौ व्ययागमौ।
को वाहम् का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहु:॥

—कैसा समय है, कौन-कौन सहायक हैं, कैसा देश है; आय-व्यय कितना है, मैं कौन हूं, मुझमें कितनी सामर्थ्यशक्ति है—इनका चिन्तन बार-बार करना चाहिए।

19. लेन-देन में सावधान रहिए—शुक्राचार्य ने लिखा है कि धन का देना मित्रता का कारण होता है, परन्तु वापस लेना शत्रुता का : 'धन मैत्रीकरं दाने चादाने शत्रुकारकम् ।'

ऋण के लेन-देन में यही होता है। 'उधार दीजे, दुश्मन कीजे' की लोकोक्ति बहुत प्रसिद्ध ही नही, बहुत भोगी हुई भी है। अतएव यथा-सम्भव न तो ऋण दीजिए और न लीजिए। ऋण लेते ही तुलसी की यह उक्ति : 'आव गया आदर गया, नैनन गया सनेह'—पूर्णतया चरितार्थ होती है।

20. दान से धन की वृद्धि होती है—यह एक अलौकिक किन्तु प्राचीनकाल से बहुतों द्वारा परीक्षित सत्य है कि दान से धन बढ़ता है। आपकी आय कितनी भी कम हो, परन्तु यदि आप उसमें से कुछ सुपात्र को दे दे तो उससे पुण्य का नहीं तो कम से कम आत्म-बल का सचय अवश्य होता है और मन में यह भावना उठती है कि पैसा कुछ धर्मार्थ हुआ; दूसरे, लोक-प्रतिष्ठा मिलती है। बड़े पैमाने पर देखिए तो ज्ञात होगा कि दान द्वारा प्रकारान्तर से आर्थिक लाभ होता है। बिड़ला को लीजिए जो दान के लिए प्रसिद्ध हैं। दान से बिड़ला के नाम का जो विज्ञापन होता है, उससे जनता में उनके व्यापार के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। यह अनुराग और यश वे कोरा विज्ञापन करके नही कमा सकते थे। उनकी बहुत-सी वस्तुए तो बिड़ला नाम की लोक-प्रियता के कारण बिकती हैं।

21. धनी का भेस न बनाइए—अर्थात् अवध के ताल्लुकेदारों

की तरह रईसी का मिथ्या विज्ञापन मत कीजिए। जैसी आपकी आर्थिक स्थिति है, उसीके अनुसार अपना रहन-सहन बनाइए।

22. बनिये की तरह बनिए—धन कमाना है तो पंडित की तरह ज्ञानी और भावुक तथा ठाकुर की तरह अक्खड न बनकर बनिये की तरह सरल, मधुर, सावधान और 'अर्थकरी विद्या' के जानकर बनिए। दार्शनिक बुद्धि अथवा धनुर्वेद के ज्ञान से नही बल्कि वणिक्-बुद्धि से ही रुपया आता है। बनिया एक-एक पैसे को जिस प्रकार पकड़ता है, उसी प्रकार पकडिए। देशी बनिया बनना न पसन्द हो तो अग्रेज बनिये की तरह बनिए 'जो सात समुन्दर पार' भारतवर्ष में आकर व्यवसाय करते-करते बनिये से राजा बन गया था।

23. इन पाच नीति-वाक्यो को ध्यान में रखिए :

1

श्रीर्मङ्गलात्प्रभवति प्रागल्भ्यात् सप्रवर्धते।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं सयमात्प्रतिष्ठति ॥ (विदुर)

—धन उत्तम कर्मो से उत्पन्न होता है, प्रगल्भता (साहस, योग्यता, कीर्ति, वेग, दृढ निश्चय) से वढता है, चतुराई से फूलता-फलता है और सयम से सुरक्षित होता है।

2

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पद.।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥ (विदुर)

—जैसे भौरा बिना पुष्प को नष्ट किए उसमे से मधु ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी धन के मूल साधन को नष्ट किए बिना उसमें से धन ग्रहण करना चाहिए।

3

कारणात् प्रियतामेति द्वेषो भवति कारणात्।
अर्थार्थी जीवलोकोऽयं न कश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥ (महाभारत)

—कारण से ही लोगो में प्रीति और कारण से ही द्वेप की उत्पत्ति होती है, अर्थार्थी ससार में कोई (निष्प्रयोजन) किसीका प्रिय नही है।

4

प्रसारयति कृत्यानि, सर्वत्र विचिकित्सते।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ।। (महाभारत)

—जो कार्य को लम्बा बना दे, सब पर सन्देह करे, शीघ्रता के कार्य मे देर लगाए, वही मूढ़ कहा जाता है।

5

कार्ये कर्मणि निर्दिष्टे यो बहून्यपि साधयेत्।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ।।
न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः।
यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ।। (रामायण)

—(लंका में हनुमान की उक्ति) कर्तव्य-कर्म के पूरा हो जाने पर उससे अविरुद्ध अन्य कार्यो को भी जो साधता है, वही अच्छा कार्यकर्ता है। जो अर्थ-सिद्धि करने के बहुत-से उपाय जानता है, वही अर्थ के साधन में समर्थ हो सकता है।

ऊपर के श्लोकों पर विशेष रूप से कुछ लिखने की आवश्यकता नही है। हां, यह समझ लेना चाहिए कि अर्थ का अभिप्राय यहां कार्य से है। कार्य की सफलता के मूल्य-स्वरूप धन या मान ही मिलते है।

उपर्युक्त सभी बातो को ध्यान में रखते हुए, अब हमें कुछ ऐसी अन्य आवश्यक वातों पर भी विचार करना चाहिए जो भिन्न-भिन्न उपायों से द्रव्योपार्जन करनेवालों के काम की है।

1. यदि आप व्यापारी या व्यापार-प्रेमी हैं

पूजी, परिश्रम और योग्यता—व्यापार के लिए या तो पूजी और परिश्रम की आवश्यकता होती है, अथवा योग्यता और परिश्रम की। यदि आपके पास पूंजी है, तो देखिए कि किस काम में उसको लगाने से वह फलित होगी। रचनात्मक बुद्धि से विचार कीजिए। लोगों की आवश्यकता और रुचि को देखिए। आशा, विश्वास, उत्साह को जागरित करके अपनी इच्छाओ को क्रियात्मक रूप दीजिए और मूलधन के साथ अपने तथा दूसरो के परिश्रम को संयुक्त कीजिए। यदि पूजी नही है तो योग्यता से आप दूसरों द्वारा धन लगवाकर स्वयं अपने परिश्रम से

व्यापारी बनने का उद्योग कीजिए। बड़ी पूजी है तो यन्त्रों का साधन लीजिए; थोडी पूजी या योग्यता का ही सम्बल हो तो घरेलू उद्योग-धधो को अपनाइए और क्रमशः बढिए। गाधीजी के इस उपदेश को याद रखिए कि तुम बढ़ना चाहते हो तो नीचे से शुरू करो।[1]

प्रतियोगिता के लिए तैयार रहिए—फौजी काम और व्यापारिक कार्यप्रणाली में बहुत कुछ समता होती है। एक को हिंसात्मक युद्ध कह सकते है तो दूसरे को अहिंसात्मक। फौज से देश पर अधिकार किया जाता है, व्यापार से बाजार पर। दोनों में संगठन, अनुशासन और कौशल की आवश्यकता पडती है। फौजें बैंड बजाती हुई आगे मार्च करती हैं और व्यापार विज्ञापन करता हुआ बढता है। जिस प्रकार आमने-सामने की दो फौजो में प्रतियोगिता होती है, उसी प्रकार दो व्यापारो मे भी होती है। अवसर का उपयोग भी दोनो मे समान रूप से होता है, फौज के भिन्न-भिन्न अंग जैसे एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परस्पर सहयोग करते हुए एक लक्ष्य की ओर बढते है।

इन बातो को समझते हुए आप सैनिक उत्साह के साथ व्यापार में पड़िए। नये ढंग के अस्त्रो से जैसे विजय-सिद्धि होती है, वैसे ही नई वस्तुओ के आविष्कार, आकर्षक तथा उपयोगी वस्तुओं के निर्माण से अर्थ-सिद्धि होती है। नई सूझ के साथ समय पर सबसे पहले नई वस्तु निर्माण करके और नये ढंग से विज्ञापन करके ही उसका प्रचार बढ़ाया जा सकता है। इसे याद रखिए कि यह 'प्रोपेगैण्डा' (प्रचार) का युग है। प्रोपेगैण्डा का मूल रहस्य है, पुनरुक्ति। बार-बार एक ही बात को प्रकाशित करने से वह लोगों के मन में बैठ जाती है। अपनी एक विशिष्ट वस्तु रखिए और उसीको सर्वोत्तम प्रमाणित करने की बार-बार चेष्टा कीजिए। अपनी सभी वस्तुओ को सर्वोत्तम बनाने या बताने की यदि आप चेष्टा करेगे तो असफल होंगे। एक ही वस्तु को विशिष्ट बनाकर उसीके प्रचार पर अपनी शक्तियों को केन्द्रित कीजिए। उसीके पीछे अन्य वस्तुएं भी चलेगी जैसे गाधीजी की देश-सेवा के पीछे समस्त लोक-सम्मतियां। उनके निर्माण की अपेक्षा उनके विक्रय पर अधिक ध्यान

1. If you want to start, start from below.

दीजिए। रुपया उसीसे आता है।

व्यापार लोकप्रियता से बढता है—अपने व्यापार को व्यापक बनाने के लिए जनता की सहानुभूति प्राप्त कोजिए। उसके लिए सर्वप्रथम तो जनता की माग का ध्यान रखिए। मांग के अनुसार वस्तुएं देकर उनके मूल्य के वहाने जनता को लूटने का प्रयास न कीजिए। जनता तभी सन्तुष्ट होती है जब वह समझती है कि उसको उसके पैसे से अधिक मूल्यवान् वस्तु मिली है अथवा मूल्य के अनुसार ठीक वस्तु मिली है। इसीलिए थोडा त्याग कीजिए। दूसरोंको जितनी छूट आप देंगे, उतना ही लाभ आपको मिलेगा। यदि लोगों से आप कम से कम लाभ लेंगे तो उनका पैसा बचेगा और वह पैसा प्रकारान्तर से फिर आप ही के पास पहुंचेगा। एक बार सन्तुष्ट होकर वे आपके स्थायी ग्राहक बन जाएंगे। थोड़े लाभ के साथ अधिक बिक्री कैसे हो सकती है, इसीको ध्यान में रखिए। स्थायी लाभ के लिए क्षणिक लोभ का त्याग करना अत्यावश्यक है।

सब वस्तुओं मे उपयोगिता—किसी भी वस्तु को उपयोगी बनाया जा सकता है। यदि आप लोगों की सामयिक आवश्यकताओ और रुचियों को यथासमय ही भांपकर उनके अनुकूल व्यापार करे तो किसी भी वस्तु का उपयोग कर सकते है। गत युद्ध में जब वस्तु-संकट था तो चतुर लोगों ने छोटी-छोटी वस्तुओं को भी उपयोगी बनाकर काफी रुपये कमाए थे। जॉन-ट्रैल नाम के व्यक्ति ने युद्ध छिड़ते ही हजारों रुपये के पुराने कागज खरीद लिए थे, क्योंकि उसने समझ लिया था कि शीघ्र ही कागज न मिलने से पुड़ियों और कागजी थैलियों के लिए उनकी आवश्यकता होगी। परिणामतः युद्ध में उसने उन्ही अखबारी कागजों से लाखों रुपये कमाए। इसी तरह आलपिन की कमी को देखकर कुछ लोगों ने बबूल के कांटों का व्यवसाय कर लिया था। ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं। उक्त जॉन-ट्रैल का मत है कि प्रत्येक पदार्थ से रुपया निकल सकता है, यदि आपको यह ज्ञात हो कि किसको उसकी आवश्यकता है।[1]

---

1 Everything is worth money if you know who wants it —John Traille

व्यापारी अवसर का उपयोग इसी प्रकार करता है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि जो आगा-पीछा करता है वह चूक जाता है[1] : विचार दृढ़ करके जो भी 'हथियार' मिले उसको लेकर मैदान मे कूद पड़ना चाहिए।

प्रबन्ध—प्रबन्ध के सम्बन्ध में ऊपर भी बहुत कुछ कहा जा चुका है। कार्यालय के भीतरी प्रबन्ध के सम्बन्ध में कुछ और बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि प्रत्येक व्यापार का एक निश्चित कार्यक्रम होता है, एक सुसगठित कार्य-प्रणाली होती है। उसमें अस्तव्यस्तता होने से एकसूत्रता नही होती। सघ-शक्ति की दृढ़ता से ही सदा सफलता होती है। बडे व्यापार को विभागों मे बांटकर योग्य व्यक्तियों को उत्तरदायित्व देना चाहिए और उनपर विश्वास भी करना चाहिए। कार्यकुशल उपायज्ञ ही परिश्रमी लोगो से काम ले सकते है और प्रबन्धक की योग्यता इसीमें मानी जाती है कि वह तीन आदमियों से पूरे तीन आदमियों का काम ले सके।

कर्मचारियो के साथ सद्व्यवहार रखने से उनका पूर्ण सहयोग मिल सकता है। उनको झूठी आशा में न रखकर योग्यता और परिश्रम के अनुसार सम्मानपूर्वक वेतन देना चाहिए। उनपर यह न प्रकट होने देना चाहिए कि उनके साथ आप कोई मेहरवानी कर रहे है। वेतन मे अनावश्यक काट-कपट न करके यथासम्भव पुरस्कार देकर सबको उत्साहित करना चाहिए। छोटे व्यापार में अधिक विभाजन न करना ही ठीक होता है। प्रत्येक दशा में कर्मचारियो में यह भाव भरना चाहिए कि वह उनका अपना काम है और यदि उनके द्वारा प्रस्तुत की हुई वस्तुओ का अच्छा आदर होगा तो लाभ में उनको भी हिस्सा मिलेगा। जहा पैसे के लिए ही सब एकत्रित होते है, वहां पैसे से ही सब सन्तुष्ट हो सकते है। छोटे से छोटे व्यक्ति को उपयुक्त कार्य में लगाकर और उसको सन्तुष्ट वनाकर उससे लाभ लिया जा सकता है। व्यापार उसी प्रकार सहयोग से व्यवस्थित होता है जैसे दोनो हाथों की उगलियो से गाठ बधती है।

1 He who hesitates is lost

कम से कम लागत से अधिक वस्तु निर्माण करना और अपव्यय को रोकना, यह भी प्रबन्ध-कुशलता का प्रधान अग है। सभी वस्तुओ का कही उपयोग करके उनकी व्यर्थता को बचाया जा सकता है।

प्रवन्ध ही के अन्तर्गत हिसाव-किताब और पत्र-व्यवहार को ले सकते है। आपका हिसाब-किताब ही आपके व्यापार का दर्पण है, इसको न भूलिए। उसका सुव्यवस्थित रहना और ठीक रहना नितान्त आवश्यक है। पत्र-व्यवहार तो व्यापार की जान है। पत्रों में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे स्पष्ट, सरल और यथार्थता से पूर्ण हों। व्यापार में भावुकता का स्थान कहीं भी नही है; चाहे पत्र-व्यवहार हो या बातचीत का प्रसंग हो, इस बात का ध्यान रखिए कि कम शब्द और अधिक काम—यही व्यापारिक क्षेत्र का सर्वमान्य सिद्धान्त है। व्यापार में उन्ही विचारों का मान होता है जो तर्कसम्मत और सार्थक हों।

मुनि की तरह ध्यान लगाइए—यदि आप व्यापार खोलकर बैठे हुए है तो दूरदर्शी बनिए, तत्काल लाभ की आशा न कीजिए; मुनि की तरह आशा-विश्वास के साथ धन की प्रतीक्षा कीजिए, साधना कीजिए। छाती कड़ी करके बैठिए, बड़े-बड़े आघात पड सकते है। जो भी बड़े व्यापारी इस समय है वे यों ही नही बाजार में खड़े है। भवसागर की बड़ी-बड़ी लहरे उनसे रोज टकराती है, परन्तु वे अपने आसन से डिगते नही। जो जितना बड़ा होता है उसको समय के उतने ही प्रबल धक्के लगते हैं। निरन्तर उद्योग से ही पैसे की धारा अखण्ड बनती है और वही व्यवसाय का प्रयोजन है। यदि आप एक बार भी परिस्थितियों से हार मानकर बैठ गए तो वे बड़ी निर्दयता से सपरिवार आपके ऊपर हमला करेंगी क्योंकि उनकी-आपकी शत्रुता तो प्रतिदिन चलती है।

राष्ट्र-सम्पत्ति की वृद्धि कीजिए—व्यापार से राष्ट्र-सम्पत्ति की वृद्धि कीजिए—व्यापार द्वारा जो सबसे बड़ा सार्वजनिक कार्य होता है वह यह है कि उससे देश-सेवा उच्चस्तर पर हो सकती है। इस बात को ध्यान में रखिए कि वस्तुओ के बदले बाहर से जो रुपया देश में पहुंचता है, उसीसे राष्ट्रीय धन की वृद्धि होती है। अतएव ऐसी वस्तुएं तैयार कीजिए जो विदेशों में बिक सके। साथ ही, ऐसी वस्तुएं तैयार

कीजिए जिनकी यहां मांग हो और जो विदेशों से यहां आती हों। इस तरह राष्ट्र का धन सुरक्षित रहेगा।

2. यदि आप अधिकारी है

यदि आप किसी व्यापारिक सस्था अथवा किसी सरकारी पद के अधिकारी है तो इन बातो को ध्यान में रखिए।

नेतृत्व कीजिए—अधिकारी में एक नेता के सभी गुण होने चाहिए। आतकवल से नही वल्कि अपनी योग्यता, अपने साहस और अपनी कार्य-कुशलता से लोगो को प्रभावित करके वशीभूत कीजिए, उनकी सहानुभूति प्राप्त कीजिए। विचारपूर्वक एक योजना वनाकर स्वयं उसके अनुसार कार्य करने की जिसमें क्षमता होती है वही दूसरो का नायकत्व कर सकता है। अतएव स्थिर मति से एक लक्ष्य वनाइए और दृढतापूर्वक उसी ओर चलिए। लोग उसके पीछे चलते है जिसके सम्बन्ध में वे यह जानते है कि वह एक निश्चित दिशा में जा रहा है और उस दिशा में जाना मगलमय है। पहले सवको अपना विचारानुगामी वनाइए, इसके वाद वे स्वत. आपके पदानुगामी होंगे। इसी प्रकार उनका सहयोग प्राप्त होगा। अनुभवशून्यता और शक्तिहीनता का परिचय न दीजिए। हलकेपन और आत्महीनता का परिचय न दीजिए।

निष्पक्ष और विश्वासपात्र वनिए—आपके प्रति आपके आश्रितगण अपना विश्वास तभी दिखलाएगे, जव कि आप पक्षपात-रहित होंगे, न्याय मे कठोर और दृढ होंगे तथा सहज स्वभाव से सच्चे होंगे। लोगों पर आपकी न्यायपरायणता, कर्तव्यनिष्ठा और बुद्धिमत्ता का प्रभाव पड़ना चाहिए। कुर्सी पर वैठ जाने से ही आप सवके हृदय-सिहासन पर नही वैठ सकते।

गम्भीर, शान्त और रहस्यमय वनिए—काम में, प्रवन्ध मे और कर्मचारियों के साथ व्यवहार मे यथासम्भव गम्भीर और अविचल वनिए। मौन रहने से अधिकार-वल वढता है। एक फ्रेच विचारक (आन्द्रे मौरिस) ने अपने एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ[1] मे लिखा है कि अधिकारी को इतना गम्भीर रहना चाहिए कि एक हद तक उसके आश्रितो को

1. The art of living

उनका व्यक्तित्व रहस्यमय प्रतीत हो। जब तक घनिष्ठता नहीं होती तब तक दूरवाला व्यक्ति उच्च पदाधिकारियों को विलक्षण, अलौकिक समझता है और उनकी सत्ता को स्वीकार करता है। निकट होने पर वह 'घर की मुर्गी दाल वराबर' की उक्ति चरितार्थ करता है। 'अति परिचय ते होत है अरुचि अनादर भाय।' (वृन्द)

गम्भीर होने का यही अर्थ नही कि अधिकारी चुपचाप गौतम बुद्ध की मूर्ति वना रहे। उसका अर्थ यह है वह उच्छृङ्खल न हो, कान का कच्चा न हो, वाचाल न हो, रसिया न हो और भावुक भी न हो। जो व्यक्ति चंचल स्वभाव का होता है और क्षण-क्षण पर प्रसन्न-अप्रसन्न होता रहता है, उसकी प्रसन्नता को भी लोग भयकर मानते हैं :

क्वचिद्रुष्टः क्वचित्तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयकरः ॥

स्वभाव और वाणी से सरल रहिए—कर्तव्य-पालन ही मे कठोर वनिए; स्वभाव और बातचीत से अपनी उद्दण्डता न प्रकट कीजिए। वेदकालीन ऋषि-मुनि भी भगवान् से यही प्रार्थना करते थे कि कठोर वचनवाला व्यक्ति हमारा प्रभु न हो : 'मा नो दुःशस ईशत' (ऋग्वेद)। अपनी सज्जनता और सहृदयता पर किसीको सन्देह करने का अवसर न दीजिए। दूसरे के गुणों की मुक्तकठ से सराहना कीजिए और अपनी गुण-ग्राहकता को लोगों पर प्रकट कीजिए। लोगों की कठिनाइयों में व्यक्तिगत सहानुभूति प्रदर्शित कीजिए और व्यक्तिगत संकटों में आत्मीयता भी। पद-मद मदिरा से भी अधिक उन्मादक होता है। उन्मत्त होकर अपने सद्भाव, शील को न भूल जाइए। इस बात को याद रखिए कि आपके सहकारी भी मनुष्य हैं, उनके भी हृदय है, उनकी भी विवशताए हैं और व्यक्तिगत रूप से वे आपसे अधिक निर्बल है। उनको धमकी न देकर मनुष्यतापूर्वक उनसे कार्य लीजिए। उजाडने की अपेक्षा लोगों को वसाने का प्रयत्न कीजिए। शोषक न होकर आश्रितों के पोपक-पालक बनिए।

औरो से ऊपर रहिए—व्यक्तित्व में, वेश-भूषा में, काम की

जानकारी में, मर्म समझने में सबके आदर्श बनकर रहिए जिससे लोग आपका लोहा मान सके। व्यक्तित्व का प्रभाव तत्काल पडता है। वेश-भूषा के प्रभाव को इसी बात से समझिए कि एक साधारण व्यक्ति भी पुलिस का पहनावा धारण करते ही प्रभावशाली बन जाता है। जब तक आप काम के विशेषज्ञ न होंगे तब तक दूसरो के काम का निरीक्षण और नियन्त्रण कैसे करेगे ? अधिकारी को अपने विषय का अधिकारी होना चाहिए। उसकी जानकारी में कुछ ऐसी बाते होनी चाहिए जो कि सर्वसाधारण की जानकारी में न हो। उसमें मन्त्र को गुप्त रखने की क्षमता होनी चाहिए। विलक्षणताओं से ही वह सबका आदर्श और पथ-प्रदर्शक बन सकता है! अपने विभाग के समस्त कार्यों का ठीक-ठीक विवरण जानकर और कार्य-प्रणाली को समझकर ही कोई अधिकारी अपने उत्तरदायित्व को सभाल सकता है। समय की पाबन्दी और अनुशासन-सम्बन्धी जिन नियमों का पालन आप दूसरो से कराना चाहते है, उनका पालन सर्वप्रथम स्वय कीजिए, जिससे लोग आपसे शिक्षा ले और आपकी कडाई पर आक्षेप न करे। इस सम्बन्ध में हिटलर के अन्तिम दिनों का, संभवत: अन्तिम वाक्य याद रखिए। जिस समय बर्लिन पर गोले बरस रहे थे और जर्मनी की पराजय निश्चित हो चुकी थी, लोगों ने हिटलर को राय दी कि वह आत्मरक्षा के लिए वहां से चला जाए। हिटलर ने स्वाभिमानपूर्वक उत्तर दिया कि 'यदि मेरी मृत्यु हो जाती है तो उससे जर्मनी का गौरव बढेगा—क्योंकि एक सिपाही होने के नाते मुझे स्वय अपनी अन्त तक बर्लिन की रक्षा करने की आज्ञा का पालन अवश्य करना चाहिए।'[1]

✓*सर्वोपरि साहसी बनिए*—भय से आत्मसम्मान नष्ट हो जाता है, ऐसा नेपोलियन का मत है।[2] एक अन्य किसी नीतिकार का मत है कि साहस द्वारा अपने से अधिक मनुष्यो की सख्या पर भी विजय प्राप्त

---

1 If I die, it is for the honour of Germany It is because as a soldier, I must obey my own command to defend Berlin to the last
—World Digest

2 Fear destroys self-respect

होती है[1] : परिस्थितियों और आलोचनाओं से न घवडाइए। यह तभी सम्भव है जव कि आप अपने कर्तव्य में स्थिर रहें।

कर्तव्य को करते समय आप निश्चय कीजिए कि आप विफल नही हो सकते। यह दृढ निश्चय आपको साहस देगा। साहसी ही बनिए, दुस्साहसी नही। निर्णय करने के वाद रुकिए नही, आत्म-शक्ति लेकर निश्चित मार्ग पर चल निकलिए। जिस क्षेत्र में रहिए, उसमें अपने ढग के एक ही रहिए।

काम करना और लेना जानिए—जब तक आप स्वयं काम करना न जानेंगे, तब तक दूसरों से ठीक काम न ले सकेंगे, और न उनको काम के लिए प्रेरित ही कर सकेंगे। काम लेना एक वडी कला है। उसके कुछ रहस्य ये है :

1. जो जिस कार्य के उपयुक्त हो उसको वही कार्य सौपना चाहिए। इस सम्बन्ध में शुक्राचार्य की यह नीति मान्य है कि कोई ऐसा अक्षर नही है जिसका प्रयोग मन्त्र-रचना में न हो सके, कोई ऐसा वृक्ष नही है जो किसी न किसी व्याधि की औषधि न हो; कोई ऐसा व्यक्ति नही है जो किसी न किसी कार्य के योग्य न हो—सबका सयोजक मिलना कठिन है :

> अमन्त्रमक्षरं नास्ति, नास्ति मूलमकौषधम्।
> अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥

साधारण व्यक्ति से भी कार्य लिया जा सकता है : 'जहां काम आवै सुई, कहा करै तरवारि।' कोई शरीर से दुबला-पतला होकर भी बड़े काम का हो सकता है। शेखसादी ने कहा है कि अरबी घोडा अगर दुवला-पतला हो तो भी गदहों के पूरे अस्तबल से अच्छा है। वास्तव में, किसीको काम देकर, समझकर उसके परिणाम को देखना चाहिए और तत्पश्चात् उसकी योग्यता-अयोग्यता का निर्णय करना चाहिए।

2. इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई वेकार न बैठने पाए। सुकरात ने लिखा है कि केवल वही व्यक्ति बेकार नही है जो वैठा रहता है वल्कि वह भी बेकार माना जाएगा जिसकी योग्यता का पूर्ण

1 Courage overcomes numbers

लाभ नहीं लिया जाता ।[1]

3. यथासम्भव कार्य के सम्बन्ध में लिखित और निश्चित आज्ञा देकर कर्मचारियों के काम पर नियमित नियन्त्रण रखना चाहिए । एक विलायती लेखक ने लिखा है कि मालिक की आंख उसके दोनों हाथों से अधिक काम करती है ।[2] आंख के आगे काम अधिक होता है, इसको सभी मानेंगे । यदि आंख के आगे भी गड़बड़ी होती है और कोई जान-बूझकर नियमोल्लंघन करता है तो उसके अपराध को प्रमाणित करके उसको अवश्य दण्डित कीजिए जिससे दूसरों को शिक्षा मिले । किसीके प्रति मन में क्रोध बनाए रखने की अपेक्षा उसको तत्काल प्रकट कर देना अधिक अच्छा होता है । व्यास ने लिखा है कि पल-भर में जल जाना देर तक सुलगने से ज्यादा अच्छा है :

क्षणार्द्ध ज्वलित श्रेयो न च धूमायित चिरम् । (महाभारत)

4 जान-बूझकर अपने सहयोगियों पर दोषारोपण न करना चाहिए । उनकी साधारण त्रुटियों को देखना ही न चाहिए । एक विदेशी नीतिज्ञ (फुलर) ने लिखा है कि यदि तुम स्वामी हो तो कभी-कभी अन्धे बन जाया करो ।[3]

5. जिनसे आपको काम लेना है उनको यह सच्चा भरोसा दे रखिए कि उनके भविष्य का द्वार खुला है और वे अपनी योग्यता, कार्यपटुता से आगे उन्नति कर सकते हैं । मनुष्य का जीवन सरस तभी बनता है जब उसके पास करने को कोई काम होता है और मन की आशा को टांगने की कोई खूंटी होती है । इस बात को याद रखिए कि 'बांधे बनियां बाजार नहीं लगता ।' सबको उत्साहपूर्वक रखिए ।

6. अपने आश्रितों की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लीजिए । उनके मन में यह भ्रम न होना चाहिए कि मौके पर आप पिछड़ जाएंगे और वे ही किसी त्रुटि के उत्तरदायी होंगे ।

7. अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग बार-बार न कीजिए । यदि

---

1 Not only he is idle, who is doing nothing but he too that might not be employed better —Socyates

2 The eyes of a master will do more work than both his hands

3 If thou art a master be sometimes blind

रोज़ आंधी ही चले तो कुछ दिनों में लोग उसको सहन करने में इतने अभ्यस्त हो जाएंगे कि वे उसको साधारण हवा ही समझने लगेंगे। लोगों को बेहया न बनने दीजिए।

8. युक्तिपूर्वक कहीं-कहीं झुक जाने से भी कार्यकर्ता लोग मोहित हो जाते है: 'सबहि नचावत राम गोसाईं, अपुवा रहत दास की नाईं।' (तुलसी)। जहां किसी महत्कार्य को शीघ्र करना हो वहां उसी तरह झुक जाना चाहिए जैसे सुरसा के आगे हनुमान् झुक गए थे।

9. अधिकारी की प्रसिद्धि से कार्यकर्ता प्रभावित होते है। यदि आप यशस्वी, प्रभावशाली है तो लोग स्वभावत. चेष्टा करेंगे कि वे आपके सुयोग्य सहकारी कहलाने का गौरव प्राप्त करे। इसलिए ऐसी कीर्ति रखिए कि आपके न रहने पर वह दूसरो की नसों में बिजली भर सके।

गुरुत्व ही पतन का कारण होता है—अधिकार ग्रहण करने पर इसको भी याद रखिए कि जो वस्तु भारी होती है वही पृथ्वी पर गिरती है। ऊंची पहाडी पर से लुढ़कने का अधिक डर रहता है। बाल जब बहुत बढ जाते है, तो नाई की कैंची तैयार मिलती है। इसलिए संभलकर सावधानी से चलिए।

3. यदि आप कर्मचारी है

यदि आप कर्मचारी हैं तो उपयुक्त बातों में से आत्मोपयोगी बातों के अतिरिक्त निम्नलिखित बातों को भी ध्यान में रखिए:

1 साधारण पद पर रहते हुए भी अपनी आकांक्षा को प्रबल रखिए और इस बात को ध्यान में रखकर आत्मोत्थान का प्रयत्न करते रहिए कि संसार में योग्यता के अनुसार अधिकार मिलता है; आध सेर के गिलास में सेर-भर दूध नहीं भरा जा सकता। प्रतिदिन उत्साहपूर्वक अपनी योग्यता को बढाइए, वही आपकी मूल सम्पत्ति होगी। कार्य-सम्बन्धी ज्ञान के अतिरिक्त अन्य उपयोगी ज्ञान का सचय भी करते रहिए। एक ही लकीर के फकीर न बने रहिए। बहुज्ञ होना लाभदायक ही होता है। रोज अनुभव का सचय करते रहिए। अपनी स्मरण-शक्ति पर अधिक विश्वास न करके, अपनी नोट-बुक को काम में लाइए।

2. इस लक्ष्य को सामने रखकर अर्थोपार्जन न कीजिए कि किसी तरह शाम को रोटी मिल जाए। दिन की संध्या को नहीं, वल्कि जीवन-सन्ध्या को अपना लक्ष्य वनाइए। यह कहना अनुचित न होगा कि अपना वीमा करा रखिए क्योंकि पता नही कव आपकी जीविका-सन्ध्या या जीवन-सन्ध्या आ ही जाए। कुछ न कुछ वचाइए।

3 जितना आपको वेतन मिलता है, उससे अधिक कार्य करके दिखलाइए। अपने काम को पैसे से कम कीमती न वनने दीजिए। कार्य को सागोपांग पूर्ण कीजिए और प्रतिदिन वैसा ही कीजिए। ऐसा न हो कि कुछ दिन अच्छा काम दिखलाकर और अपने अधिकारियों का विश्वास प्राप्त करके वाद में आप ढीले पड़ जाएं। जव काम ही की कमाई आप खाते हैं तो उसको दूपित या खंडित न कीजिए। अपनी वस्तु को पागल या पशु ही तोडते-फोड़ते हैं। कर्तव्य-पालन में सच्चे रहिए। अपने गुणों को चमकाते रहिए। अंग्रेजी में एक कहावत है कि अपने तारों को चमकने दो।[1] आशा से अधिक आप अपनी सफलता दिखाएंगे, तभी आपके नक्षत्र चमकेगे। इस वात को याद रखिए कि कठिन परिश्रम की उतनी प्रतिष्ठा नही होती जितनी कि सफल परिश्रम की। सफल परिश्रम भी वही मान्य होता है जिसकी सफलता का क्रम न टूटे।

4. अपने को अपरित्याज्य अथवा किसी कार्य के लिए सर्वोपयुक्त न मानिए। ऐसा मानने से अभिमान वढ़ता है और आप धोखे में रहते है। यह मानकर कार्य कीजिए कि आपसे स्पर्द्धा करने वाले और लोग भी है और आपको अभी अधिक उपयुक्त बनना है। कार्य करने में निश्चिन्तता और अनिश्चिन्तता न होनी चाहिए। अपने ऊपर तथा दूसरो के ऊपर आवश्यकता से अधिक विश्वास न कीजिए। प्रतियोगिता के लिए अधिक आत्मवल का सचय करते चलिए।

5. मिट्टी में वीज की तरह अपने काम में आप समाइए। सफल होने का यही प्राकृतिक उपाय है। कुछ दिनों में आप शाखावान् हो जाएगे। स्पष्ट शब्दो में, काम के समय काम की धुन रखिए। अपना सारा ध्यान

1 Let your stars shine.

उसीपर केन्द्रित कीजिए। काम में अपनी व्यक्तिगत बातों को अलग रखिए। दूसरों की व्यक्तिगत चर्चा से भी अधिक बचिए। 'काम से काम' यही सिद्धान्त बनाइए; और सचाई, परिश्रम तथा एकाग्रता को सफलता का मूलमन्त्र जानिए। एक दिन में सफलता न मिलेगी; निरन्तर दैनिक अभ्यास से ही सफलता मिलती है, उन्नति होती है। कठिनाइयों को पीछे ठेलिए, शक्ति का उपयोग एव विज्ञापन कीजिए और काम में रस लीजिए। इसी प्रकार आप पनप सकेंगे।

6 जहां आप काम करते है वहां के नियमों का ठीक-ठीक पालन कीजिए। जिसके नीचे है उसके प्रति कृतज्ञता का भाव रखिए; उसके हानि-लाभ को अपना समझिए; हिसाब-किताब में सच्चे प्रमाणित होइए—आवश्यकता से अधिक काम के सिलसिले में भी खर्च न कीजिए; काम को लटकाइए मत; पेंच न मारिए; पुरस्कार के लोभ से कोई कार्य न कीजिए; मेहरबानी की आशा न कीजिए, क्योंकि काम ही के लिए आप वेतन पाते है; किसीकी पीठ-पीछे निन्दा न कीजिए और विदा होते समय भी सद्भाव के साथ विदा लीजिए जिससे आगे का सम्बन्ध तो बना रहे। कृतघ्नता की प्रवृत्ति आत्मनाशी होती है।

7. किसी काम में क्रिया-द्वेषी, हठी, दुराग्रही न बनिए और अपनी भूलों को तत्काल स्वीकार करके पूरी जिम्मेदारी लेने का साहस रखिए। अनुमान द्वारा नही, परीक्षा द्वारा यथार्थता को समझिए। यदि कोई कार्य आपसे असाध्य हो तो उसके करने का झूठा आश्वासन न दीजिए।

8. जो भी कार्य आपके जिम्मे हो उसमें अपनी प्रतिभा की झलक दिखाइए; शीघ्रातिशीघ्र उत्तम ढंग से पूर्ण करके बुद्धिमत्तापूर्वक अपनी सेवाओं को प्रकट करते रहिए। कार्य की उपयोगिता को समझिए, योजना बनाकर उसको ठीक रीति से कीजिए। बीच-बीच में मुरझाइए न; हरे-भरे बने रहिए, नही तो फलिएगा कैसे ?

9. व्यवहार में सावधान रहिए। अपने से बड़ों को अग्निवत् मानिए। आवश्यकता पड़ने पर ही उनके निकट जाइए; अन्यथा दूर ही रहिए। सहयोगियों के दृष्टिकोण का सम्मान कीजिए। उनसे पूछते रहिए, सम्मति लेते रहिए। यथासम्भव सर्वोपयोगी बनिए; प्रत्येक

परिस्थिति में शिष्ट, सभ्य बने रहिए; ठंडा लोहा गर्म लोहे को काट देता है। व्यवहार से अपने को शान्तचित्त, सद्गुणी और चतुर ही प्रकट कीजिए।

10. आवश्यकता से अधिक परिश्रमी और कार्य मे सतर्क न बनिए। एक से स्वास्थ्य की हानि होती है, दूसरों से स्वार्थ की, क्योंकि इनसे कार्य भारस्वरूप हो जाता है। स्वास्थ्य और स्वार्थ को नष्ट करके रुपया बटोरने का अर्थ है अपना घर फूंककर वैरागी होने के लिए राख बटोरना।

11. जहा रहिए वहां पेड की तरह अपनी जड़े फैलाइए—अर्थात् नये-नये मित्र बनाइए और अपने पूर्व-परिचितों को भी अपने साथ काम में लगाने का प्रयत्न कीजिए। विपत्ति की आंधी में वही जडे आपको सभालेगी। धक्का खाकर उखड़ न जाइए। फिर पूर्ववत् खड़े हो जाइए। यदि आप भाग्यवादी है तो महापडित व्यास के इस कथन को याद रखिए कि जैसे अयाचित दुःख आते रहते हैं, वैसे ही सुख आएगा, फिर दुःख से घबराना और सुख के लिए व्याकुल होना केवल अपनी दीनता दिखलाना है :

अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम्।
सुखानि च तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ।। (महाभारत)

12. कार्य-सम्बन्धी ज्ञान के विशेषज्ञ होने के साथ अपनी लोकप्रियता बढाने के लिए किसी मनोरंजक विषय में प्रवेश रखिए, जिससे आप काम के बाद लोगों को अपने मे आकर्षित कर सके।

13. उभयस्वामिक न बनिए अर्थात् एकसाथ ही दो समान अधिकारियों का आधिपत्य स्वीकार न कीजिए। आपके ऊपर जो अधिकारी है उसकी उपेक्षा न कीजिए। यदि सर्वप्रधान अधिकारी आपपर विशेष अनुग्रह रखता हो तो भी अपने ऊपर के अधिकारी का पूर्ण सम्मान कीजिए और किसी कार्य से ऐसा न प्रकट होने दीजिए कि आप सर्वप्रधान से सीधा सम्बन्ध किए हैं या करना चाहते हैं। बीच वाले अधिकारी की उपेक्षा बड़ी घातक होती है। इस सम्बन्ध में हनुमान् का आदर्श मानिए। वे राम के विशेष कृपापात्र थे, फिर भी अपने स्वामी सुग्रीव को नही

भूलते थे। लका में अपना पराक्रम दिखलाकर वे अभिमान-मद से अपनी मर्यादा को नही भूले। उन्होंने शत्रु के राज्य में सिहनाद करके राम की जय वोलते हुए कहा—रामचन्द्र से रक्षित राजा सुग्रीव की जय हो; महाशक्तिशाली राम की जय हो; महावली लक्ष्मण की जय हो :

जयत्यतिवलो रामो लक्ष्मणश्च महावल:।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालित:॥ (रामायण)

14 यदि किसी काम में अपना भविष्य उज्ज्वल नही प्रतीत होता है तो आप विवश होकर उसीको न करते रहिए, वल्कि अपने लिए उपयुक्त अवसर और स्थान ढूढते रहिए। परन्तु कुछ दिन परीक्षा और प्रतीक्षा करके तव स्थान परिवर्तन कीजिए। एक अनुभवी ने कहा है कि जो चक्कर नही काटता, वह दूर तक दौड़ता है।[1] इसका दूसरा अर्थ भी हो सकता है : जो इधर-उधर नही देखता चलता उसको लम्बी दौड लगानी पड़ती है। जो अर्थ आपकी परिस्थिति के अनुकूल पड़े उसीको स्वीकार कीजिए।

4. यदि आप कार्यार्थी हैं

यदि आप वेकार हैं तो पहली आवश्यकता इस बात की है कि आप उदासीन न वनिए। उदासीनों का युग बहुत पहले ही समाप्त हो चुका है। यह आशावादियों का युग है। हतोत्साह होते ही आदमी की चेतना-शक्ति हत हो जाती है। जब मनुष्य अपने भविष्य को अंधकारमय देखता है, तभी उसके मन में आत्मघात की भावना अंकुरित होती है। वेकारी की दशा में ही आत्मविश्वास और आत्मशक्ति की सर्वाधिक आवश्यकता होती है, अन्यथा मनुष्य की कमर टूट जाती है, वह डगमगाने लगता है और अपने व्यक्तित्व को सस्ते मूल्य पर वेच देना चाहता है। वेकारी में भय वढ़ जाता है।[2]

1. चित्त के भय और निराशा को निर्मूल कीजिए और सैकड़ों-हजारों उदाहरणों से सिद्ध इस शास्त्र-वाक्य में विश्वास कीजिए कि अध्यवसाय से कुछ भी असाध्य नही है : 'नाऽसाध्य तपसा किंचित्'

---

1 He runs far who never turns
2 Fear increases in inactivity

(महाभारत)। इस बात में विश्वास कीजिए कि सांसारिक जीवन में यह प्रमाणित हो चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वय ही अपनी रुपया बनाने की टकसाल है।[1] यदि आप यह सोचकर निराश हों कि आपकी आयु अधिक है, अतएव मौके आपके हाथ से बाहर निकल गए है तो यह स्मरण रखिए कि ससार में चौसठ प्रतिशत लोगो ने पैंतालीस से पैंसठ वर्ष की आयु में ही बड़ी-बड़ी सफलताएं प्राप्त की हैं। जो उत्सुक हों वे अमरीका से प्रकाशित 'साइस डाइजेस्ट' नामक बहु-प्रसिद्ध पत्रिका के नवम्बर, 1946 के अंक में इसका विस्तृत विवरण देखे।

2 स्वावलम्बी बनने का संकल्प कीजिए और आशा-उत्साह के साथ कीजिए। कमजोर बैटरीवाली मोटर की तरह न बनिए कि जब स्त्री-बच्चे पीछे से आपको ठेले तभी आप रवाना हो। स्वय चेतिए। गृहमोही बनकर न बैठिए। ससार की बड़ी सम्पत्तिया, जैसे प्रकाश, हवा, रुपया, आपकी श्रीमती, बाहर ही से आती है, वे घर में नही पैदा होती! अतएव कर्मक्षेत्र में पधारने का निश्चय, दृढ निश्चय कीजिए। सजीव होते हुए स्थिर होना अप्राकृतिक कर्म है। पक्का निर्णय कीजिए कि आप समर्थ है, कुछ करके ही रहेगे। अपने सामने किसी उद्योगी महा-पुरुप का आदर्श रखिए और उसके जीवन-वृत्त से प्रेरणा लीजिए।

3 अपनी स्थिति को देखते हुए भविष्य की एक योजना बनाइए। इस बात को ध्यान में रखिए कि आपके पास क्या है या आप स्वय क्या है—इन्हीमें से एक आधार पर आपका अर्थागम निर्भर करेगा। यदि आपके पास धन नही है तो गुणों का सचय और विकास कीजिए। चरित्र-स्वभाव को सुन्दर बनाइए क्योंकि यही निर्धन के धन है। दूसरों को प्रभावित और अपने को ठीक-ठीक व्यक्त करने की कला का अभ्यास कीजिए। योग्यता प्राप्त कीजिए। जिस कला में आपकी विशेष रुचि हो उसकी विशेष योग्यता प्राप्त कीजिए। अपने को उसीका विशेषज्ञ बनाइए। कोई भी उपयोगी ज्ञान या कौशल कर्मजीवी का मूल द्रव्य होता है। काव्यकला नही, व्यवसायात्मक ज्ञान और व्यावहारिक कला को अपनाइए। किसी पद को लक्ष्य बनाकर अपने को उसके सर्वथा

---

1 Every man is his own mint

योग्य वनाइए और ऐसे ही काम को चुनिए जो श्रमसाध्य हो। सार-रूप में, इस विषय के एक सुप्रसिद्ध लेखक के शब्दो में जिस नवयुवक के पास धन नहीं है, उसका पहला व्यवसाय, धर्म या कर्तव्य यह है कि वह स्वयं अपने व्यक्तित्व को अधिक से अधिक मूल्यवान् बनाए।

यदि आप व्यापार करना चाहते है तो आत्म-सबल को मूलधन, बुद्धि को प्रबन्ध और हाथ-पैर को मजदूर बनाकर अपने कार्यालय की स्थापना करने की कल्पना कीजिए।

4. अधिक से अधिक परिचय बढाइए : वह आगे कार्य देता है। अपने से बड़ों की संगति कीजिए। सभा-सोसाइटियों में भाग लीजिए, अवैतनिक रूप से दूसरों की सेवा करने में कभी न चूकिए, भाषण दीजिए, लेख लिखिए अथवा लोकप्रिय बनने का कोई भी गुण प्रकट कीजिए। राह पर चलते रहिए, कोई न कोई रीझनेवाला मिल जाएगा।

5. काम के लिए निकलिए। घर बैठे काम नही आ जाएगा। विदुला ने अपने आलसी पुत्र सजय को जो उपदेश दिया था उसको ध्यान में रखिए। उसने कहा था कि जिन कार्यो का आरम्भ ही नही किया जाता, वे कभी सिद्ध नही हो सकते : 'अथ ये नैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते।' (महाभारत)

काम के लिए निकलने में संकोच न कीजिए : 'जव नाचन निकसी बावरी तव घूघट कैसा ?' (कवीर)। हां, भिक्षुक बनकर न निकलिए। अपने को किसीका दासानुदास न मानिए। नौकरी के लिए जाने में भिक्षाटन की प्रवृत्ति रखना मूर्खता, कायरता है। अपने गुणों को उचित मूल्य पर विक्रय करने का भाव लेकर चलिए। यथासम्भव नियुक्त करनेवाले अधिकारियों का साक्षात्कार कीजिए। प्रार्थना-पत्र पर ही पूरा भरोसा न कीजिए। उससे आपकी योग्यता और आपके व्यक्तित्व का पूरा परिचय नही मिलता। इसीलिए प्रत्येक नियोजक प्रार्थी का साक्षात् दर्शन करना चाहता है। सामने जाने में कांपिए मत। यह न समझिए कि आप उससे ऋण या दान लेने गए है। यही समझिए कि आप अपनी योग्यता बेचने जाते है। सप्रभाव मिलिए। आत्मविश्वास-

हीन होने पर आप अपना बुरा प्रदर्शन करेंगे।

अपने साथ और अपने प्रार्थना-पत्र के साथ ो-चार प्रतिष्ठित व्यक्तियों के प्रमाण-पत्र रखिए। वही आपके मामले में आपके वकील होंगे। आत्मप्रशसा से अधिकारी प्रभावित न होगा, ोकि वह आपसे भी चतुर होता है, तभी तो वह अधिकारी है और आप कार। प्रार्थना-पत्र में स्वस्ति-वचन और भावुकता की इस तरह की ाते न लिखिए कि यदि आप हमे शरण में ले लेगे तो हम जन्म-जन्मान्त- में परमपिता परमात्मा से आपकी दीर्घायु के लिए प्रार्थना करेंगे। समें अपनी योग्यता और अनुभव का ही उल्लेख कीजिए और व्यावहारिक भाषा का प्रयोग कीजिए—अलकृत का नही।

6. कही विफल होने पर मिट्टी के ढेले की तरह गिर न पड़िए। गेद की तरह उछलते रहिए। भाग्य का द्वार बार-बार खटखटाते रहि- यह सोता भी होगा तो झुंझलाकर ही सही, एक बार द्वार खोल देग। द्वार खुलते ही एक बार साधिकार भीतर घुस जाइए। गांधीजी लिखा है कि कैसा भी छोटा मौका मिले, उसको हाथ से जाने न दे चाहिए।[1] डिजरायली ने लिखा है कि निरन्तर उद्योग करना कृतार्थता का मन्त्र है।[2]

अतएव पख फैलाकर उड़ते रहिए। नीति-वचन है कि बैठा हु- गरुड़ भी बैठा रह जाता है, एक पद भी आगे नही बढ़ता; और चल- वाला चीटा भी कुछ समय में कई योजन दूर पहुंच जाता है। योग्य- लेकर बैठे न रहिए। उसमें मोरचा लग जाएगा। इसको सत्य मानि- कि अधिकांश लोग कर्म-दोष के कारण नही बल्कि अपने अकर्म-दोष कारण दुःख भोगते है। महाभारत में कथित विदुला के इस उपदेश क- कंठस्थ रखिए: "तुम सेवकों से हीन, अन्य के भोजन से पलनेवाले दी- पुरुषार्थहीन पुरुषों की वृत्ति का अनुवर्तन न करो। जैसे पके फल वृक्षों से पक्षीगण जीव धारण करते है, वैसे ही जिसके आश्रय में अने- प्राणी रहे, उसीका जीवन सफल है।"

1. No opportunity should be missed however trifling
2 The secret of success is constancy to purpose

5
बातचीत

वाणी-बल की महत्ता

किष्किन्धा के निकट वाक्-प्रज्ञ हनुमान् की बातों से मुग्ध होकर राम ने लक्ष्मण से यह कहा था : 'शब्दप्रपचरहित, पद और वर्णो के सन्देह-रहित, न बहुत शीघ्र, न बहुत विलम्बयुक्त, हृदयस्थ और कंठ-गत (मध्यम) वाक्य, मध्यम स्वर मे वर्तमान है। संस्कारयुक्त, क्रम-युक्त, शीघ्रतारहित, विलम्बरहित, कल्याणी, मनोहर वाणी का उच्चारण करता है। · हृदय (अर्थात् सरस), कठ (अर्थात् ठीक से ध्वनित) और सिर (अर्थात् विचारपूर्ण) में स्थित इस चित्रवाणी से किसका चित्त सतुष्ट नही हो सकता ?—खड्गधारी वैरी का भी हो सकता है !'

हनुमान् के वाग्वैभव से राम विशेष प्रभावित हुए थे और हम जानते हैं कि उसीके कारण राम-सुग्रीव की मित्रता स्थापित और दृढ हुई। सुग्रीव सौ चिट्ठियां लिखकर भी राम की वह मित्रता प्राप्त नही कर सकते थे जो उन्होने अपने वाक्पटु मत्री को भेजकर सहज में प्राप्त कर ली। इस घटना के बाद भी हम रामायण मे अनेक प्रसग ऐसे देखते है जहां हनुमान् की रणवीरता से ही नही, उनकी वाक्वीरता से अनेक कार्य सफल हुए है। महाबली रावण की लंका में जाकर, वहां बन्दी होकर भी अकेले हनुमान् अपने वाणी-बल के प्रभाव से बचकर और प्रयोजन को सिद्ध करके वापस आ सके थे। बन्दी बनाए जाने पर उन्होंने केवल अपनी वाणी-शक्ति का आश्रय लिया था। उसके द्वारा रावण के राजसम्मान पर आघात किए बिना उन्होंने आत्मसम्मान की रक्षा की थी। रावण ने जब उनसे उत्पात करने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि मै तो राज-दर्शन का इच्छुक था; साधारण अवस्था में आप तक पहुंचना कठिन था, इसलिए मैंने वन को विनष्ट किया; तदु-परान्त आपके युद्धाकांक्षी वीरगण मुझसे युद्ध के लिए आए और आत्म-

रक्षा के लिए मुझे लडना पडा। इस प्रकार मै आपके दुर्लभ दर्शनों को प्राप्त कर सका। इसके बाद हनुमान् ने पुनः विनम्र होकर कहा, "मैं राज-कार्य से यहां आया हूं। आपके भाई वानरराज (सुग्रीव) ने आपका कुशल पूछा है और आपके हित के लिए एक सन्देश कहलाया है···।" इस प्रकार अपनी शिष्ट और समयोचित वाणी से हनुमान् ने रावण को विशेप प्रभावित किया। सीता के समीप भी उन्होने बुद्धिमत्ता से बाते करके उनके विश्वास और धैर्य को दृढ़ किया था। रावण की सबलता और राम की निस्सहायावस्था पर विचार करके जब सीता निराश थी तो हनुमान् ने उनको प्रबोधन देते हुए कहा, "हे देवी, वानराधिपति सुग्रीव करोडो वानरों सहित शीघ्र यहा आएगे। वे सब वानर मुझसे अधिक या मेरे समान है, मुझसे कम कोई भी नही है। जब मै ही यहां चला आया तो उनका क्या कहना; काम करने के लिए छोटे ही भेजे जाते है, वडे नही: 'नहि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते, प्रेष्यन्ते हीतरे जना.।' इस प्रकार अपनी वाक्पटुता से रामदूत ने अपने दोनो प्रयोजनो को सिद्ध किया—एक ओर तो उन्होने राक्षसराज की नगरी में प्रवेश करके राम और सुग्रीव के बल-वैभव का प्रदर्शन किया तथा प्रदर्शन के बाद भी अपने जीवन को सुरक्षित रखा और दूसरी ओर सीता का पता लगाकर उन्होने उनसे राम का सन्देश ही नही कहा, बल्कि उनके सशय को मिटाकर उनके आत्मबल को भी सुदृढ़ किया। इससे राम का कार्य ही सफल नही हुआ, हनुमान् की प्रतिष्ठा भी शतगुणित हो गई। वे सफल होकर जब लौटे तो प्रतीक्षातुर वानरो ने उनको आखों पर उठा लिया: 'हनुमन्त महावेग वहन्त इव दृष्टिभि.।' सबकी दृष्टि में हनुमान् का महत्त्व बढ़ गया।

वाणी-बल का प्रभाव बतलाने के लिए हमने ऊपर हनुमान् का उदाहरण दिया है। वर्तमानकाल मे भी हम देखते है कि राजनीति और व्यापार आदि की बडी-वडी समस्याए बातो द्वारा सुलझाई जाती है। वड़ी-बडी उलझने जो लिखा-पढी और युद्ध से भी नही सुलझती वे चतुर वाक्-विशारदो के मिलने-जुलने से तय हो जाती है। मनुष्य का सार्वजनिक जीवन बातो ही से चलता है। हम अपने दैनिक जीवन में

प्रत्यक्ष देख सकते हैं कि बातों से लोग कितने प्रभावित होते है। हास्य-विनोद के दो-चार वाक्य सुनकर लोग हसने लगते है, क्रोध-तिरस्कार के वचन सुनकर उबलने लगते है और आदर-सत्कार के शब्दों को सुन-कर पिघलने लगते है। उन बातों से न तो किसीके शरीर पर चोट लगती है, न किसीको कुछ आर्थिक हानि-लाभ होता है ; फिर भी उनका प्रभाव मनुष्य पर बहुत पड़ता है, यह स्पष्ट है। बातों द्वारा वशीकरण और उच्चाटन दोनो सिद्ध होते देखे जाते हैं। इसलिए शब्दों की मन्त्र-शक्ति को कौन न स्वीकार करेगा ? सुन्दर शब्दावली के प्रयोग से लोग एक-दूसरे के प्रेमपाश में बध जाते है। अच्छे वक्ता श्रोता को मत्रमुग्ध कर लेते है। इसके विपरीत कर्कश बातों से बडे-बड़े कलह होते हैं, लोग बिना मारे ही मर जाते हैं और सुकुमार हृदय के व्यक्ति कभी-कभी आत्महत्या तक कर लेते है। मनुष्य पर बातों का उतना ही असर पडता है जितना पशु पर डडे का। इसका कारण यह है कि मनुष्य एक भावना-प्रधान जीव होता है। बाते उसके अन्तस्तल के स्वभाव एव ज्ञान को वहन करती है और श्रोता के भावना-क्षेत्र में जाकर पैठ जाती है। वायु द्वारा जिस प्रकार किसी पुष्प का सौरभ एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुचता है, उसी प्रकार वाणी द्वारा एक की भावना दूसरे के अन्तस्तल में सुगमता से पहुंच जाती है। मूलतः भावनामय होने के कारण मनुष्य वाणी द्वारा सचालित भावों की चोट से आन्दोलित हो जाता है। यदि ऐसा न होता तो बातों की साधारण हवा से न तो कोई झूमने लगता और न कोई उद्विग्न होता। विचारवान् एव भावुक होने के कारण मनुष्य बातों के मर्म को ग्रहण करके अपने मर्मस्थल में प्रभावित होता हैं। मनुष्यों ही में जो मूढ और हतबुद्धि होते है, उनपर वाणी का कोई प्रभाव नही पडता।

मनुष्य के भीतर व्यक्तित्व की पहचान उसकी वाणी से ही होती है। ज्ञान, स्वभाव, चित्त-दशा, विचारधारा सभीका पता वाणी से लगता है। जिस प्रकार घड़े को बजाकर देखा जाता है कि वह टूटा तो नही है, उसी प्रकार बातचीत से देखा जाता है कि मनुष्य का मस्तिष्क परिपक्व है या नही। वाणी से मनुष्य के अन्तस्तल की खिड़की खुल

जाती है, उसके चरित्र की नाप मिल जाती है। लिखित भाषा उतनी प्रभावशाली नही होती। इसका कारण यह है कि लिखित भाषा के साथ स्वर नही सयुक्त रहता। स्वर में स्वय एक शक्ति होती है। वह उन वायु-तरगो को आन्दोलित करता है जो हमारे शरीर को ही नही अन्तस्तल को भी स्पर्श करती है। उदाहरण के लिए वीणा या किसी वाद्य-यन्त्र के स्वर को लीजिए। उस स्वर में कोई अर्थ नही होता फिर भी हृदय पर उसका प्रभाव पड़ता है। स्वर के साथ जब सार्थक वाणी का संयोग होता है तो भाव, जो वाणी के मूल तत्त्व होते है, विशेष उद्दीप्त हो जाते हैं। स्वर-सयुक्त होकर वाणी वायु-तरगो को आन्दोलित करती हुई अपने स्वाभाविक मार्ग—कान—से होकर श्रोता के अन्तस्तल में जाती है, उसकी छाप गहरी पड़ती है। शब्दो में जो मत्र-शक्ति आती है, वह शब्द-रचना के साथ स्वर-सयोग से आती है। इस वैज्ञानिक सत्य को समझकर ही ऋषिगण स्तोत्रो को उच्च स्वर से उच्चारित करने का विधान बता गए है। ध्वनि से सोता हुआ मनुष्य उठकर चैतन्य हो जाता है, फिर उसके भाव क्यो न जगेगे? लिखित भाषा इस सहयोगी से वचित रहती है। वह अस्वाभाविक रीति से ज्ञान-क्षेत्र मे प्रवेश करती है और उसको ग्रहण करने के पूर्व अपने भावों को उत्तेजित करना पडता है। स्वरयुक्त भाषा की तरह वह अपने ही आघात से श्रोता के भावना-भवन को नही खोल सकती। इसलिए हम देखते है कि चिट्ठियो का उतना प्रभाव नही पड़ता जितना मिलकर बाते करने का। चिट्ठियो या लेखो के शब्द उतनी चोट नही कर पाते जितना भाषण, वार्तालाप के शब्द। इस रहस्य को दूसरे ढग से आप यों समझिए—कोई स्त्री देखने में या चित्र मे परम रूपवती हो सकती है, उसके रूप की ओर आप आकर्षित हो सकते है, परन्तु मिलने पर यदि कर्कशा निकली तो अपनी निराशा और वेदना को आप ही समझ सकते है। इसके विपरीत यदि कोई असुन्दर स्त्री मधुरभाषिणी हो तो सम्भवतः आप उसके रूप-रग को उतना महत्त्व न देगे। सुन्दर चित्र या आकृति-मात्र से जिस प्रकार व्यक्ति-विशेष की सरलता और कुटिलता का पता नही चलता, उसी प्रकार लिखित वाणी से भी भाव के उत्कर्ष

का पूरा पता तब तक नही चलता जब तक पाठक मन में स्वयं उसके अनुसार अभिनय न करे। अतः हमे मानना चाहिए कि प्राण की शुद्ध सन्तति अर्थात् भाषा का जन्म प्राण-पत्नी के गर्भ से ही होता है। (सस्कृत में स्वर या वाणी को प्राण-पत्नी कहते है) स्वर से ही हमारे भाव सजीव बनते हैं और सजीव होकर वे विशेष प्रभावशाली भी होते है। लिखित रूप मे भावों का स्मारक बनता है। जिसको देखकर लोग अपने भावों को जागरित करते है।

वाणी के महत्त्व को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखकर अब हमें उसकी कला पर विचार करना चाहिए। उसके प्रभाव के सम्बन्ध में किसीको सन्देह नही हो सकता और इसमें भी किसीको भ्रम नही हो सकता कि सांसारिक व्यवहार का वही प्रमुख साधन है। व्यक्तिगत सफलता-विफलता बहुत अशो तक लोगों की वाक्पटुता या वचन-दरिद्रता पर अवलम्बित रहती है। अतएव अब हमें यह देखना चाहिए कि किन गुणों या विशेषताओं से वाणी-शक्ति का विकास होता है। दूसरे शब्दों में किस प्रकार मनुष्य अपनी इस शक्ति का उपयोग सफलतापूर्वक कर सकता है, या अच्छी बातचीत के ढंग क्या है और कैसे उनका उपयोग किया जा सकता है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि बातचीत करना या वाणी द्वारा भावव्यजना एक बड़ी कला होती है। अन्य कलाओं की भाति वह अभ्यास से ही सिद्ध होती है। उसका अभ्यास केवल शब्द-कोष रटने से और व्याकरण कंठस्थ करने से नही होता। बहुत-सी विद्याए सीख लेने पर भी यह कला मनुष्य में अपने-आप नही पैदा हो जाती। यह देखा गया है कि बड़े-बड़े विद्वान् भी कभी-कभी वाणी द्वारा अपने ज्ञान का ठीक-ठीक विज्ञापन नही करते। इसके विपरीत परिमित ज्ञानवाले व्यवहारकुशल एव चतुर लोग जो कुछ जानते है, उसके आधार पर अपनी बुद्धि को सुन्दर ढग से व्यजित कर लेते है और अपने भावों के चेक को समाज के बैंक में सफलतापूर्वक भुना लेते है। महाकवि भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' में सत्य ही लिखा है कि विद्वानों में वे ही सर्वोत्तम हैं जो अपने मानसिक भावों को वाणी द्वारा प्रकाशित करते हैं; उनमें उनका स्थान

और भी ऊंचा होता है जो मनोगत गम्भीर अर्थो को चतुरतापूर्ण शब्दों में व्यक्त करते है, किन्तु ऐसे लोग वहुत कम होते है :

भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चिता,
मनोगत वाचि निवेशयन्ति ये।
नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणाः,
गम्भीरमर्थं कतिचित् प्रकाशताम् ॥ (भारवि)

वास्तव में, सव अवसरों पर एक-सी वाणी वोलने का विधान नही वनाया जा सकता। स्थान, अवसर, प्रयोजन और व्यक्ति-भेद से वाणी के रूप में भी भेद होता है, उसके शब्दो ही में नही उसके स्वरों में भी भेद होता है। इसलिए गणित की तरह उसके सिद्धान्त निर्धारित नही किए जा सकते। उसके लिए मानव-स्वभाव का ज्ञान, परिस्थितियों का ज्ञान और आत्मज्ञान भी आवश्यक होता है। शास्त्रीय ज्ञान, से उसका विशेष सम्वन्ध नही है, क्योकि वह एक व्यापारिक कला है जो चन्द्र-कला की तरह वदलती है। वह देश-काल और विपय के अनुसार वदलती है।

यह सत्य है कि सभापण के सम्वन्ध में कुछ निश्चित नियम नही वनाए जा सकते, फिर भी कुछ वाते ऐसी हैं जो सामाजिक वातचीत मे ध्यान रखने योग्य है। उनका अभ्यास और यथावसर उपयोग वाणी को वल देता है। भावो को स्पष्ट और सार्थक व्यजना के लिए उनका आश्रय लेना आवश्यक होता है। सक्षेप में, हम आगे उनपर विचार करेंगे।

मानसिक संयम और योग्यता

वाणी बुद्धि का ही एक अवयव है अतएव विचारों के अनुसार ही उसका रूप वनता है। कठ कितना भी मधुर हो, यदि उसमें से विचार-युक्त वाणी नही ध्वनित होती है तो वह व्यर्थ है। कुशल वक्ता वही हो सकता है जो अच्छा विचारक हो, जो अपने मस्तिष्क-पट पर अच्छे भाव-चित्र वनाने में प्रवीण हो और जो सूक्ष्म दृष्टि से तत्त्व को ग्रहण करने मे समर्थ हो। विचारो की प्रौढता, स्पष्टता, क्रमवद्धता, सजगता, गभीरता और सरसता तथा ओजस्विता के अनुरूप ही वाणी का शरीर वनता है। एक अग्रेज विद्वान् ने लिखा है कि शब्द विचारों के 'लेवल'

(नामांकित पत्र) होते हैं।[1]—अर्थात् जिस प्रकार किसी शीशी या पार्सल पर लगे हुए 'लेबल' से पता चलता है कि उसमें क्या वस्तु है, उसी प्रकार शब्दों से पता चलता है कि मस्तिष्क के विचार क्या हैं और कैसे हैं। वाक्य-दृढ़ता या वचन-अस्थिरता से मानसिक दृढता तथा विचार-अस्थिरता का पता चलता है। टूटे-फूटे वाक्यों से मानसिक दीनता का ज्ञान होता है। वाणी-बल को सुदृढ़ बनाने के लिए पहले विचार-बल को बनाना आवश्यक होता है। सुलझे हुए विचार होने से वाणी भी सुलझी हुई होती है। मस्तिष्क में यदि सन्देह, दुर्भाव या अहंकार रहता है, तो वचनों में भी वही झलकता है। विचारों की सरलता और स्पष्टता से ही वाणी सरल एवं स्पष्ट होती है और यह स्मरण रखना चाहिए कि सरलता और स्पष्टता ही उसके विशेष गुण होते हैं। संयत और सुबोध न होने से उसकी सार्थकता नष्ट हो जाती है।

इसलिए पहले अपने ज्ञान-केन्द्र को सुदृढ़ कीजिए; कल्पना-शक्ति, विवेचन-शक्ति और स्मरण-शक्ति को सबल एवं सजग कीजिए। प्रत्येक विषय को सुनकर उसके मर्म को समझकर, उसपर तर्क-बुद्धि से, न्याय-बुद्धि से विचार करने का अभ्यास कीजिए। जो भी विषय हो उसपर निश्चयात्मक मति से विचार करके, यथार्थता को ध्यान में रखकर तब उसके प्रयोजन को और परिणाम को देखिए। आपका ज्ञान-क्षेत्र जितना विस्तृत होगा और उसीके अनुसार आपका दृष्टिकोण जितना व्यापक होगा, उतना ही आपका व्यवहार-क्षेत्र भी व्यापक होगा। बहुज्ञ होकर आप अनेक क्षेत्रों में प्रवेश करके अनेक विषयों पर वार्तालाप कर सकेंगे, जिसके कारण आपका प्रभाव भी व्यापक रहेगा। अतएव जीवन-सम्बन्धी ज्ञान का संचय उपयोगिता की दृष्टि से करना आवश्यक है। उस ज्ञान की यथार्थता का अनुमान करके सार-मात्र को ग्रहण कीजिए और निस्सार को भूल जाइए।

मन में सन्देह, निराशा, असहनशीलता और आत्म-असमर्थता के जो दुर्विचार हों उनको निर्मूल करके तब योग्य वक्ता बनने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि मन मे सन्देह रहेगा तो प्रायः आप सन्देह-ग्रस्त

1 Words are the labels of thought

वाणी ही बोलेंगे और आपमें तथा आपके श्रोता में सहृदयता की भावना उत्पन्न नही होगी। निराशा लेकर बातें करने में आप सफलता न प्राप्त कर सकेंगे और अंधेरे में यथार्थ को टटोलते फिरेंगे। असहनशील होने पर दूसरो की यथार्थ वाणी को आप नही सह सकेंगे और किसी बात पर तर्क-वितर्क न कर सकेंगे। अपने को असमर्थ मान लेने पर आप अपने विचारो को स्वतत्रतापूर्वक नही व्यक्त कर सकेंगे। आत्मविश्वास पहला गुण है जो किसी कुशल वक्ता में होना चाहिए। जब आप किसीसे मिलते है तो यह विश्वास मन में रखिए कि आप तुच्छ नही है, आप उसको प्रभावित करेंगे और सफल होंगे। यदि आत्मविश्वास हिल जाएगा तो जो कुछ मस्तिष्क में होगा वह भी समय पर भूल जाएगा और सम्भवत: आप हकलाने लगेंगे अथवा वहा से किसी तरह जान छुडाकर भाग निकलने के लिए छटपटाने लगेंगे। आत्मविश्वास से ही दृढता आती है, और हमें नेपोलियन का यह मत ध्यान में रखना चाहिए कि दृढता सब कार्यों में सफलता देती है।[1]

जब आप किसीसे मिलते है तो आत्मविश्वास के साथ दूसरो पर भी विश्वास कीजिए—इस बात का विश्वास कीजिए कि वे भी विचारवान् है और विचारों द्वारा प्रभावित हो सकते है—इस बात का विश्वास कीजिए कि वे भी बुद्धि रखते है, इसलिए आप बनावटी बातें करेंगे तो वे उसको भाप सकते है—और इस बात का विश्वास कीजिए कि वे भी उतने ही भावुक हो सकते है जितने कि आप है। अतएव अपने मन में उनके लिए तथा उनके विचारो के लिए स्वागत का स्थान बनाकर तब बात कीजिए। यदि आप स्वय सकीर्ण विचारों के होंगे तो उनके विचारो को स्थान कहा देंगे? इसलिए विचार-क्षेत्र को खुला रखिए, अर्थात् सुनिए सबकी, चाहे करिए मन की। पहले से ही किसीके सम्बन्ध में दुर्विचार लेकर न मिलिए। बुरे आदमी के प्रति भी सद्भाव लेकर बातचीत करने से सदा सफलता मिलती है। दुर्भाव रखने से मनुष्य दूसरो के दुर्गुण ही देखता है जिससे उसको कोई लाभ नही होता। अंग्रेजी के एक विचारवान् लेखक ने कहा है कि अपने मन में

1 Firmness prevails in all things. —Napoleon

कम दोष होने से ही हमारी परछिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति कम होती है। हम दूसरों पर दोषारोपण तभी करते हैं जब स्वय हमारी ही मनोवृत्ति दूषित होती है।[1]

इसलिए पहले अपने स्वभाव को शुद्ध करना आवश्यक है। साथ ही अपने स्वभाव को नियन्त्रण में रखना भी आवश्यक है। यदि आपमें झूठ बोलने या बातो को अतिरंजित करने का स्वभाव होगा तो आपकी बाते हल्की हो जाएंगी। उस दशा में आप तिल का ताड़ बना लेगे और स्वय विवेक न कर सकेगे कि यथार्थ क्या है। नेपोलियन ने लिखा है कि जो व्यक्ति सीधी बात को घुमा-फिराकर कहने का और अनुचित रीति से सफलता प्राप्त करके प्रसन्न होने का आदी हो जाता है वह उचित-अनुचित में कठिनाई से भेद कर सकता है अर्थात् वह वचनवक्रता से कार्य-सिद्धि करने का व्यसनी हो जाता है।[2]

ऐसा स्वभाव बनाकर आप दो-चार स्थानों पर बाते करने में भले ही सफल हो जाएं, किन्तु बाद में आपकी बातो की असत्यता प्रमाणित होने पर समाज में उनका मूल्य घट जाएगा। बातो को मनोरजक बनाना आवश्यक है किन्तु झूठ के लेप से नही। विचारो के स्वाभाविक सौदर्य, शब्दो के सौदर्य और स्वर के आकर्षण से उनको भूषित करना अधिक अच्छा होता है।

स्वर पर अधिकार

ज्ञान, विचार और स्वभाव के अतिरिक्त अपने स्वर पर ध्यान दीजिए। बाजा बेसुरा रहने से गानेवाला ठीक नही गा सकता। स्वर से ही वाणी के विचार में बल आता है। उसीके अनुसार वाणी ओजस्विनी, मधुर, हृदयहारिणी या प्रभावशालिनी बनती है। उसीसे मनुष्य की आत्मशक्ति का पता चलता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो यही है कि बीमारी में अशक्त होने पर बीमार का स्वर मन्द पड़ जाता है। स्वस्थ

---

1 The fewer faults we possess ourselves the less interest we have in pointing out the faults of other people

2 The man who habituates himself to the distortion of truth and to exultation at the success of injustice will at last hardly know right from wrong
—Napoleon

रहने पर ठनकने लगता है। स्वर के उतार-चढाव से शब्दों के अर्थ और वक्ता के अभिप्राय में भेद पड जाता है। स्वर पर अधिकार रखने से ही विचारों का ठीक-ठीक विज्ञापन होता है।

यह आवश्यक नही कि अपनी शक्तिमत्ता दिखलाने के लिए चिल्लाकर बोला जाए। गला फाडकर चिल्लाने से वीरता का वोध नही होता। वच्चे और अशक्त लोग ही प्रायः चिल्लाते हैं। चिल्लाना असमर्थता का द्योतक होता है। स्वर का उच्चारण स्पष्ट और कर्णश्रव होना चाहिए। उसमें गम्भीरता होनी चाहिए, पर कर्कशता नही; ओजस्विता होनी चाहिए, पर सुकुमारता के साथ। उसको वही तक उठाना चाहिए जहां तक उसकी स्वाभाविकता विनष्ट न हो। उसको इतना गिराना भी न चाहिए कि आधी वात मुह में रह जाए। उच्चारण की स्पष्टता और कर्णप्रियता वाणी के विशेष गुण हैं। अस्पष्टता और कर्ण-कटुता उसके प्रधान अवगुण है। शब्दोच्चारण से न तो शब्दों की तोप दागिए और न ओले वरसाइए। विचार के अनुसार ही उसको सुकुमार, गम्भीर, तीव्र या मन्द वनाइए। स्वर पर जिनका अधिकार नहीं रहता, वे विनय की बातें करते समय भी ऐसे प्रतीत होते हैं मानो किसीको डाट रहे हों। यह स्मरण रखिए कि स्वर की मिठास या कटुता से प्रायः लोग दूसरो की दृष्टि मे प्रिय या अप्रिय वनते है :

> भले-वुरे सव एक सौ जव लौ वोलत नाहि।
> जानि परत है काक पिक ऋतु वसन्त के माहि।। (वृन्द)

शब्द और व्याकरण

शब्द ही वाणी के हाथ-पैर होते है। शब्दों का पर्याप्त ज्ञान होने से ही उनके द्वारा भावों की ठीक-ठीक व्यजना हो सकती है। ठीक समय पर ठीक भाव के लिए ठीक शब्द तभी मिल सकता है जब आपका शब्द-ज्ञान, अर्थ-ज्ञान और शब्द-सग्रह विशाल हो। इसमें असावधानी होने पर आप कुछ का कुछ कह सकते है और वार-वार आपको अपनी ही वात की भाषा ठीक करनी पड़ेगी। शब्दों पर जिनका अधिकार नही होता उन्हीको वार-वार कहना पड़ता है कि मेरा अभिप्राय यह नही था। ठीक अर्थ को व्यजित करनेवाले शब्दो का ज्ञान होने से मनुष्य

अपनी वाणी को सार्थक बना सकता है और ठीक निर्णय पर पहुंच सकता है। उसी प्रकार शब्दों के ठीक अर्थ जानने से वह दूसरों के अभिप्राय को ठीक-ठीक समझ सकता है। शब्द-सामर्थ्य मनुष्य का विशेष गुण माना जाता है। यह देखा गया है कि जो लोग उच्च पद पर होते हैं उनका शब्द-संग्रह साधारण लोगों से अधिक होता है। दूसरे शब्दों में, आत्मोन्नति के लिए अधिक शब्दों का ज्ञान आवश्यक है। विना उसके मनुष्य अपने को ठीक-ठीक व्यक्त नही कर सकता और न दूसरों पर अधिकार ही जमा सकता है।

शब्द-संग्रह के समान ही उनका चुनाव और उनकी रचना भी आवश्यक है। कोष रहना आवश्यक नहीं है; उसके उपयोगी और प्रचलित शब्दों का ज्ञान होना आवश्यक है। शब्दों के चुनाव और उनके द्वारा वाक्य-रचना से व्यक्ति की सुरुचि, सज्ञानता का पता चलता है। अच्छे कवि केवल सुन्दर शब्दों के चुनाव और उनकी क्रमवद्ध रचना या शैली से ही भावों की तीव्रता बढ़ाकर उनको सजीव बना देते हैं। जब शब्दों का चुनाव ठीक नही होता और मनुष्य उनको एक शृंखला में नही बाध पाता, तभी वह शब्दों का घटाटोप खड़ा करता है या शब्द-कुठार चलाता है। किसीसे बात करते समय इसका ध्यान रखिए कि आप मछली फंसाने नही, एक विचारवान् जीव को वशीभूत करने निकलते हैं। कोई वुद्धिमान् शब्द-जाल में नही फसता। कठिन शब्दो की झड़ी लगाने से भी कोई प्रभावित नही होता। सरस एवं सरल शब्दो में व्यजित अकाट्य तर्क द्वारा ही दूसरो को प्रभावित या पराजित किया जा सकता है। उसी वक्ता की वाणी का प्रभाव पड़ता है जो थोड़े शब्दों में अधिक से अधिक विचार भर सकता है। शब्दों की सख्या भावों की सख्या से सदैव कम होनी चाहिए और उनसे भावों की एकता और क्रमवद्धता ही प्रकट होनी चाहिए। वास्तव में, उपयुक्त अवसर के लिए उपयुक्त शब्दों का चुनाव करके सारयुक्त वाणी वोलने से ही सफलता मिलती है। निरर्थक शब्दों से विषय उन्हीमें खो जाता है और श्रोता को कभी इतना अवकाश नही रहता कि वक्ता के लिए बैठकर नीर-क्षीर विवेक करे।

शब्दों में आप सरल, मर्मस्पर्शी और विचारोत्तेजक शब्दों का चुनाव कीजिए और उनको यथास्थान प्रयुक्त करने की योग्यता प्राप्त कीजिए। जिस भापा में आप बोलते हैं, उसीके शब्दो का व्यवहार कीजिए। भापा की वर्णसकरता उसके प्रवाह को नष्ट कर देती है। शिष्ट और संयत शब्दावली मनुष्य में बड़प्पन को बढाती है। गन्दे शब्दो से अपना मुंह पहले गन्दा होता है, दूसरे का चाहे हो या न हो। भारती का कण्ठहार उज्ज्वल शब्द-रत्नो से ही बनता है। शब्द-योजना से व्याकरण का ध्यान भी वाणी को स्वस्थ बनाता है। इसपर विशेष लिखने की आवश्यकता नही है, क्योकि यह सभी जानते है कि व्याकरण के बिना भापा का सगठन ठीक नही हो सकता और वह उच्छृङ्खल हो जाती है। शुद्ध और मुहावरेदार भाषा अधिक हृदयहारिणी होती है।

मानव-स्वभाव का ज्ञान

विचार, स्वर और शब्द से अलकृत भाषा भी यदि श्रोता के स्वभाव के विपरीत होती है तो वह उसपर प्रभाव नही डालती। जैसे, नायिका के हावभाव का वर्णन किसी रसिक को प्रिय लग सकता है; किन्तु किसी कामकाजी को महा अप्रिय लगेगा। उसको उसकी अपेक्षा बाजार-भाव की चर्चा अधिक प्रिय लगेगी। लोगों की रुचि जानकर, उनकी परिस्थिति को ध्यान में रखकर उनके अनुकूल बातचीत करने से साधारण बाते भी उनको प्रिय लगती है। इसलिए अन्तर्वेदी अर्थात् मर्मज्ञ बनिए।

यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक एक व्यक्ति एक अश तक स्वार्थी और स्वाभिमानी होता है। सबका अलग-अलग दृष्टिकोण होता है। आप सबसे यह आशा नही कर सकते कि वे आपकी बातों को वेदप्रमाण मानकर शिरोधार्य कर ले। उनका विरोध करते हुए भी यदि आप उनको अपनी बातो से जीतना चाहते है तो आपको उनके स्वभाव और उनके व्यक्तित्व का ध्यान रखना पड़ेगा। मानव-स्वभाव का ज्ञान अनुभव से ही हो सकता है। कुछ अन्य आवश्यक बातों का उल्लेख हम नीचे करेंगे।

छोटे मुह बड़ी बात न कीजिए—आत्मविश्वास और स्वाभिमान

रखते हुए भी अपनी वास्तविक स्थिति का ध्यान रखिए और अपनी मर्यादा का ध्यान रखिए। उससे भी अधिक दूसरे की पद-मर्यादा और आत्मसम्मान का ध्यान रखिए। आत्मशक्ति के अनुसार ही अपना विज्ञापन करना शोभा देता है। अनधिकार-चेष्टा अप्रिय लगती है।

मैं-मैं न कीजिए—बहुत-से लोग अपने ही विषय मे इतने अनुरक्त हो जाते हैं कि वे हर बात में अपनी ही चर्चा करते हैं और आदतवश 'मैं' शब्द का प्रयोग अधिक करते है। 'मैने किया', 'मैने कहा', आदि उनकी बात-बात में रहता है। दूसरों के सम्बन्ध में वे बात नही कर सकते और करते भी है तो दोषारोपण के साथ। ऐसा स्वभाव होने पर बातों से वे दूसरों को धराशायी बनाने के आदी हो जाते है और आत्म-प्रशंसा की बौछार करने लगते हैं। इसीको लक्ष्य करके एक विलायती विद्वान् (ई० एफ० यीस्ट) ने कहा है :

You may have become a knocker and unconsciously slipped into the habit of finding fault. It is also easy to acquire the 'I' habit and to become self-centred and to incessantly talk about your own affairs.

इसका भावार्थ ऊपर दिया जा चुका है। सभ्य समाज में अधिक 'मै-मैं' करना बकरीपन या बिल्लीपन का द्योतक होता है। दूसरों को उनके विषय में अधिक बोलने का अवसर देना बातचीत का सुन्दर ढग है। आपकी लीला आपके लिए रामलीला हो सकती है, पर दूसरों की दृष्टि में वह एक नाटक से भी कम मूल्यवती होगी। अतएव अपनी ओर किसीको विशेष आकर्षित करने के लिए अधिक बातचीत उसीको करने दीजिए। और आप उसके ठीक विचारों को उत्तेजित कीजिए। दूसरे जैसा अपने को समझते है, उनको वैसा ही बताना वाक्पटुता है और वैसा ही बताकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करना व्यवहार-कुशलता है। उनको गिराकर और उनकी छाती पर भार-रूप होकर काम निकालने का प्रयत्न न कीजिए। वचनवीर सदा कायर गिने जाते है।

नाक में दम न कीजिए—किसी बात को बार-बार घोंटकर दूसरों के गले में उतारने का प्रयत्न न कीजिए। उससे सुननेवाला ऊब जाता

है और उसको वातो का भयंकर अजीर्ण हो जाता है। एक बात को वार-बार दुहराने से विचार-सकीर्णता का पता चलता है। जो बडे बक्की होते है वे प्रायः झक्की और शक्की होते है।

आग लगाकर कौतुक न देखिए—किसीके विचारों को भड़काकर अथवा दो आदमियों मे भेद डालकर स्वयं अपना काम निकालने की चेष्टा न कीजिए। विना वेतन के अपने को किसीका जासूस वनाना महामूर्खता है। इधर की बात उधर लगाने से स्थायी लाभ नही होता, उलटे आत्मसम्मान घट जाता है।

आकाश के तारे न तोड़िए—वातचीत में कल्पना-प्रसूत बातों का विशेप आश्रय न लीजिए। पैर को जमीन पर रखकर ऐसी बाते कीजिए जो सम्भव हो। वोलते-बोलते हवा में न उड़ जाइए, नही तो जिसके पास आप वैठे होंगे वह आपसे बहुत दूर हो जाएगा। वढ़-चढकर बाते करने से तुच्छता प्रकट होती है।

अपनी निन्दा-स्तुति न कीजिए—यदि आप अपनी प्रशसा करेगे तो सर्वप्रथम तो कोई इसपर विश्वास न करेगा, क्योंकि नीच से नीच भी आत्मप्रशसा करता है। दूसरे, कोई इसमें रस न लेगा, क्योंकि अपने मुख से अपनी प्रशसा दूसरो को स्वभावतः प्रिय नही लगती। यदि आप मूर्खतावश या चालाकी से अपनी निन्दा करेगे, तो लोग समझेगे कि जब यह स्वय अपने को इतना बुरा समझता है तो वास्तव में न जाने कितना वुरा होगा। निन्दा और स्तुति वही है जो दूसरों के मुख से निकले। अपने हाथ से अपने सिर पर फूल चढ़ाने या जूता मारने का प्रयत्न क्यों करे? यह अस्वाभाविक है।

सिद्धान्तवादी न वनिए—छोटी-छोटी बातो को भी सिद्धान्त मानकर काठ की तरह जड़ न बनिए। शब्दो द्वारा अपने सिद्धान्तो का विज्ञापन करके उनकी ओट मे बैठनेवाले लोग प्रायः सिद्धान्तों पर दृढ़ नही रहते। सिद्धान्तों का पालन कर्म से होता है वचनचातुरी से नही। दूसरो के न्याय-सम्मत विचारो के अनुसार अपने विचारों में परिवर्तन करने की गुजाइश रखकर तव लोगों से विचारों का आदान-प्रदान कीजिए। ढोग और पाखड में सफलता नही मिलती।

काटने मत दौड़िए—कोई अप्रिय प्रसंग उपस्थित होने पर भी यथासंभव रसना की सरसता को विनष्ट न कीजिए। तुलसी की इस उक्ति को याद रखिए :

तुलसी मीठे वचन तें सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन इक मंत्र है, परिहरु वचन कठोर।।

कबीर का भी एक उपदेश स्मरण रखने योग्य है :

ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपौ सीतल होय।।

प्रज्ञाभिमानी और प्रतिकूलवादी होने से बचे रहिए। मूर्खता और दुष्टता के अतिरिक्त इन्ही दो कारणों से लोग अनर्गल प्रलाप करते है। विचारहीन लोग ही बहुवक्ता होते है।

न्यायाधीश या समालोचक न बनिए—बातचीत में न तो जज की तरह नपे-तुले शब्दों में फैसला देने की मनोवृत्ति रखिए और न समालोचक की तरह दूसरों की छानबीन करने की। उससे बातचीत की स्वाभाविकता नष्ट हो जाएगी। कोरे उपदेश से किसीपर प्रभाव नही पड़ता। अभियोगजनक या आक्षेपजनक वाणी सदा असह्य होती है। महामहोपदेशक बनने का प्रयत्न भी न कीजिए।

ज्ञान को कण्ठस्थ रखिए—दीर्घसूत्री बनकर बाते करने न बैठिए और न पुस्तकों के भरोसे रहिए। ज्ञान तो वही है जो आवश्यकता पड़ने पर अवतरित होने के लिए कण्ठ में आ जाए। यदि ऐसा न होगा तो आप समय पर अपने मत की पुष्टि न कर सकेंगे। सुन्दर सूक्तियां और प्रामाणिक वचन कण्ठस्थ रहने से समय पर बड़ा काम देते हैं। वे ही आपके वकील हो जाते है।

मौलिकता और सामयिकता का ध्यान सदैव रखिए—सफल वक्ता होने के लिए प्रत्युत्पन्नमति, कुशाग्रबुद्धि और प्रतिभाशाली होना आवश्यक है। नई सूझ का सभी सम्मान करते है। उधार लिए हुए विचारों का प्रभाव विशेष नही पड़ता। सामयिकता का ध्यान रखना तो आवश्यक है; क्योंकि :

नीकी पै फीकी लगे, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस सिंगार न सुहात ॥ (वृन्द)

समय की सूझ ही तो सफलता की कुंजी है। प्रसग के अनुसार भाषा के रूप में अन्तर पड जाता है। जहां काव्य की चर्चा हो वहा अलकार-युक्त और भावुकतापूर्ण वाणी ही सर्वप्रिय मानी जाती है। जहां राजनीति का प्रसग हो वहा युक्तिपूर्ण और व्यापार तथा काम-काज में नपी-तुली खरी बातो का ही मान होता है। वहा गोलमोल बातो से काम नही चलता।

सप्रयोजन और सप्रभाव बोलिए—जो कुछ भी आप बोलिए किसी उद्देश्य को सामने रखकर तर्क-सम्मत वाणी में बोलिए। जिस प्रकार वकील अपने मामले को तैयार करके अपने पक्ष के समर्थन में सावधानी से बोलता है, उसी प्रकार आप अपने विषय को तैयार करके गौरवपूर्ण ढग से व्यक्त कीजिए। न घबराइए, न छटपटाइए और न निराशावादी बनिए। अन्त तक स्थिरमति से आशावन्त बनकर वाक्शक्ति का प्रयोग कीजिए और तथ्य को तर्कपूर्ण शब्दावली में सामने रखने का प्रयत्न कीजिए। अपने विषय पर अधिकारपूर्वक किन्तु विनययुक्त भाषा में बोलिए। विनययुक्त भाषा का अर्थ 'हे-हे' करना नही, बल्कि शिष्टता-पूर्वक बोलना है। बातचीत में शिष्टाचार और वेश-भूषा का भी बडा प्रभाव पड़ता है। वकील की तरह या बनिये की तरह एक-एक शब्द तौलकर बोलिए। शीघ्रता से शब्द-प्रयोग करना प्रायः हानिकर होता है। अपने मत के समर्थन के लिए वकील ही की तरह प्रमाण दीजिए और ध्यान रखिए कि स्वयं आप ही के बयान से आपकी बात कहीं खडित न हो। सामाजिक वाक्पटुता के सभी गुण भी वकीलों से न लीजिए। उनकी तरह मनगढन्त बातों का सहारा लेना प्रतिष्ठानाशक हो सकता है। उनके जिरह करने के गुण को भी अपनाना ठीक नही। बातचीत में पहेली बुझाना उसकी धारा को रोक देता है। वकीलों की तरह बात का बवडर भी न खड़ा कीजिए। हां, सतर्क उन्हीकी तरह बनिए।

धारा-प्रवाह बोलिए—किसी विषय में निश्चित मत स्थापित करके

जमकर बोलिए और शीघ्र न उखड़िए। धारा-प्रवाह का यह अर्थ नहीं कि आप बड़बड़ाने लगे और वाणी के प्रवाह में विषय, व्याकरण सब वह जाएं। उसका अर्थ है विचारों की शृखला को जोड़े रखना और एक निश्चित दिशा में आगे बढना।

चित्रवाणी बोलिए—चित्रवाणी का यह अर्थ नही है कि आप आंख-भौह मटकाकर नाटकीय ढग से बात करे। इस अध्याय के आरम्भ में हनुमान् की वाणी के सम्बन्ध में हमने रामायण का जो अश उद्धृत किया है उसमें चित्रवाणी का उदाहरण मिलेगा। चित्रवाणी का अर्थ है अपने भावो और उद्गारों को स्वाभाविक एवं मनोरंजक ढग से व्यक्त करना; वाणी के साथ-साथ आकृति और अंग-चेष्टाओं की अनुकूलता अर्थात् भाव को सचित्र बनाना। आकृति, गति, चेष्टा, बातचीत, नेत्र तथा मुख के विकारों से मन की बात ठीक-ठीक प्रकट होती है :

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः॥

वाणी को सरस बनाने के लिए उसके विषय में रस लीजिए और यथासंभव नीरस और अनावश्यक चर्चा से बचिए। हंसकर, उपमाएं देकर, कल्पना से रंजित करके कलापूर्ण ढंग से व्यक्त की हुई भाषा विशेष प्रभावशालिनी होती है। शील और सौजन्य तो स्त्री की लज्जा और सदाचार की तरह भाषा के स्वाभाविक आभूषण होते हैं। हास्य-विनोद और भावुकता से भी वह सचित्र बन जाती है। किसी सुन्दर कला में रुचि रखने से भी उस विषय में वक्ता सुन्दर ढंग से बातें कर सकता है। चित्रवाणी का प्रयोजन यह है कि श्रोता वर्णित विषय को अपने कल्पना-नेत्र से भी देख ले :

तैं बरनें निज बैनन सों सखि।
मैं निज नैनन सों मनु देखे॥ (मतिराम)

गुण-ग्राहक बनिए—स्वयं गुणी होकर भी दूसरों के गुणों का सम्मान कीजिए। पूजा करते समय जिस प्रकार आप जूते उतार देते हैं, उसी प्रकार दूसरों से बातें करते समय दूसरों के दोष, जो आपके मस्तिष्क के पैर में धारित हों, उनको उतार दीजिए। मक्षिकावृत्ति लेकर आप

केवल दूसरो की मवाद ही पा सकेंगे, किन्तु भ्रमरवृत्तिधारी होने पर आप मधु का सचय कर सकेंगे। निन्दक का कही सम्मान नही होता। जिससे आप बाते करते है, उसकी बातों से भी सार अश को ग्रहण कीजिए और यथावसर उसकी प्रशसा हृदय खोलकर कीजिए। प्रशसात्मक शब्दों में कजूसी न कीजिए। आपकी प्रशसा से दूसरे को आत्मसतोप होगा और वह आपको गुणज्ञ समझेगा। इस प्रकार दोनो एक-दूसरे की तरफ आकर्पित रहेगे और तभी प्रयोजन सफल होगा। प्रशसा के पुल न बाधकर स्वाभाविक रीति से दूसरे पर यह प्रकट कीजिए कि आप उसकी बातो के मर्म को समझ रहे है। उसके अनुकूल बनकर आप अपने भी सुझाव दीजिए जिससे कि वह समझे कि उसकी बाते आपके भावों को जगा रही है। वह कोई हित की बात कहे तो तत्काल धन्यवाद देने में न चूकिए। कोई आपका उपकार करे तो यथा-शीघ्र उसके प्रति विनम्रतापूर्वक कृतज्ञता प्रकट कीजिए। दूसरे यदि अपने सम्बन्ध में कोई बात करते हों तो उपेक्षा न करके उसमें अपना व्यक्तिगत अनुराग प्रकट कीजिए और बोलनेवाले को उत्साहित कीजिए, उसकी उचित आकांक्षाओं को अधिक प्रबल बनाइए। लोगों से सहमत और एकमत होने की चेष्टा कीजिए, लेकिन औचित्य और प्रयोजन तथा परिणाम को ध्यान में रखकर। किसीके सिद्धान्तो पर तथा लोकप्रथा और धर्म पर शब्द-बाण न चलाइए। सहानुभूति प्राप्त करने के लिए दूसरो के साथ सहानुभूति प्रदर्शित कीजिए। सहनशील होकर ही आप गुणग्राही और लोकप्रिय हो सकते है।

हितकर वाणी बोलिए—बातचीत मे सत्य का ध्यान रखना आव-श्यक है, किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह कठोर सत्य न हो। जहां कठोर सत्य कहने की विवशता हो और न्याय का प्रश्न हो वही अप्रिय सत्य भी कहना चाहिए अन्यथा अपने तथा दूसरो के हित को ध्यान में रखकर बोलना ही सत्य का सच्चा स्वरूप होता है। इस विषय में आप मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की इस सम्मति को ध्यान में रखिए, जो उन्होंने वनगमन के समय सुमन्त्र को दी थी। राम जब रथ में बैठकर अयोध्या से जाने लगे तो राजा दशरथ अधीर होकर रथ के

पीछे दौड़े और दूर से चिल्लाकर सुमन्त्र को आज्ञा देने लगे कि रथ को खड़ा कर दो, किन्तु राम ने आज्ञा दी कि रथ तेज करो। सुमन्त्र को धर्मसंकट में पडे देखकर राम ने कहा कि लौटने पर यदि राजा तुमसे रुष्ट होकर पूछे कि राजाज्ञा का पालन क्यों नही किया तो कह देना कि रथ के चलने के शब्द के कारण आपका कहना सुनाई नही पडा—हम (झूठ बोलने के लिए) इस हेतु कहते है कि दु.ख को बहुत काल तक रखना पाप का मूल होता है।

इस नीति को ध्यान में रखकर प्रियवक्ता वनिए, पर अत्यधिक नहीं। अत्यधिक प्रियवक्ता होने से झूठा होना पड़ता है और 'प्रियवादी भवति धूर्त्तजनः।' यथासम्भव सत्य को भी विनम्रतापूर्वक ही बोलिए और अवसर देखकर झुक भी जाइए। अकड़े रहने से पेड़ की तरह आंधी में टूटने का डर भी रहता है। दूसरों का प्रवल वेग देखकर झुकना भी सीखिए क्योंकि उनका वेग शान्त होने पर आप फिर खड़े तो मिलेंगे। स्वयं झुककर दूसरों पर विजय करना[1] आजकल की एक विशेष युक्ति मानी जाती है।

अनुभवहीनता न प्रकट कीजिए—किसी वात में दूसरों पर यह न प्रकट कीजिए कि आप विलकुल कोरे हैं। यदि कोरे हों तो यथासम्भव मौन रहिए (मौन सर्वार्थसाधनम्) और दूसरे को अपना ज्ञान उगलने दीजिए। उसकी वातों में से आपकी वातों के लिए सामग्री मिल जाएगी। वीच-वीच में उससे सहमत होते रहिए। यदि आप विशेष बुद्धिमान् हैं तो आदर्शवादी नही वल्कि यथार्थवादी बनकर बाते कीजिए अन्यथा आपके ज्ञान की शुष्कता और निरर्थकता प्रकट होगी। दूसरे पर अपनी वुद्धि की सर्वमान्यता प्रकट न कीजिए। विचारो का स्वतन्त्र आदान-प्रदान कीजिए, पर अपने सभी रहस्यों को खोलकर दूसरों के सामने न रखिए। इस सम्बन्ध में एक अनुभवी लेखक ने लिखा है कि दूसरो से वुद्धिमान् वनो किन्तु उनको अपनी बुद्धि की थाह मत लेने दो।[2]

वातचीत करते समय आप दूसरों की वातों से ही नही उनकी

1 Stoop to conquer

2 Be wiser than other people but do not tell them so

आकृति आदि से भी उनके मर्म को न तोड़िए और चुपचाप उनके अभिप्राय को समझकर सावधान होकर बाते कीजिए। शब्दो ही से किसीके सम्पूर्ण भाव की गहराई न नापिए। शेक्सपियर ने लिखा है कि शैतान अपना काम निकालने के लिए धर्मशास्त्र का पाठ भी कर सकता है।[1] अतएव बातो में विशेष न फसिए। दूसरो के मस्तिष्क को पढिए और उसके अनसार बाते कीजिए।

बातो में उलझने या झगडने से भी अनुभवहीनता प्रकट होती है। प्राय वही लोग झगडते है जिनमें तर्क-बुद्धि नही होती अथवा जो असिहष्णु होते है। विरोधी के साथ भी तर्क कीजिए और उसको यह विश्वास दिलाइए कि आप उसकी बात के तथ्य को समझकर तर्क कर रहे हैं। वह आपकी गुणग्राहकता पर अवश्य रीझेगा। किसी साधारण विषय में अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर चौकने से आपका छोटापन सिद्ध होगा। गोल्डस्मिथ का यह कथन याद रखिए कि छोटी वस्तुएं उन्हीको महान् लगती है जो स्वय छोटे है।[2]

बडों से मिलिए—यथासभव अपने से बडो में प्रविष्ट होने का और उनसे बाते करने का सौभाग्य प्राप्त कीजिए। मूर्ख के साथ सम्पूर्ण जीवन बिताने की अपेक्षा अनुभवी व्यक्ति के साथ एक घटा बिताना अधिक फलदायक होता है। अपने से बडों से मिलने पर शिष्टाचार का ध्यान रखिए, उनकी प्रतिष्ठा का ध्यान रखिए, उनके साधारण निवेदन को भी उनकी आज्ञा मानिए और मिलने के बाद उनकी बातों को बाटते न घूमिए। उनको आप जो भी वचन दे उसका अक्षरशः पालन कीजिए। बातचीत मे और उसके बाद भी न तो उनकी बात को काटिए और न उसको खाली होने दीजिए। उनको सिर और आखो पर रखिए।

व्यक्तित्व से प्रभावित कीजिए—व्यक्तित्व में बड़ा आकर्षण होता है। जब आप किसीसे मिलते है तो अपने व्यक्तित्व को उद्दीप्त करके मिलिए। उसीको व्यक्तिगत आकर्षण-शक्ति[3] कहते है। व्यक्तित्व की

---

1 The devil can cite scripture for his purpose

2 Little things are great to *little* men

3 Personal magnetism

सौम्यता और शील-सुजनता तथा मनोहर वाणी से सभी वश में हो जाते है। मिलने पर निर्भय रहिए; आंख से आंख मिलाकर और समय-समय पर श्रोता को उसके नाम या उसकी पदवी से सम्बोधित करके बातें कीजिए। इससे आपके व्यक्तित्व का ठीक विज्ञापन होगा। श्रोता का कम से कम समय लीजिए और प्रथम परिचय में दस मिनट से अधिक समय न लीजिए। उस दस मिनट में कोई स्वार्थ की चर्चा न कीजिए; नवपरिचित के ही सम्वन्ध में पूछताछ कीजिए। पूर्व-परिचित से मिलने पर भी उसके स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में कुशल-प्रश्न तो पूछ ही लीजिए। यथासम्भव लोगों के घर पर मिलिए; कार्यालय में काम से ही मिलिए। जहां भी मिलिए वहां कातरोक्तियां न सुनाइए। विना अधिक भूमिका वांधे हुए मूल विषय पर यथाशीघ्र पहुंचिए और उस विषय में यदि कोई न कोई नई बात सूझती है तो उस सूझ का श्रेय स्वयं न लेकर दूसरों को लेने दीजिए। उससे आपका वड़प्पन ही प्रकट होगा। अपने मुख से दूसरों को श्रेय देकर भी दूसरों के मन के सारे श्रेय के भागी आप ही होंगे।

यदि आप किसी पद पर हों तो अपने व्यक्तित्व को सर्वसुलभ न वनाइए। उस दशा में अधिक घुलना-मिलना नहीं, वल्कि अधिक गम्भीर वने रहना ही आपके अधिकार को दृढ करेगा। सुप्रसिद्ध लेखक वर्नार्ड शॉ ने अपने विषय में लिखा है कि मैं वहुत वोलता हूं; धीर-प्रकृति होकर शक्तिमान् वनने का प्रयत्न मैंने कभी नही किया।[1]

मौन रहने से और वचन-गम्भीरता से निश्चित ही अधिकार-शक्ति वढ़ती है।

ध्यान से सुनिए—ध्यान से सुनना भी अच्छी वातचीत का एक प्रधान अंग है। कभी-कभी स्वयं वोलने की अपेक्षा दूसरों की वाते ध्यान से सुनना अधिक प्रभावोत्पादक होता है। दूसरों को रिझाने की यह सर्वोत्तम युक्ति है। अंग्रेजी में किसीकी एक छोटी-सी कविता है जिसमें इस कला की महत्ता वतलाई गई है। वह यह है:

---

1 I talk a great deal I have never set up to be a strong silent man
—G. B Shaw

"दूसरों को रिझाने का उपाय जानते हो ? बहुत सरल है—उनकी बात को ध्यान से सुनो। मुग्ध होकर, सरल बनकर, सूक्ष्मता और सावधानी से सुनो; समझदारी के साथ आश्चर्यचकित होकर, वाक्पटुता या चाटुकारिता के साथ सुनो। इस प्रकार की मनोहर ढग की बातचीत में उनको अपार आनन्द मिलेगा अर्थात् इस प्रकार वे आपकी ओर अत्यधिक आकर्षित होंगे।"[1]

इसमें सन्देह नही कि पर-सतोषण के लिए दूसरों की बातो को मंत्रमुग्ध होकर सुनना सर्वोत्तम साधन है। किसी अहकारी से पाला पड़ने पर इसी साधन का प्रयोग कीजिए। उस प्रसग में यह भी ध्यान में रखिए कि सुननेवाला भी मूर्ख और अनुदार बुद्धि का न हो।

बातचीत के प्रभाव, उपयोग और ढग के सम्बन्ध में यही कुछ मुख्य बाते है। देश, काल और पात्र के अनुसार ही निर्णयात्मक बुद्धि से इस शक्ति का प्रयोग करना उचित है। मानव-जीवन में बातो का बड़ा महत्त्व है, क्योंकि प्रत्येक विषय में सब यही देखते हैं और जानना चाहते हैं कि लोग क्या कहते है।

1 Would you know the way to woo him ?
It is simple—listen to him !
Listen graciously and sweetly,
Listen subtly and discreetly,
Listen with intelligence,
With wide-eyed awe and eloquence,
He'ld find endless fascination,
In such brilliant conversation !

6

व्यवहारकुशलता

किसी विपय का विपयी या विशेपज्ञ होने की अपेक्षा व्यवहारज्ञ या उपायज्ञ होना अधिक सांसारिक सफलता देता है। विद्या-वारिधि होकर भी यदि कोई व्यवहार-चतुर न हो तो उसकी विद्वत्ता घर ही में रखी रह जाती है। इसके विपरीत विद्याशून्य होकर भी मनुष्य यदि व्यावहारिक बुद्धिवाला होता है तो वह अपनी साधारण योग्यता मे भी बड़ा काम निकाल लेता है और लोकप्रिय वन जाता है। सारा ससार व्यापार-व्यवहार के आधार पर चलता है।

व्यवहार-ज्ञान की कोई एक रूपरेखा नही वनाई जा सकती। स्थान, कार्य, परिस्थिति, काल और व्यक्ति-भेद से उसकी कला में अन्तर पड़ जाता है। जो वात एक स्थान पर अनुचित एवं अधर्म मानी जाती है, वह दूसरे प्रसग में उचित, अतएव कर्तव्य वन जाती है। दैनिक जीवन में सत्य से वढ़कर कोई धर्म नहीं है, परन्तु राजनीति तथा व्यवसाय में युक्तिपूर्ण व्यवहार ही सर्वमान्य है। युक्ति के साथ कुछ छल अवश्य मिश्रित रहता है। शुक्राचार्य ने लिखा है कि युक्ति प्रायः छलयुक्त होती है: 'युक्तिः छलात्मिका प्रायः।' और यह भी लिखा है कि जहां युक्ति-शक्ति दोनों सयुक्त रहती है, वहां चारो ओर से विजय मिलती है:

यत्र नीतिवले चोभे तत्र श्रीस्सर्वतोमुखी। (शुक्रनीति)

इसलिए यह नही कहा जा सकता कि शुद्ध सत्य ही एकमात्र व्यावहारिक धर्म है। कही-कही युक्ति द्वारा ही सत्य धर्म की रक्षा होती है। कृष्ण के जीवन-चरित्र से यह वात ठीक-ठीक समझी जा सकती है। जो कृष्ण महाभारत के आदि में अर्जुन को गीता-धर्म का उपदेश देते थे, वही परिस्थितिवश अर्जुन से विजय-लाभ के लिए कहते थे कि तू अव धर्म को त्याग दे: 'धर्ममुत्सृज पाण्डव।' (द्रोण पर्व)। इससे यह प्रमाणित होता है कि समयानुकूल कल्याणकारी आचरण ही श्रेष्ठ व्यवहार-धर्म है। वृहस्पति ने कहा है कि केवल प्राचीन शास्त्रो के आधार पर

अपने कर्त्तव्य का निर्णय नही करना चाहिए, युक्तिहीन विचारों से धर्म-हानि होती है, अर्थात् कर्तव्य का निर्णय नही होता :

केवल शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः।
युक्तिहीने विचारे तु धर्महानिः प्रजायते ।। (बृहस्पति)

दूसरे शब्दो में कोरे आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी होना चाहिए; धर्मावतार न बनकर समय-चतुर (अवसरवादी) बनना चाहिए। समय-चतुर वह है जो इस बात को जाने कि कब, कहां और किसके साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए। वह व्यवहार युक्तिपूर्ण होकर भी जब नैतिकता पर अवलम्बित रहता है तभी सफल होता है। सत्य-पक्ष की दृढ़ता के बिना केवल बुद्धिकौशल या उपाय से विजय नही होती। जिससे अन्त में सत्य की प्रतिष्ठा हो, वही श्रेष्ठ युक्ति है और वही मानव-धर्म है।

इस विषय को विशेष विस्तार न देकर हम जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में व्यवहृत आचार के मूल सिद्धान्तो की ओर सकेत करेगे। उनसे यह विषय अधिक स्पष्ट हो जाएगा और यह भी ज्ञात होगा कि कहां शुद्ध सरल आचरण ही व्यवहार-धर्म है और कहा युक्तिपूर्ण आचरण सत्य-धर्म की मर्यादा को बचाता है।

1. गृह-नीति

घर एक ऐसा स्थान है जहा पर शुद्ध सत्य-अहिसा-विश्वास-समन्वित व्यवहार ही सुखदायी होता है। पारस्परिक सद्भाव और सद्व्यवहार से ही घर स्वर्ग हो जाता है। दाव-पेच, कलह, छल-कपट से वही नरक हो जाता है। गृह-नीति-सम्बन्धी इन मुख्य बातो पर ध्यान दीजिए :

1. परिवार किसी एक का नही, प्रत्येक पारिवारिक प्राणी का होता है। अपने घर मे सब बादशाह होते हैं, सब अपने अधिकारों की रक्षा चाहते है। उस स्वराज्य में कोई अपमानित या तिरस्कृत नही होना चाहता। बाहर के अपमान लोग सह लेते है, परन्तु अपने घर में घर-वालो द्वारा किया हुआ अपमान नही सह सकते। बाहर निर्धन होकर रह सकते है, परन्तु भाई-बन्धुओ के बीच में निर्धन बनकर कोई नही रहना चाहता : 'न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्।' मानव-स्वभाव ऐसा ही

होता है। इसीलिए घर के छोटे से छोटे प्राणी की मान-रक्षा, स्वार्थपूर्ति होने से वह सतुष्ट रहता है और गृह सुसगठित रहता है। उपेक्षा, अन्याय से भीतर-भीतर विष फैलता है। पारस्परिक सहानुभूति, त्याग और प्रेम-व्यवहार से ही गृह-मर्यादा स्थापित रहती है।

कम से कम आजकल घरो में भी प्रजातन्त्र होना चाहिए। किसी एक की स्वेच्छाचारिता या निरकुशता से घर का वातावरण पुराने हैदराबाद जैसा हो जाता है। गृह-स्वामी अब पत्नी को गृह-दासी बनाकर नही रख सकता। यह समानाधिकार का युग है। समय-परिवर्तन से स्वाधिकार और स्वतन्त्रता की भावनाएं समस्त वायुमडल में भर गई है। अतएव किसी एक व्यक्ति का स्वच्छन्द शासन या अत्याचार दूसरों पर न होना चाहिए और सर्वसम्मति तथा पारस्परिक सहयोग से ही घर का शासन चलाना चाहिए। घर में कोई तुच्छ प्राणी नही होता। घर के छोटे प्राणियों का सहयोग भी नितान्त आवश्यक होता है, क्योंकि चाणक्य के मत से, भूसी के बिना चावल नही उग सकते :
'तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः।'

2. गृह-प्रजातन्त्र का एक मुखिया अवश्य होना चाहिए। नीति का वचन है कि जिस कुल में सभी अभिमानी नेता हों अथवा सभी अभिमानी हों या सब महत्त्व की इच्छा रखते हों, वह कुल नष्ट हो जाता है :

सर्वे यत्र विनेतारः सर्वे यत्राभिमानिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति कुलं तदवसीदति ॥

मुखिया का अर्थ पुलिस-कप्तान नही है। बहुत-से गृहपति या पिता पुलिस-कप्तान जैसे लगते हैं। उनको चौबीसों घण्टे कोप का प्राकृतिक बुखार चढा रहता है। वे आतक-बल से सबपर प्रभुत्व रखना चाहते हैं, अहकार प्रदर्शित करते है और घर में एक-दूसरे के पीछे जासूस लगाकर सबका भेद लेना चाहते है। घर में ऐसा सरकारी ढग का मुखिया न चाहिए, वहा तो सत्य-अहिसा और सेवा-भाव को अपनानेवाला अनुभवी नेता चाहिए, अर्थात् गृह-पालक को ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे लोग स्वाभाविक रीति से उसके बड़प्पन का सम्मान करे। घर में फौजी व्यवहार की क्या आवश्यकता ? वहां उद्दण्डता या सशय का

वातावरण बनाना घर को कवायद का मैदान या खुफिया पुलिस का दफ्तर बनाना है। पिता के लिए एक संस्कृत शब्द 'क्षांतु' है जिसके अर्थ में ही उसका धर्म इंगित है। पिता अर्थात् गृहाध्यक्ष की शोभा और शक्ति उसके सहनशील एवं क्षमावान् होने में ही है। उसके साधु-व्यवहार से गृह-निर्वाह होता है और अहंकारात्मक व्यवहार से गृह-दाह।

3. घर के तीन प्रकार के मुख्य प्राणियों के साथ तीन प्रकार का व्यवहार करना पड़ता है। बच्चों के साथ शुद्ध स्नेह और सरलता का व्यवहार करना उचित है। शास्त्र के मत से पुत्र-तीर्थ सब तीर्थों में श्रेष्ठ माना गया है। स्त्रियों के सम्बन्ध में शास्त्र का मत है कि उनका अपमान होने से घर में लक्ष्मी नहीं ठहरती। उन्हें हिन्दूशास्त्र गृह-लक्ष्मी मानता है। तीसरे प्रकार के मुख्य प्राणी वृद्ध-जन हैं। वृद्धों के साथ व्यवहार में बहुत सावधान रहना चाहिए, क्योंकि अशक्तता के कारण उनके स्वभाव में नीरसता, निराशा, युवकों के प्रति द्वेष-भावना, उत्साह-हीनता रहती है; अतएव वे संसार को इन्हीं दृष्टिकोणों से अपनी थकी हुई आंखों से देखते हैं। उनके साथ युवकों का दृष्टिकोण प्रायः नहीं मिलता। इस विषमता को देखकर ही सम्भवतः प्राचीन मनोवैज्ञानिकों ने यह विधान बनाया था कि निश्चित आयु के बाद वे जंगल-निवासी हो जाएं। अब यह सम्भव नहीं है। गृह-शान्ति के लिए यही आवश्यक है कि वृद्धों के साथ उचित व्यवहार किया जाए। अंग्रेजी की इस कहावत को याद रखना चाहिए कि बुढ़ापा दूसरा बचपन है।[1]

4. गृह-व्यवहार में अतिथि-सत्कार का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। उससे घर की प्रतिष्ठा और मर्यादा बढ़ती है। चाणक्य ने एक श्लोक में लिखा है कि 'आइए, यहां विराजिए, यह आसन है; बहुत दिनों के बाद दिखलाई पड़े, क्या नई बात है; बाल-बच्चों-सहित कुशल से तो हैं? मैं आपके दर्शन से बहुत प्रसन्न हुआ—इस प्रकार जो घर आए हुए का आदर से स्वागत करता है, उसके घर निःशंक मन से जाना चाहिए।' सद्गृहस्थ का यही श्रेष्ठ धर्म है कि वह घर पर आए हुए छोटे व्यक्ति को अपना बड़ा माने। वामन भी यदि अतिथि होकर आए तो उसको

1 Old age is second childhood

विराट् समझना चाहिए।

2. मित्र-नीति

1. मित्रता के व्यवहार में यह स्मरण रखना चाहिए कि मित्रगण एक-दूसरे के गोद लिए वन्धु होते है। अतः परस्पर बन्धुवत् व्यवहार ही उचित है। पराये को अपना बना लेने में मनुष्यता की बड़ी भारी विजय होती है। वह तभी सिद्ध होती है जब परस्पर सद्भावना, संवेदना प्रकट होती रहे और दोनों ओर का स्वार्थ दबा रहे। समस्वभाववालों की ही मित्रता टिकती है।

2. सहसा न तो किसीको मित्र बनाना चाहिए और न किसीका मित्र बन जाना चाहिए। बहुत-से लोग सामने स्वार्थवश मित्र और पीठ-पीछे महास्वार्थवश या स्वभाववश शत्रु का आचरण करते हैं। अंग्रेजी की इस नीति को याद रखना चाहिए कि प्रकट शत्रु, संदिग्ध मित्र से अच्छा होता है।[1] रूप और मीठी बातों के धोखे में भी न पड़ना चाहिए। तुलसी की यह उक्ति प्रायः चरितार्थ होती है: 'मन मलीन तन सुन्दर कैसे। विष रस भरा कनक घट जैसे।।' इसलिए पहले परिचित बनना चाहिए, फिर परस्परज्ञ, तब सुहृद्। सबको अंतरंग मित्र मानकर मित्रोचित व्यवहार करना घातक होता है। जो केवल समय और स्वार्थ के साथी होते है, उनसे बुद्धिमान् लोग दूर रहना पसन्द करते है। वही मित्र श्रेष्ठ होता है जो सम्पत्ति-विपत्ति मे एक-सा व्यवहार करे। विपत्ति के दिनो मे जो मित्रता जमी रहती है वही चिरस्थायी होती है। तुलसी ने कहा है कि संकट ही में मित्र की परीक्षा होती है: 'आपति-काल परखिये चारी। धीरज धरम मित्र अरु नारी।।'

✓ 3. विद्वानो के मत से अच्छे मित्र के ये लक्षण है: वह अपने साथी को अपराध करने से रोकता है, उसको हितकर कार्य में लगाता है, उसकी गुप्त बातों को छिपाता है, उसके गुणों का ढिंढोरा पीटता है, विपत्ति में साथ नही छोड़ता और समय पड़ने पर आर्थिक सहायता भी करता है:

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।

1. An open enemy is better than a doubtful friend.

आपद्गत च न जहाति, ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्त. ।।

किसीका सहृदय मित्र बने रहने के लिए इन गुणों को अपनाना चाहिए । एक मित्र को दूसरे पर इतना विश्वास होना चाहिए कि वह परस्पर वैदिक ऋषियो की भाषा में साभिमान यह कह सके कि तुम्हारे जैसे व्यक्ति का मित्र कभी विनष्ट नही होता 'न रिष्येत्त्वावतः सखा।'

4 एक-सी स्थिति अथवा एक-सी विषम स्थिति में रहनेवाले व्यक्तियो में प्राय: अधिक घनिष्ठता और पारस्परिकता होती है । कांग्रेसवालो की जेल-मित्रता इसका स्पष्ट उदाहरण है । गाढे दिनो की मित्रता प्राय. खण्डित नही होती । इसलिए किसीके हृदय पर पूर्ण विजय करनी हो तो उसके दु:ख के दिनों में उसकी सहायता करनी चाहिए । वही मनुष्यता जागती है और जब मनुष्यता जागती है तो निश्चय ही एकात्मता होती है ।

5 मित्रता करना सरल है, परन्तु उसको निभाना कठिन है । निभाने के लिए कुछ विशेष बातो पर ध्यान देना चाहिए । पहली बात तो यह है कि किसी मित्र से अनुचित लाभ लेने का दुष्प्रयास न करना चाहिए। आपस में लेन-देन का व्यवहार पारस्परिक स्नेह को कम करता है। देनेवाला बड़ा बन जाता है और लेनेवाला छोटा । इस प्रकार समानता का भाव नष्ट होने से मित्रता का तराजू ऊपर-नीचे होने लगता है । दूसरी बात यह है कि मित्रों के व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप न करना चाहिए और न किसी अवसर पर उनका उपहास ही । मित्र होने के कारण कोई अपना व्यक्तित्व नही खो देता । इसके अतिरिक्त स्वय अधिकाधिक सहनशील होना चाहिए। जल्दी भड़कनेवाले लोगो की सगति किसीको प्रिय नही लगेगी। किसी विषय में दुराग्रह वा छल-कपट करके अथवा दम्भ दिखलाकर मित्र को वशीभूत करने का प्रयास न करना चाहिए ।

कैसा भी मित्र हो, उससे अत्यधिक आशा नही की जा सकती। सबसे स्वतन्त्र स्वार्थ और सबकी स्वतन्त्र विवशताएं होती है। सज्जन

से सज्जन मित्र भी एक सीमा तक ही अपने स्वार्थ का त्याग कर सकता है। अतएव अपनी मित्रता को किसीके लिए भारस्वरूप न बनाना चाहिए। शास्त्र का यह कथन एक अंश तक मान्य है कि मित्र का भी अत्यधिक विश्वास न करना चाहिए, क्योंकि मित्र के भी मित्र होते हैं जिनसे वह गुप्त भेद प्रकट कर सकता है अथवा कभी स्वयं वैरी होकर उन बातों का दुरुपयोग कर सकता है।

6 मित्रता में छोटे-बड़े का ध्यान नही होता, परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि कोई मित्र उच्च-पदाधिकारी हो जाए और आप बाबू ही बने रहें तो भी उसके साथ समानता का दावा करे या उसके बल पर स्वयं ऐंठने लगे। इस सम्बन्ध में अंग्रेजी की यह नीति मान्य है कि उच्च-पदस्थ मित्र को अपना खोया हुआ मित्र समझना चाहिए।[1] सभी तो नही खो जाते, परन्तु अधिकाश व्यक्ति पद-मद में उन्मत्त होकर या बहकर अवश्य खो जाते हैं। यदि सज्जनतावश ऐसे लोग मित्र बने रहे, तो भी उनके बल पर स्वय बलान्ध न होना चाहिए। चिकित्सक के भरोसे कोई जान-बूझकर विष थोड़े ही खाता है! पर-बल से कोई स्वय बलवान् नही बनता।

7. मित्रता के व्यवहार में सदैव सतर्क रहना चाहिए। थोड़े संशय से भी उसका मूल नष्ट हो जाता है। बार-बार मिलने-जुलने से ही वह जीवित रहती है। परन्तु बहुत मिलने-जुलने से भी वह फीकी पड़ जाती है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्।'

3. लोक-नीति

लोक में व्यवहारकुशलता की सर्वाधिक आवश्यकता होती है, क्योंकि वहां पर भिन्न-भिन्न स्वभाव और श्रेणी के व्यक्तियों के सम्पर्क में रहना पड़ता है। लोक-व्यवहार-सम्बन्धी कुछ मुख्य-मुख्य बातें ये है :

1. शिष्टता ही लोक-व्यवहार की आत्मा होती है। शिष्टाचार और सौजन्य के प्रदर्शन से मनुष्य का बड़प्पन प्रकट होता है। इस संबध में हमें राम-रावण-युद्ध के बाद की एक घटना याद आती है। रावण रणभूमि में पड़ा था; राम ने लक्ष्मण से कहा, 'राक्षसराज लोक-नीति

1. A friend in power is a friend lost.

का और राजनीति आदि का प्रकाण्ड पडित है, उससे मृत्यु-पूर्व कुछ उपदेश ग्रहण कर आओ।' लक्ष्मण रणस्थली में जाकर उसके सिरहाने खडे हो गए। रावण के पूछने पर उन्होंने अपने आने का कारण बतलाया। नीतिज्ञ रावण ने स्वाभिमानपूर्वक कहा, 'तुम राजपुत्र होकर भी लोक-शिष्टाचार नही जानते; शिक्षा की भिक्षा मांगनेवाला शिक्षक के सिर पर नही, उनके पैर के पास खड़ा होता है और जब तक तुम लोक-मर्यादा का पालन नही करते तब तक मैं तुम्हें ज्ञानदान नही दे सकता।' लक्ष्मण तत्काल सचेत हो गए और उसके पैरों के पास विनम्रतापूर्वक खडे हो गए। रावण ने उनको उपदेश दिया कि कभी किसी कार्य को वादे पर न टालना।

शिष्टाचार का पालन बड़ों के साथ ही नही, छोटों के साथ भी उतना ही आवश्यक है। सुप्रसिद्ध विद्वान् कार्लाइल ने लिखा है कि छोटों के साथ सद्व्यवहार करके ही बड़ा आदमी अपने बडप्पन को प्रकट करता है।[1]

इस सम्बन्ध मे हमें राम का आदर्श सामने रखना चाहिए। राम अपने व्यवहार में कभी मर्यादा का उल्लंघन नही करते थे। उदाहरणार्थ वे विभीषण के भाग्य-विधाता थे, परन्तु रावण की मृत्यु के बाद जब सीता को अशोकवन से लाना था तो उन्होंने हनुमान् से कहा कि राजा विभीषण की आज्ञा लेकर लंका में प्रवेश करो और सीता को लाओ। साथ ही उन्होंने विभीषण से निवेदन किया कि सीता को लाने की अनुमति दीजिए। लका-विजेता राम के लिए यह सब आवश्यक नही था, परन्तु विजयी होकर भी वे अपनी स्वभावसिद्ध शिष्टता की मर्यादा को कैसे त्यागते!

2 सामाजिक जगत में कही भी अन्धा न बनना चाहिए, न स्वार्थान्ध होना चाहिए, न मदान्ध और न धर्मान्ध। जिसको रतौन्धी होती है उसको आकाश के नक्षत्र भी नही दिखलाई पडते। अपने को दूसरों की परिस्थिति में रखकर उनके दृष्टिकोण से भी किसी वस्तु को देखना चाहिए। सार्वजनिक बातों में व्यक्तिगत बातों का समावेश न

1 A great man shows his greatness by the way he treats little man
—Carlyle

करना चाहिए। अपनी दृष्टि में लोकाचार यदि मिथ्याचार समझ पड़े, तो भी उसको सदाचार ही मानना चाहिए। कितना भी शुद्ध लोकाचार हो, व्यक्तिगत दृष्टि से वह कुछ कृत्रिम होता ही है। समाज की रुचि के अनुकूल अपने को बनाना पड़ता है।

3. समाज में अपनी शान्तिप्रियता ही प्रकट करनी चाहिए। वाणी-व्यवहार से ऐसा न प्रकट होना चाहिए कि लोग हमें नारद का वंशधारी समझें। लोकप्रियता से लोक-सम्पत्तियां सुलभ हो जाती हैं : 'जनानुराग-प्रभवा हि सम्पदः।' (भारवि)।

4. व्यवहार में अपने स्वाभिमान और दूसरों के मानापमान का भी ध्यान रखना चाहिए। गांधीजी के इस उपदेश को ध्यान में रखना चाहिए कि बिना अपनी स्वीकृति के कोई व्यक्ति आत्मसम्मान नहीं गंवाता।[1]

कोई ऐसा कर्म न करना चाहिए जिससे अपनी हंसी हो अथवा दूसरों का मान-मर्दन हो। हास-परिहास, चाल-ढाल, रहन-सहन, वेश-भूषा सभीसे अपना गौरव प्रकट करना चाहिए। यदि कोई सुपात्र हुए विना ही चाहता है कि लोग उसका अभिनन्दन करे तो ऐसा नही हो सकता। लोग उसीके आगे नतमस्तक होते हैं, जिसको वे अपने से योग्य और सबल मानते है। मिथ्याभिमान से अपना अपमान होता है।

5. समाज में निर्बलों का मान सदैव रक्षणीय है। मुख्यतः स्त्रियों पर आंख और हाथ उठाना असभ्यता है। स्त्रियों के साथ दारुण व्यव-हार भी समाज में असह्य होता है। वाल्मीकि का यह मत है कि सज्जन लोग स्त्रियों पर कभी अत्याचार नहीं करते। लक्ष्मण जब सुग्रीव पर भयंकर कोप करके किष्किन्धा में पधारे थे तो सुग्रीव को यही नीति याद आई थी। उसने तारा से कहा कि तुम्हीं आगे जाकर मिलो क्योंकि तुम्हारे जाने से लक्ष्मण जैसे नर-श्रेष्ठ का क्रोध शान्त हो जाएगा : 'नहि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम्।' उसका अनुमान सत्य निकला।

6. यदि कहीं क्रोध करने की आवश्यकता पड़े तो वहां अपनी तेजस्विता

---

1 No person loses honour or self-respect but by his consent
—Mahatma Gandhi

का ही विज्ञापन करना चाहिए, उच्छृङ्खलता का नही। नीतिवाक्य है कि अपना तेज प्रकट करते रहना चाहिए; काठ की अग्नि का सब उल्लंघन करते है, परन्तु जलती हुई आग की उपेक्षा कोई नही करता। इसलिए शक्ति की अग्नि को प्रकट करते रहना चाहिए, परन्तु सप्रयोजन और सद्विचार के साथ। अनुचित क्रोध जो हठ, दुराग्रह या दुःशीलता से जन्मता है वह आत्मनाशी होता है। बार-बार कोप करने से वैर-भाव दृढ होता है: 'वैर प्रीति अभ्यास वश, होत होत ही होत।'

7 समाज में सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति कही न मिलेगा। अतएव यथासंभव परछिद्रान्वेषण न करना चाहिए। गुणग्राहक स्वय गुणी गिना जाता है। दूसरो के सद्गुणो से अपना लाभ लेना चाहिए, उसके दुर्गुण उसीके पास रहने देने चाहिए। सबसे सुन्दर उपदेश यह है कि लोकसुधारक बनने से पहले अपने सिद्धान्तों का स्वयं प्रयोग करके अपना सुधार करे। स्वयं बिगड़ा हुआ सुधारक या सज्जनवेशी दुर्जन मान नही पाता।

8. व्यवहारकुशल वही माना जाता है जो पर-स्थिति और परिस्थिति को ठीक-ठीक पढ लेता है, दूसरों के मनोभाव को शीघ्र ताड लेता है और समयानुकूल सहानुभूति, हर्षशोक-उद्गार प्रकट करके आत्मीयता स्थापित कर लेता है। वह न तो विरुद्ध-धी (उलटी बुद्धि-वाला) होता है और न द्विजिह्व (दो तरह की बातें करनेवाला)। मन, कर्म, वचन से एक रूप प्रकट होना ही सज्जन का लक्षण है: 'मनस्येक, वचस्येक, कर्मण्येक महात्मनाम्।' बहुरूपिये के कृत्रिम भाव-प्रदर्शन का कुछ भी मूल्य नही है।

9. सामाजिक व्यवहार में इन सबका त्याग करना चाहिए: झूठे वादे करना, किसीको धर्म-सकट मे डालना, चालाकी से काम निकालना, अपनी पहुंच के बाहर की किसी वस्तु को पाने का दुस्साहस और लोभ। इनके अतिरिक्त दो बड़े सामाजिक अपराध हैं, जिनसे प्रत्येक चतुर व्यक्ति को बचना चाहिए। प्रथम है कृतघ्नता अपराध, द्वितीय ईर्ष्या। नेपोलियन कृतघ्नता को सबसे बड़ा सामाजिक अपराध मानता था। ईर्ष्या के लिए किसी पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है कि यदि किसीको

दण्ड देना हो तो उसको किसीसे ईर्ष्या करना सिखा दो।

10. मौन रहने से समाज मे गम्भीरता प्रकट होती है, परन्तु किसी अनीति को देखकर चुप रहने से आत्मदीनता व्यक्त होती है और स्वयं दोषभागी होना पड़ता है, क्योंकि 'मौन सम्मतिलक्षणम्।' अतएव बातचीत की तरह मौन बनने में भी सावधान रहना चाहिए। अपने व्यक्तिगत कष्टों के सम्बन्ध में यथासम्भव अवश्य मौन रहना चाहिए, क्योंकि :

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखै गोय।
हँसिहैं लोग जहान के बाँटि न लेहैं कोय॥

नीतिकारों का मत है कि धन का नाश, मन का दुःख, घर का दुश्चरित, ठगी और अपमान—ये बाते बुद्धिमान् दूसरो से न कहे :

अर्थनाश मनस्तापं, गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चन चाऽपमान च मतिमान्न प्रकाशयेत्॥

गुप्त बातों के सम्बन्ध में शास्त्र का यह कथन सर्वथा मान्य है कि उनको छः कानो में पड़ने से बचाना चाहिए : 'षट्कर्ण वर्जयेत्सुधीः।'

4. व्यवसाय-नीति

कार्यवश सप्रयोजन जो व्यवहार किया जाता है, उसके लिए निम्न-लिखित कतिपय बातों पर ध्यान देना चाहिए :

1. काम को (आतुर मति से) सहसा न करे, विना विचारे काम करना घोर आपत्तियो का स्थान है, विचार कर काम करनेवाले को गुणग्राहक सम्पत्तियां स्वीकार कर लेती है :

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिण गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥ (भारवि)

2. कार्य में समय का सदैव ध्यान रखना चाहिए। कोई भी कार्य हो, वह नियत समय के पूर्व ही तैयार मिलना चाहिए। समय पर न पहुंचने से रेल ही नही, भाग्य या सिद्धि की रेल भी छूट जाती है।

3. कार्य-सिद्धि के लिए किसीसे मिलना हो तो नियत समय पर ठीक वेशभूषा में जाना चाहिए। मिलने पर पहला प्रभाव अधिक से अधिक गहरा डालना चाहिए। झेपू या उद्दण्ड न बनकर प्रगल्भता,

साहस और वेग (Push) का परिचय देना चाहिए। विपयानुकूल भाव-प्रदर्शन, वाक्य-प्रयोग और अग-चेष्टा दिखलाकर मिलनेवाले को प्रभावित करना चाहिए। अपने को सब प्रकार से मनोज्ञ वना रखना चाहिए।

4. नैपधकार के इस मत को न भूलना चाहिए कि वुद्धिमान् लोग तालाव और हृदय की गहराई को जानकर ही उसमे पैठते है :

ह्रदे गभीरे हृदि चावगाढे शसन्ति कार्य्यावतर हि सन्तः।

मानव-स्वभाव का पारखी तत्काल दूसरों के मन को पढ़ सकता है और वही कार्य मे सफल होता है। अतएव जिससे मिलना है, उसकी थाह लेकर तब आगे वढना चाहिए। उसकी मनःस्थिति को समझकर तब तर्क-आक्रमण करने में सफलता मिलती है अन्यथा अधेरे में टटोलना पड़ता है।

5 प्रत्युत्पन्नमति होने का परिचय देना, सुननेवाले के प्रति सहज उत्सुकता प्रकट करना, रचनात्मक सुझाव देना, कोमल भापा में कठोर तर्क देते हुए एकमत होने की चेष्टा दिखलाना, अपने मत का युक्ति-सम्मत समर्थन करना, दूसरे को अपना दृष्टिकोण ठीक-ठीक समझा देना और उसकी वातो को ध्यान से सुन-समझकर सप्रभाव शीघ्रतर उत्तर देना—यही व्यवहार-पटुता प्रकट करते है। समझाने का अर्थ यह है कि आपकी बुद्धि जिस दिशा में दौड़ती हो, उसी दिशा में समझनेवाले की विचारधारा भी प्रवाहित हो चले। अपने काम के लिए दूसरे की वुद्धि ही तो सच्ची व्यवहार-चातुरी है।

6 वार्तालाप में स्वष्टवादिता और उक्ति-पटुता का आश्रय लेना चाहिए, चाटुकारिता और हठवादिता का नही। वार्तालाप या व्यवहार से कोई ऐसा छल न प्रकट होना चाहिए जिसके प्रकट होने पर आगे नीचा देखना पड़े। व्यावसायिक चातुर्य (Tact) एक सीमा तक ही आवश्यक होता है। महगी चीज को सस्ती प्रमाणित करके वेचना छल नही है, परन्तु नकली चीज को असली कहना छल है। ऐसा छल पचता नहीं। यथार्थता का ध्यान सर्वत्र रखना चाहिए।

7. काम से मिलने पर मनोरंजन की वाते न करके कार्य-सिद्धि के लिए ही अवसर का उपयोग करना चाहिए। सबसे वड़ी बुद्धिमानी तो

इसमें है कि मनोरंजन के प्रसंग को भी व्यर्थ न जाने दे और उससे काम बना ले। एक बार में सफलता न मिले तो हतोत्साह न होकर दुबारा 'चढ़ाई' करनी चाहिए। निराश होकर किसी से सम्बन्ध-विच्छेद करना मूर्खता है। अंग्रेजी में कहावत है कि पहाड़ को समतल बनाकर पार करने की अपेक्षा उसको चढ़कर पार करना अधिक सुगम है।[1]

8. व्यवसाय में संघर्ष से सदैव बचना चाहिए। ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि न तो दूसरे की बात कटे, न अपनी। 'बात का खाली होना' सम्मान के विरुद्ध पड़ता है। बात बिगड़ने पर भी उसको सुलझाने का ही प्रयत्न करना चाहिए। आंख निकालने या लाल-पीले होने से व्यवहार में कटुता आती है। कहा भी है कि जिसके पास क्रोध हो उसको शत्रु की कमी कैसे हो सकती है! क्षणिक उत्तेजना में न पड़कर दूरदर्शिता से काम लेना चाहिए।

9. पत्रव्यवहार में विशेष सतर्कता की आवश्यकता होती है। किसी विषय में अपने मत को निश्चित करके वकील-बुद्धि से शब्दों को तोलकर तब संक्षिप्त पत्र लिखने चाहिए। कार्य-सम्बन्धी पत्रों में साहित्य-शैली अनर्थकारी होती है। ऐसा न लिखना चाहिए कि पढ़ने वाला खोदे पहाड़ और पाए चुहिया।

संक्षेप में यही समझना चाहिए कि युक्तिपूर्ण स्पष्ट व्यवहार से ही कार्यक्षेत्र में सफलता मिलती है। कार्यक्षेत्र में व्यवहार-निपुण होना महत्त्व प्राप्त करने का सीधा मार्ग है।

5. मूर्ख-नीति

मूर्ख के साथ व्यवहार करना सबसे कठिन है, क्योंकि वह अपनी ही बात सुनाता है और दूसरे की सुनता भी है तो कुछ का कुछ समझकर अर्थ का अनर्थ करता है। नीतिकारों ने लिखा है कि मूर्ख की कोई औषधि नहीं : 'मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।' उपाय से उसके स्वभाव को नहीं बदला जा सकता, क्योंकि वह तपाए पानी की तरह फिर ठंडा हो जाता है। सुनते हैं, एक गुरु ने अपने एक मूर्ख चेले को एक बार बताया था कि सिर पर पगड़ी बांधने से मनुष्य का सम्मान बढ़ता है। गुरु-वचन

1 It is easier to climb a mountain than to level it.

सुनकर चेला कार्यवश बाजार को चला। रास्ते में उसे ध्यान आया कि वह पगड़ी बाध लेता तो सब उसकी वड़ी आवभगत करते। सो, पास में अन्य वस्त्र न होने के कारण उसने अपनी धोती खोलकर सिर पर बांध ली और नग्न होकर वह यह विश्वास लेकर चला कि अब जो देखेगा वही उसको महामहोपाध्याय समझेगा। कथा के तात्पर्य को समझिए। मूर्ख को सिखाने मे भी अपनी और उसकी वुद्धि का लोप होता है। सबसे बडी व्यवहारकुशलता इसमें है कि मूर्ख को छेड़ा न जाए। अग्रेजी में एक कहावत है—साड की अगाड़ी, घोड़े की पिछाड़ी और मूर्ख के चारों ओर से बचना चाहिए। मूर्ख को वश मे करना हो तो उसको कुछ खिला-पिला देना चाहिए, या उसके मनोरजनार्थ कोई मीठी कथा सुना देनी चाहिए। उसके मन के अनुकूल कुछ कर देने से भी वशीकरण होता है। परन्तु इससे आत्मप्रतिष्ठा के नष्ट होने का भय रहता है। ऐसे व्यक्तियों से अलग रहने ही में वुद्धिमानी है। कीचड लगाकर उसको धोने की अपेक्षा उसको न छूना ही अच्छा है।

मूर्खो की एक अर्धशिक्षित श्रेणी भी होती है। उस श्रेणी के व्यक्ति साधारण ज्ञान से अहकार-विमूढ हो जाते है। भर्तृहरि ने लिखा है कि मूर्ख को रिझाना सहज है, विद्वान् को प्रसन्न करना बहुत ही सहज है, परन्तु अल्पज्ञान से अपने को महाज्ञानी समझनेवाले को ब्रह्मा भी नही समझा-वुझा सकते :

> अज्ञ. सुखमाराध्य. सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञ. ।
> ज्ञानलवदुर्विदग्ध ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ।। (नीतिशतक)

ऐसे व्यक्तियो के अहकार का पोषण करके उनको गद्गद वनाकर ही काम निकाला जा सकता है।

6. असाधारण नीति

मानव-समाज में सब साधु नही रहते, मायावी और दुष्ट भी रहते है और उन्हीका यहा बहुमत है। धूर्त जन्तुओ (मनुष्यों) को महात्मागण योग तथा आत्मशक्ति से भले ही वश में कर ले, परन्तु प्राय: वे युक्ति से ही वश में होते है, इसलिए वुद्धिमानो को राजनीति, कूटनीति और दण्डनीति आदि का आश्रय लेना पड़ता है। सब एक स्वभाव के नही

होते, अतः एक ही युक्ति से वश मे नही होते। परिस्थितियों के अनुसार कालज्ञ, युक्तिज्ञ और मर्मज्ञ लोग भिन्न-भिन्न उपायों से उनको वश में रखते हैं। प्रसंगवश इस सम्बन्ध की कुछ उपयोगी बातें हम यहा देते है।

1. महामुनि व्यास का कथन है कि अधिक सरल न बनो। जाकर वन-तरुओ को देखो; वहां सीधे पेड़ कटे हुए और टेढ़े पेड़ खड़े हुए मिलेगे :

नात्यन्त सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वने तरून्।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति नीरुजः॥

तुलसी ने इस बात को इस ढग से कहा है :

टेढ जानि वन्दइ सब काहू।
बक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू॥

राम भी जब साधु-भाव से समुद्र को पार करना चाहते थे तो समुद्र उनको मार्ग देने को तैयार नही था। तब राम ने अपना क्षमाभाव त्यागकर धनुप-बाण उठाया और कहा—असमर्थ समझनेवाले जन के ऊपर क्षमा करने को धिक्कार है : 'असमर्थं विजानाति धिक् क्षमामीदृशे जने' (रामायण)। समुद्र तत्काल विनीत हो गया। हैदराबाद और भारत सरकार के विषय में भी यह बात सत्य हुई।

शॉ ने गांधीजी की हत्या के बाद कहा था कि परम सज्जन होना भयावह है।[1] कम से कम साधारण समाज में बहुत सीधा बनना कष्टप्रद होता है। दुष्ट लोग सरल व्यक्ति को मेमना समझते हैं और मेमने के पीछे भेड़िये स्वभावतः लग जाते है। प्राचीन ऋषि-मुनियों को राक्षसगण घेरे रहते थे, परन्तु धनुर्धारी राम-लक्ष्मण के नाम से भी दूर भागते थे। यह स्मरण रखना चाहिए कि 'सीधे का मुंह कुत्ता चाटे।'

2. महाकवि भारवि ने लिखा है कि वे मूढ़ निश्चय ही पराभव को प्राप्त होते हैं जो मायावियो के साथ मायावी नही बनते :

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। (किरातार्जुनीय)

1. It is dangerous to be too good.

3. पंचतन्त्रकार ने लिखा है कि उत्तम को प्रणाम करके, शूर शत्रुओं में भेद-भाव पैदा करके, नीच को दे-दिलाकर और समान पराक्रम-वालो के साथ युद्ध करके विजय प्राप्त करे :

उत्तम प्रणिपातेन, शूर भेदेन योजयेत् ।
नीचमल्पप्रदानेन, सम शक्तिपराक्रमैः ।।

4. कालिदास का मत है कि केवल नीति का आश्रय लेना कायरता है और केवल शक्ति का प्रयोग करना पशुता है :

कातर्य केवला नीति· शौर्य श्वापदचेष्टितम् ।

5. महाभारत में लिखा है कि जब तक अवसर न आए, शत्रु को कन्धे पर उठाकर रखना चाहिए; समय आने पर उसको वैसे ही पटक-कर फोड डाले जैसे पत्थर पर पटककर घड़ा फोड़ा जाता है :

वहेदमित्र स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्यय: ।
अथैनमागते काले भिन्देद् घटमिवाश्मनि ।।

सिह भी पिछड़कर छलांग भरता है परन्तु सर्वत्र पिछड़ना भी ठीक नही होता है। जहा शत्रु द्वारा हानि की आशका हो, वहा पहले ही आक्रमण कर देने में बुद्धिमानी होती है। इसीलिए नीतिकारो का मत है कि आक्रमण ही सर्वोत्तम निवारण है।[1]

6. कौटिल्य-अर्थशास्त्र में लिखा है कि अपने गुणों द्वारा शत्रु के दोषो को और अपने सद्गुणो से उसके गुणों को ढक देना चाहिए :

परदोषान्स्वगुणैश्छादयेद् गुणान् गुणद्वैगुण्येन ।

7. कालिदास ने रघुवश में लिखा है कि शत्रु के छिद्र अर्थात दोप या कमजोरी को देखकर उसीपर आघात करने से विजय मिलती है : 'जयो रन्ध्रप्रहारिणाम् ।'

8. पचतन्त्र का मत है कि बुद्धिमान् लोग नाश करने के योग्य शत्रु बढाते है क्योकि गुड से वृद्धि को प्राप्त हुआ कफ अपने-आप आसानी से निकल जाता है। हिन्दी की एक कहावत है कि 'जो गुड दीने ही मरै, क्यो विप दीजै ताहि।'

9. अग्रेजी में एक कहावत है कि जब चहा विल्ली का उपहास करे

1 Offensive is the best defence

तो समझना चाहिए कि पास ही में कोई बिल भी होगा।[1]

✓ 010, जहां अकारण अत्यंत आदर हो वहां परिणाम में दुःख होने की शंका करनी चाहिए, क्योंकि बिना प्रयोजन कोई चाटुकारिता का प्रदर्शन नहीं करता :

अत्यादरो भवेद् यत्र, कार्यकारणवर्जितः।
तत्र शंका प्रकर्त्तव्या, परिणामेऽसुखावहा।।

11. शेखसादी ने कहा है कि नाज उसीपर कर जो तेरा खरीदार हो। यह सत्य है कि क्योंकि 'अन्धे आगे नाचते कला अकारथ जाये।'

12. अपने स्थान पर दृढ रहनेवाला सदा बलवान् होता है। घर के पालतू कुत्ते में भी शेर का साहस होता है। पानी मे रहने पर मगर हाथी तक को खींच लेता है, परन्तु उसके बाहर वह कुत्तों से भी तिरस्कृत होता है।

13. एक विलायती विद्वान् (फ्रैंसिस मीहन) ने अपने एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ ('दि टेम्पल ऑफ दि स्पिरिट'—मानस मन्दिर) में संघर्ष के कारणों का विवेचन करते हुए लिखा है कि देशों में, जातियो में और वर्गों में होनेवाले नाशक संघर्षों के मूल का पता लगाओ तो तुम्हें ज्ञात होगा कि सारी कटुता को फैलानेवाला कोई एक ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्ति है जिसके भीतर विरोधी मानसिक वृत्तियों का भयंकर सघर्ष चल रहा है। वह अपनी अन्तर्व्यथाओं से पीड़ित होगा; अपने मानसिक द्वन्द्व पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ होगा; क्षुब्ध अहंकारग्रस्त या भावोन्मत्त होगा; उसकी आत्मा भीतर ही भीतर पीडित होगी। इसलिए वह भीतर के विष से बाहर के वातावरण को दूषित करता है, अपनी कटुता को बाहर फैलाता है, अपने स्वभाव की शंका और घृणा को दूसरों में फैलाता है, जिसके परिणामस्वरूप बाहर कलह होती है। हम लोग ऐसे व्यक्ति को उठाने का और उच्चस्थान प्राप्त करने का अवसर देते है और प्रभावशाली पदों पर बैठे रहने देते हैं और उसके बाद आश्चर्य करते है कि विचारवान् मानव-वर्ग शान्तिपूर्वक क्यों नही रहता। एक के साथ दूसरे का संघर्ष चलता रहता है, क्योंकि प्रत्येक

1 When the mouse laughs at the cat there is a hole

व्यक्ति अपने ही साथ सघर्ष करता रहता है ।[1]

ऐसे व्यक्ति जो मानसिक द्वन्द्व को संयमित करके आत्मविजयी नही होते, समाज में निश्चय ही द्वन्द्व भावना फैलाएगे। आन्तरिक अशान्ति को मिटाकर ही बाहर शान्ति की स्थापना की जा सकती है।

14. राष्ट्र-प्रतीक प० जवाहरलाल नेहरू ने 7 सितम्बर, 1948 को भारतीय पार्लियामेण्ट में हैदराबाद के सम्बन्ध में वोलते हुए कहा था कि मेरो राय में जब कठिन परिस्थिति सामने हो तो उससे दूर भागना सबसे बड़ी गलती है, क्योकि साधारणतया अपने स्थान पर जमे रहनेवाले की अपेक्षा भागनेवाला अपने को उसी खतरे के सामने डाल देता है जिससे वह बचना चाहता है ।[2]

15. अपने अधिकारो के लिए सदैव चिल्लाना चाहिए । बिना चिल्लाए बच्चे को मा का दूध भी नही मिलता । कम से कम राजनीतिक क्षेत्र में चिल्लाने से ही कष्ट दूर होते है। हरेक गवर्नमेण्ट ऊचा सुनती है क्योकि वह ऊचाई पर बैठती है । चिल्लाना चाहिए परन्तु मनुष्य की तरह; गधे, सियार, कुत्ते, कौवे की तरह नही ।

नीति-सार

एक श्लोक मे एक नीतिकार ने सम्पूर्ण व्यावहारिक ज्ञान का सार भर दिया है। उसका कहना है कि मित्र को सरल व्यवहार से, शत्रु को युक्ति से, लोभी को धन से, स्वामी को कार्य से, विद्वान् को आदर से, युवती को प्रेम से, वन्धुओ को समानता के व्यवहार से, महाकोपी को विनय से, गुरु को अभिवादन से, मूर्ख को कहानिया सुनाकर, विद्वान्

1 Men are at war with one another because each man is at war with himself

2 I think that when we have to face a serious situation nothing can be worse than running away from it, because a person who runs away exposes himself to that very danger more than the person who sits or stands normally of course

को विद्या से, रसिक को सरसता से और सबको शील से वश में करो :

मित्रं स्वच्छतया रिपुं नयवलैर्लुब्धं धनैरीश्वरं
कार्येण द्विजमादरेण युवति प्रेम्णा समैर्बान्धवान् ।
अत्युग्रं स्तुतिभिर्गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्वुधं
विद्याभिः रसिकं रसेन सकलं शीलेन कुर्याद् वशम् ॥

7

आपका रूप कैसा है ?

अंग-प्रत्यग की वनावट का प्रभाव दूसरो पर पडता है, इसको कौन अस्वीकार करेगा ? मनुष्य का व्यक्तित्व उसके अंग-प्रत्यंग से स्वतः बोलता है। सुन्दरी स्त्री प्रमाण-पत्र लेकर नही घूमती, उसका रूप स्वय दूसरों को आकर्षित कर लेता है। किसी सुडौल और सुदृढ शरीर-वाले व्यक्ति के प्रथम दर्शन से ही लोग उसकी सत्ता को मानने लगते है। अतएव यह मानना पड़ता है कि शारीरिक वनावट में मनुष्य का व्यक्तित्व आभासित होता है।

इस विषय का विवेचन करने से पूर्व हमें यह जान लेना चाहिए कि हमारा रूप वास्तव में वैसा ही नही होता जैसा कि हम अपने विषय में कल्पना किए रहते है। मनुष्य अपने मनोभावो के अनुरूप अपने शरीर के रूप की एक मिथ्या धारणा वना लेता है और समझता है कि सव उसको उसी रूप मे पहचानते है। वह दर्पण के सामने भी अपना भावना-रंजित रूप देखता है। प्रेमासक्त होने पर वह नारद की तरह वन्दर का मुख रखते हुए भी अपने को रूपवान् समझता है। प्रेम में निराशा होने पर वह अपने सुन्दर शरीर को भी भद्दा मान लेता है। वास्तव में, वह अपनी आकृति नही, वल्कि छायाकृति देखता है। यह कल्पना कर लेता है कि हम ऐसे लगते होंगे और साथ ही यह सोचता है कि ऐसे लगते तो अच्छा होता। इस परिस्थिति में उसका रूप कम से कम उसकी दृष्टि मे विचित्र हो जाता है। दूसरो की दृष्टि में वह जैसा वाहर से है, वैसा ही लगता है, परन्तु अपनी दृष्टि में वह चित्त-वृत्ति के अनुसार कुछ का कुछ प्रतीत होता है। मानसिक द्वन्द्व के कारण वह अस्वाभाविक चेष्टाएं भी करता है, और इस भ्रम में रहता है कि सव सूक्ष्म दृष्टि से घूर-घूरकर उसीको देखते रहते है। इसलिए वह अपनी कल्पित शारी-रिक त्रुटियों को छिपाने की चेष्टा करता है।

मन की रूपरेखा का प्रभाव पडता है। मन में नारीत्व की भावना

रहने से पुरुष नारीवत् आचरण करके सोचता है कि सब उसको सुन्दर स्त्री समझ रहे हैं। वह सुन्दरी तो नही, हिजड़े जैसा लगता है। बहुत-से लोग मूंछों को ऐंठते हुए अपने वीर-रूप की कल्पना करते है, पर दूसरों की दृष्टि में विदूपक जैसे लगते है। मनोबल क्षीण होने पर मनुष्य अपने सुदृढ शरीर को भी अशक्त मान लेता है। इसी तरह रहन-सहन का प्रभाव पड़ता है। कपडे गन्दे होने पर मनुष्य सभ्य समाज में अपने को छोटा मानने लगता है। भव्य प्रासाद में रहनेवाला नाटा भी अपने को बहुत बडा समझता है। फर्स्ट क्लास का यात्री अपने को थर्ड क्लास वालों की दृष्टि में बहुत बड़ा आदमी मान लेता है। कही जीतने पर ठिगना आदमी भी अकड़कर चलता है और सोचता है कि सब उसके महान् रूप को देख रहे है।

डॉक्टर शिल्डर नामक सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक का कहना है कि मानसिक सघर्ष की अवस्था मे मनुष्य को अपने ही शरीर का वजन कुछ का कुछ जान पड़ता है। प्रसन्नता में लोग अपने ही शरीर को हल्का समझते है और सोचते है कि सब हमें हल्का ही समझ रहे है। चिन्ता-ग्रस्त होने पर शरीर भारी लगता है, परन्तु दूसरों की दृष्टि में तो वैसा ही रहता है। उच्चपद पर रहनेवाला कभी अपने आकार की छोटाई को नही समझता। हट्टा-कट्टा चपरासी अपनी दृष्टि में अपने को झुका हुआ, दबा हुआ तथा अपने से दुर्बल साहब को भी बहादुर और भीम-काय समझता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य की चित्तवृत्तियां उसके ज्ञान-तन्तु को आन्दोलित कर देती हैं और उन्हीके अनुसार मनुष्य का अपना मनोनिर्मित रूप अपनी आंखो के आगे दिखलाई पड़ता है।

जब अपने विपय में मनुष्य अपनी एक धारणा बना लेता है तो वह उसीके अनुरूप आत्म-व्यंजना भी करता है। वह अनायास नाना चेष्टाओं से अपने को सुधारने का प्रयत्न करता है। किसीकी गर्दन से अपनी गर्दन को लम्बी समझकर वह बाहर निकलने पर अपनी गर्दन को दबाए रहता है और सोचता है कि उसके कल्पित अवगुण को लोग भांप न पाएंगे। पर उसका कृत्रिम रूप विचित्र बन जाता है। स्वर के

विपय में भी ऐसी ही भ्रान्ति होती है। वहुत-से लोग अपने स्वर को कर्णप्रिय समझते है, पर दूसरो के सुनने में वह कर्कश लगता है। यह वैज्ञानिक सत्य है कि हमारी अपनी ध्वनि अपने कानो में जैसी सुनाई देती है, वैसी दूसरों के कानों में नही। हम अपनी मुनी हुई ध्वनि के आधार पर अपने व्यक्तित्व का मिथ्या रूप अपने मन में वना लेते है। वहुत-से लोगो की परीक्षा करके अमरीकन डॉक्टरों ने देखा है कि वे पहले-पहल ग्रामोफोन पर अपनी आवाज सुनकर चौंकते हैं और कहते है कि उनकी आवाज ऐसी नही है। बहुत-से लोग अपनी फोटो पहले-पहल देखकर चौकते है क्योकि वे जैसा अपने को कल्पित किए रहते हैं उससे भिन्न रूप चित्र मे देखते है। अधिकांश नये लोग चित्र खिचाते समय मूर्ख बन जाते है क्योकि वे अपनी किसी कल्पित कुरूपता को दवाने या छिपाने का प्रयास अवश्य करते हैं और वैसी दशा में उनकी आकृति विकृत एवं अस्वाभाविक हो जाती है।

इस मनोवैज्ञानिक रहस्य को समझकर तव हमे अपने या किसी अन्य के सत्य-स्वरूप को देखना चाहिए। अनुमानित रूप प्रायः सत्य नही निकलता; सत्य वह है जो प्रत्यक्ष हो। प्रत्यक्ष रूप में शरीर के कुछ लक्षण होते हैं, जिनका प्रभाव दूसरों पर पड़ता है। हम अपने को कैसा भी मान ले, हमारा रूप दूसरो की दृष्टि में वैसा ही होता है, जैसा कि अग-प्रत्यग से झलकता है।

अपने कल्पित रूप को भूलकर उन सामुद्रिक लक्षणों पर विचार करना चाहिए, जिनसे वास्तविक व्यक्तित्व प्रकट होता है। इनमें से जो लक्षण न हों, उनको यथासम्भव धारण करना चाहिए। इनको जानने से मुख्य लाभ यह है कि हम दूसरों को उनकी आकृति या शरीर-रचना से ठीक-ठीक पहचानकर व्यावहारिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं। आगे इस उद्देश्य से हम शारीरिक लक्षणों का सक्षिप्त उपयोगी विवरण देते है :

उत्तम शरीर के मुख्य लक्षण

सामुद्रिक-शास्त्र के अनुसार स्वस्थ और सुन्दर शरीर में ये लक्षण

मिलते है :

1. शरीर के पांच अंग दीर्घ होते हैं—बाहु, नयन, कुक्षि, नासापुट, वक्षस्थल।

2. चार अंग ह्रस्व होते हैं—ग्रीवा, कान, पृष्ठदेश, जंघा।

3. छः अंग उन्नत होते हैं—नाक, नेत्र, ललाट, दन्त, मस्तक, हृदय।

4 पांच अंग सूक्ष्म होते हैं—अंगुलिपर्व, दन्त, केश, नख, चर्म।

5. सात अंग लाल होते हैं—करतल, पदतल, नख, तालु, जिह्वा, अधर और नेत्र।

6. ये तीन गम्भीर होते है—स्वर, बुद्धि, नाभि।

7. तीन विस्तीर्ण होते हैं—वक्षस्थल, मस्तक, ललाट।

वाल्मीकीय रामायण में सर्वसुलक्षणयुक्त राम के सम्बन्ध में नारद के मुख से कवि ने इस प्रकार कहलाया :

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः।
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः॥
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः।
समः समविभक्ताङ्ग. स्निग्धवर्णः प्रतापवान्॥
पीनवक्षो विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥

—राम बड़े कन्धोवाला, बड़ी भुजाओवाला, शख के समान ग्रीवा-वाला, बड़ी ठुड्डीवाला, चौड़ी छातीवाला, विशाल धनुष को धारण करनेवाला, छिपी हुई हसली से युक्त और शत्रुओं का दमनकर्ता है। उसकी भुजाएं घुटनों तक लम्बी है, सिर सुन्दर है, मस्तक सुन्दर है और वह शुभागमनशील है। उसके अग न बहुत छोटे हैं, न बहुत बड़े। प्रत्येक अंग अच्छी तरह विभक्त है। शरीर का वर्ण स्निग्ध है और वह तेजस्वी है। उसका वक्षस्थल स्थूल है, नेत्र विशाल हैं। वह शोभायुक्त शुभ लक्षणों से सयुक्त है।

शरीर के ये प्रधान लक्षण है, जिनकी ओर आपका ध्यान चला ही जाता है। आप सामुद्रिक-शास्त्र से परिचित हों या न हों, इनमें से बहुत-से लक्षण जिस व्यक्ति में मिलते हैं वह आपको प्रिय लगता है। उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है। आप चुपचाप उसके व्यक्तित्व से प्रभा-

वित होते है। इनमें से बहुसख्यक लक्षण जन्मगत होते हैं, और यही यह मानना पडता है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का बहुत बड़ा अंश जन्मगत होता है। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की उक्ति यही चरितार्थ होती है। इसी जन्मगत व्यक्तित्व को अग्रेजी में Prepossessing Personality अर्थात् सहज व्यक्तित्व कहते है।

इन लक्षणो को ही सर्वस्व मानना भूल है। सबमें ये लक्षण नही मिल सकते क्योंकि सभी पुरुषोत्तम नही होते। हा, ऐश्वर्यशाली पुरुषों में इनमे से अनेक लक्षण उनके शरीर में मिलते हैं और जब आपको ऐसा लक्षण-युक्त पुरुप मिले तो उसकी व्यक्तिगत महिमा में विश्वास कीजिए। किन्तु पूर्ण विश्वास करने के पूर्व उसकी और बातों पर भी विचार कर लीजिए क्योकि सम्भव है उसने अपने साथ ही विश्वासघात किया हो। प्रकृति ने उसे सुन्दर रूप और व्यक्तित्व दिया हो, किन्तु उसने अपने चरित्र से अपना मार्ग बदल दिया हो। चन्द्र में जैसे आप कलक देखते है, वैसे ही इन अंगों में भी कलंक देख लीजिए। इस संबध में एक बात और समझने की है। यदि आपके शरीर में ये लक्षण नही मिलते तो अपने को अधम मानकर आप निराश न हो जाइए। यदि आपका मन बलवान् हो, आपकी बुद्धि सचेत हो, तो आप साधारण अगो से भी निश्चय ही महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते है। साहसी व्यक्ति मामूली लाठी से भी जगली जीवों का सामना कर लेता है। शरीर से बलवान् किन्तु मन से अशक्त प्राणी यदि कधे पर तोप रखकर भी जाए तो वह दूर से ही किसी जीव का चीत्कार सुनकर अचेत होकर गिर पड़ेगा। अतएव मन की प्रबलता की परीक्षा और बुद्धि-बल की परीक्षा पहले कीजिए और शरीर के बाह्य लक्षणों को ही कसौटी न मानिए।

शरीर के भिन्न-भिन्न अगों से मानव-व्यक्तित्व की गहराई का पता कहां तक चलता है, इसपर कुछ लिखकर तब हम मनोभावों के पढने की प्रणाली पर विचार करेंगे। जिस प्रकार एक आंख या एक कान न रहने से आपका व्यक्तित्व भिन्न ज्ञात होता है, उसी प्रकार शरीर के विशेष अगों पर कुछ लक्षणों के रहने या न रहने का असर पड़ता है।

1. सिर

सबसे प्रथम हम सिर को लेते हैं। 'सिर बड़ा सरदार का, पैर बड़ा गंवार का।'—यह उक्ति आपने अवश्य सुनी होगी। इसमें यथार्थता है। शरीर के हिसाब से यदि मनुष्य का सिर छोटा, कंगारू जैसा होता है, तो वह मूर्ख गिना जाता है। सिर सुन्दर, सुडौल, और बड़ा होने से अवश्य ही मनुष्य प्रतिभाशाली होता है, चाहे वह पढा-लिखा हो या न हो। बड़े सिर वाले को आप सज्जन मान लें, यह आवश्यक नहीं है। उसकी बुद्धि किसी भी दशा में तीव्र हो सकती है। वह दुष्टता करने लगेगा तो उसमें भी अच्छा बुद्धि-प्रयोग दिखाएगा। उसकी बुद्धि तो बन्दूक की तरह होती है, जिसे वह सिपाही की तरह भी प्रयोग कर सकता है और डाकू की तरह भी। इसी प्रकार ऐसे व्यक्ति को आप सुखी भी मान लें, यह आवश्यक नहीं। बड़ा सिर लेकर भी यदि कोई बद्धकोष्ठता का रोगी हुआ तो उसका सिर भारी हो ही जाएगा। इतना ही मानिए कि बड़े सिरवाला बड़ा दिमाग रखता है। उसमें विचार-शक्ति एवं तर्क-शक्ति होती है।

दूरदर्शी और विचारवान् का सिर लम्बा होता है। ऐसे सिरवाला मेधावी, गम्भीर, कीर्तिकामी और तत्त्वपारखी होता है, तथा साथ ही विद्यानुरागी भी। लोकमान्य तिलक का सिर ऐसा ही था। ऐसे व्यक्ति कल्पना-प्रेमी भी होते हैं। इसलिए विपरीत दिशा में जाने पर वे संदेह-ग्रस्त और भयशील भी हो जाते हैं।

अहंकारी का सिर पीछे की ओर विशेष लटका रहता है। सिर के पीछे का हिस्सा नोकदार होने से आदमी वक्र स्वभाव का; दोनों ओर उभरा होने से भावुक, रसिक और प्रेरणात्मक बुद्धिवाला होता है।

गोल सिर जो कच्छप की पीठ की तरह से उन्नत रहे, प्रशस्त माना जाता है। ऐसे सिरवाले पुरुषार्थी, स्वावलम्बी, निर्भीक, उर्वर मस्तिष्क-वाले और कष्ट-सहिष्णु होते हैं। स्वामी दयानन्द और ईश्वरचन्द्र विद्या-सागर के सिर ऐसे ही थे।

बहुत छोटे सिरवाला प्रमादी, प्रलापी, आलसी, मूर्ख या कंजूस होता है। बेडौल सिरवाला अविवेकी, चंचल, कापुरुष और

चाटुकार होता है।

सिर के वालों से भी मनुष्य की परीक्षा होती है। कोमल और चमकदार वालों से भीतर की सुकुमारता और स्वास्थ्य की कान्ति प्रस्फुटित होती है, रूखे या कड़े वालों से भीतर की अस्वस्थता और शुष्कता।

उन्नत और ताम्रवर्ण केशवाले प्रायः उन्मादी और भ्रमण करने के व्यसनी होते है। घुघराले वालोंवाले प्रायः हरएक चीज ऐसी ही पसंद करते है जो गोल हो, मुड़ी हुई या पेचदार हो। ऐसे लोग गोल चश्मा लगाना पसन्द करेगे, पहाड़ी छडी, तिरछी नोकवाले जूते या कलीदार कुरते के शौकीन होगे। उनकी चाल भी लहराती हुई होती है, वोल-चाल भी नमक-मिर्च लगी हुई और लिखावट भी गोल-मोल। इनको सीधे चलने को कहिए तो एक फर्लांग जाने पर थक जाएगे। यों घूमने-फिरने को कहिए तो शहर की सारी गलियो में चक्कर लगा आएगे। घुघराले वालवाले विलासी ही होते है, ऐसी वात नही है। वे व्यसनी अवश्य होते हैं—वह व्यसन चाहे विद्या का हो या कला का अथवा किसी दुराचार का। विद्या-व्यसनी होने पर ये लोग उपन्यास, कहानी, नाटक तथा रहस्यवाद की कविता के अनुरागी होते है। कला-प्रेमी होने पर सभी कलाओं में अच्छी प्रतिभा प्रदर्शित करते है। सगीत-साहित्य में इनकी अच्छी गति होती है। विलासी होने पर ये सवसे निर्लज्ज और दुस्साहसी हो जाते हैं। पुरुषार्थ-सम्वन्धी काम ऐसे लोग कर सकते हैं। घर की अपेक्षा वाहर ये अधिक स्फूर्तिवान् रहते है।

खड़े वालोंवाले अक्कड होते है। ऐसे लोग कारणवश मुख से मधुर हो सकते है पर प्रकृति से क्रूर, दभी या आत्माभिमानी होते हैं।

2. मुख-मंडल

मनुष्य की सवसे अच्छी परीक्षा मुखाकृति से होती है। मनुष्य का सारा इतिहास, चरित्र और स्वभाव उसके मुख पर अंकित रहता है। इनको प्राचीन काल से केवल भारतीय तत्त्वज्ञ ही नहीं, पाश्चात्य विद्वान् और लौकिकज्ञ भी मानते आ रहे है। मुख-मण्डल की वनावट से हमारे स्थायी व्यक्तित्व का पता चलता है; उसके प्रकृति-विकृत होने से हमारे

चरित्र, स्वभाव और मनोदशा का। आपने सुना होगा कि कुछ लोग किसीकी आकृति को देखकर उसके चित्त का सारा हाल भांप जाते है। इसमें सचाई है। मनुष्य अपने को वाणी द्वारा तथा व्यवहार द्वारा छिपा सकता है, लेकिन चेहरे द्वारा नही। बहुत कम लोग ऐसे है जो हृदय के भाव को चेहरे पर नही प्रकट होने देते, किन्तु उनके स्थायी भाव तो व्यंजित हो ही जाते हैं। किसीकी मुखाकृति को आप उसके व्यक्तित्व का दर्पण मान सकते हैं, लेकिन कही-कही सावधान भी रहना पड़ता है। कुछ लोग चेहरे से भोले-भाले होकर भी हृदय से कुटिल होते है। वे इसका अभ्यास किए रहते हैं कि उनके भावों की छाप उनके मुख पर न पड़े। अभ्यास से ऐसा हो भी जाता है। पर सौ में नब्वे व्यक्तियो का वास्तविक रूप उनकी आकृति से जान सकते हैं। मुख-मंडल के भिन्न-भिन्न अगों से मानव-परीक्षा इस प्रकार होती हैं।

1. ललाट—जिसका ललाट उन्नत और विशाल होता हे वह मेधावी, कुशाग्रबुद्धि, विचारशील, उन्नतिशील, यशस्वी, प्रभावशाली और विश्वासयोग्य होता है। मस्तक अर्द्धचन्द्र-सा हो और कान्ति विशिष्ट हो तो वह व्यक्ति तेजस्वी, संयमी तथा आत्मविश्वासी होता है, अनेक रेखाओं से भरा हो तो चतुर, चिन्ताशील, किसी मानसिक वेदना से ग्रस्त अथवा दार्शनिक होता है; निस्तेज, छोटा और अन्दर की ओर धंसा हो तो वह व्यक्ति मूर्ख अथवा विलासी या दभी होता है। मस्तक बहुत छोटा, ऊपर से बालों के छप्पर से छाया हुआ-सा हो तो वह व्यक्ति लापरवाह, विनोदी, मानापमान के भाव से प्रमुक्त होगा। यदि ऊपर की ओर उठा और नीचे की ओर दबा हो तो वह मनुष्य मन्दबुद्धि, आलसी, मुसीबत का मारा हुआ-सा होगा। प्रशस्त ललाटवाला उदार, शान्त, विनयी और व्यापारकुशल होता है।

2. नेत्र—आत्मा का सच्चा प्रतिबिम्ब आंखों में दिखाई पड़ता है। आपने तरह-तरह की आखों की प्रभावशालिता के विषय में कुछ न कुछ सुना होगा। किसी न किसीकी आखें ऐसी लगती है मानो अभी बोल देगी। किसीकी आखे भरी हुई पिस्तौल जैसी लगती हैं और किसीकी आंखे शराब की बोतल जैसी। किसीकी आंखो से करुणा टपकती

है, किसीसे दया, किसीसे स्नेह, किसीसे क्रोध, किसीसे सरलता और किसीसे हृदय की चचलता। मा की ममता जैसी चीज कई आंखों से टपकती है; तेजस्वी पुरुप का तेज उसकी आंखो से चिनगारी की तरह निकलता है। आंखों में विचित्र आकर्षण-शक्ति होती है, विचित्र प्रभावोत्पादक शक्ति होती है, और एक मनुष्य के सारे व्यक्तित्व को खोलकर सामने रख देने की प्राकृतिक क्षमता होती है।

खिले हुए कमल जैसी वड़ी और स्वच्छ आंखे सर्वोत्तम होती है। उनमें स्वाभाविक सरसता, कान्ति और सरलता हो तो ऐसी आंखोंवाला व्यक्ति सुखी, कीर्ति-प्रेमी, उदार, सहृदय और प्रभावशाली अवश्य होता है। वह प्रेमी, रसिक और विद्याप्रेमी विशेष होता है। लोभी की आंखे धसी हुई और तीक्ष्ण तथा चचल होती हैं। अहकारी की दृष्टि फैली हुई या फटी हुई-सी भारी और विशेप लाल होती है। दार्शनिक की आंखे वड़ी किन्तु पलकों से दबी हुई, और मद्यप की आंखे प्रायः छोटी और झुकी हुई होती है। मूर्ख की आंखें प्रायः उल्लू की आंखों की तरह गोल होती हैं। धूर्त की आंखे बिल्ली की तरह भूरी होती हैं। चंचल हृदयवाले की आखे चाहे वड़ी हो या छोटी, स्थिर नही रहती। ऐसे व्यक्ति की पलके जल्दी-जल्दी चलती है। भयाकुल, क्षुधातुर और भ्रमाकुल व्यक्ति की आखे ऐसी लगती है मानो गिर पड़ेगी। कवि और वेदनाग्रस्त व्यक्तियो की आखे तैरती हुई-सी प्रतीत होती हैं। चालाक, दुरात्मा और अविश्वस्त व्यक्ति की आंखे फीकी, छोटी कौड़ी जैसी प्रायः ऊची-नीची होती हैं। जिसके दोनों नेत्र बहुत छोटे और अन्दर को बहुत धंस गए हो तो वह मनुष्य दूसरों की सम्पत्ति पर गुप्त दृष्टि डालनेवाला और रहस्यमय जीवन व्यतीत करनेवाला माना जाता है। जिसकी आंखे एक-दूसरे के निकट होती है, वह सामुद्रिक मत से चालाक, धूर्त और उचक्का होता है। जिसकी आंखे ऊपर को उठी हुई-सी लगती हैं वह पुण्यवान्, कवि या किंकर्तव्यविमूढ़ अथवा असमर्थ होता है। सीधे आदमी की दृष्टि सीधी और कुटिल की कुटिल होती है। भीरु, अपराधी और संकोची स्वभाव वाले की दृष्टि झुकी रहती है तथा क्रोधी की वक्र।

जो जितना गम्भीर होता है उसकी पलके उतनी ही कम चलती हैं। कुछ देर गम्भीरावस्था में बैठकर आप स्वय इसकी परीक्षा कर सकते है। गम्भीर व्यक्ति की दृष्टि भी अधिक स्थिर होती है। वहुत पलके भाजनेवाला झेपू, अस्थिर और दुर्बल हृदय का होता है। दभी, अहकारी और शठ की भौहें धनुष की तरह चढी रहती हैं। विचारक की भौहे घनी और अपनी पूरी लम्बाई में बाल-चन्द्रवत् रहती है। भाग्यहीन की दोनों भौहें मिली रहती हैं। पतली पलकोंवाला तीव्र-वुद्धि, लम्बी पलकोंवाला कवित्वशक्तिपूर्ण होता है।

संक्षेप में, ऐसी आंखे जो कमलवत् या हरिण-नेत्रवत् हों, जिनका प्रान्त-भाग लाल हो, जो स्निग्ध हों और जिनका भ्रू-भाग उन्नत तथा विस्तृत हो, विशेप प्रभावशाली होती है। ऐसी आंखे जो मार्जारवत् हों, वक्र हों, जिनका भ्रू-भाग अर्द्धचन्द्रवत् या बहुत भिन्न हो या असम हो तो वे अशुभ होती हैं। रक्त-प्रान्त की लालिमा से मनुष्य की श्री व्यजित होती है।

3. कान—क्रोधी के कान खिचे से रहते है, सावधान व्यक्ति के खड़े रहते है। गृहमोही के कान भी खड़े मिलते है। शकाकुल व्यक्ति के कान बाहर निकले हुए-से और उभरे हुए प्रतीत होते है। मूर्ख और भीरु प्रायः लम्बकर्ण होते हैं तथा चोर के कान चूहे की तरह होते है। जो बहुत चौकन्ना रहता है, उसका कान खरगोश की तरह होता है। बुद्धिमान् का कान नीचे की ओर खिचा हुआ-सा मिलेगा। छोटे कानवाला कृपण और तस्कर तथा फैले हुए कानवाला धनी और उदार होता है। नोकदार कानवाला क्रूर, और मांसल कानवाला सुखी एव स्वस्थ होताहै।

यह स्मरण रखना चाहिए कि कान केवल ध्वनि-ग्रहण का ही कार्य नही करते, उनका बुद्धि से बहुत निकट-सम्बन्ध है। शरीर की इन्द्रियों में कान ही बुद्धि के सर्वाधिक समीप हैं। कानो से कुछ नसे सीधे बुद्धि-स्थल तक जाती है। जब आप किसी विषय में चिन्तालीन होते हैं तो स्वभावतः हाथ को कान पर रखकर सिर एक ओर को झुका लेते है, उससे बुद्धि पर विशेप दबाव पड़ता है। विद्यार्थियों के कान खीचते ही उनकी बुद्धि सजग और सावधान हो जाती है। आधुनिक वैज्ञानिकों

का कथन है कि कान की जड के पीछे मटर के बराबर दो ग्रन्थियां हैं वही मनोभावों को उत्पन्न और ग्रहण करती हैं। उनके अनुसार हृदय से नही, बल्कि उक्त मर्मस्थलों से भावो की सृष्टि होती है। जो भी हो, कानों की बनावट से मनुष्य की आन्तरिक प्रबलता का पता चलता है। ढीले और झूलते हुए कानो से मनुष्य का वकरीपन अवश्य प्रकट हो जाता है।

4 कनपटी—जिसकी कनपटी उभरी रहती है वह व्यक्ति अध्ययनशील, सयमी, विचारवान् और यशोभिलापी माना जाता है। दवी हुई कनपटीवाला भोगी, घनलोलुप, चिन्ताग्रस्त और दुस्साहसी होता है।

5. नाक—नाक द्वारा आदमी को पहचानना सबसे आसान है, क्योकि वह सबसे आगे रहती है और किसी प्रकार न ढकी जा सकती है और न हिलाई-डुलाई जा सकती है। वह अशोक के शिला-स्तम्भ की तरह खड़ी ही रहती है।

जिसकी नाक तोते की तरह होती है, वह कुशाग्र-बुद्धि, चतुर और राजनीतिज्ञ होता है। दीर्घ नासिकावाला गम्भीर, कार्यकुशल और आत्मविश्वासी होता है। जिसका अग्रभाग कान्तियुक्त हो वह तेजस्वी, प्रबल आत्मशक्ति-समन्वित, सयमी, उत्साही और भाग्यशाली होता है। जिसका नासाग्र निस्तेज होता है वह प्रतिभाशून्य, संयमहीन, शुष्क और प्रभावहीन होता है। यदि नाक लम्बी हो और सिरे पर कुछ उठी या मुड़ी हो तो वह व्यक्ति विवेकी और निरीक्षक होता है। यदि सिरे पर झुकी हो या ऊपर को बहुत उठ गई हो तो वह व्यक्ति चतुर और विनोदी होगा। यदि बीच में नाक दबी हो तो वह व्यक्ति जड़ होगा। चपटी नाकवाला कजूस होता है। फैली हुई नाक वाला लोभी, फूली नाकवाला क्रोधी, कामुक तथा दम्भी होता है। गोल और चपटी नाकवाला परधन इच्छुक, वक्र नासिकावाला क्रूर, स्थूल नासिका, अर्थात् शूकर जैसी नाकवाला परिछिद्रान्वेषी, निन्दक, आलसी, अल्पबुद्धि और गन्दे तथा मन्द स्वभाव का होता है। पतली नाकवाला चोर होता है और समोसे जैसी नाकवाला ऐसा विमूढ 'जिन्हहि न व्यापै जगत्-गति।'

6. मुख—प्रफुल्लित कमल जैसा मुख मनुष्य का आत्मिक सौंदर्य

प्रकट करता है। सुन्दर, सुडौल, सम और कोमल मुखवाला ऊंची मनोवृत्ति का एवं प्रसन्न स्वभाव का होता है। बहुत बड़े मुहवाला दुःखी, भिक्षुक-वृत्तिवाला एवं मूर्ख होता है। गोल मुहवाला शठ, विषम मुखवाला मुख-चपल और निकले हुए मुखवाला महामूर्ख होता है।

लाल होठोंवाला व्यक्ति गुणी, मृदु और सुकुमार होता है। पतले होंठोंवाला वक्की, झक्की और शक्की होता है। वहुत सूक्ष्म होठोंवाला दरिद्र एवं लोभी, विवर्ण होठोंवाला अल्पधी एव संतप्त होता है। वक्र होंठोवाला वक्र-बुद्धि होता है; मोटे होंठोंवाला आलसी, नासमझ, क्रोधी व महाकायर और व्यसनी होता है। दोनो होठों का स्वाभाविक ढग से मिलना शुभ माना जाता है। यदि वे मिलकर अन्दर की ओर धंसते हुए-से दिखाई पड़े तो वैसा व्यक्ति चुप्पा, रहस्यमय और भीरु होगा। यदि वे मिलकर चोच जैसे निकले हों तो वैसा व्यक्ति अस्थिरमति, विवेकहीन, वक्की तथा चाटुकार होगा। यदि नीचे का होंठ ऊपरवाले का ढक्कन जैसा लगे तो वैसा व्यक्ति दभी, पाखण्डी और स्वार्थी होगा। यदि ऊपरवाला नीचेवाले के ऊपर छप्पर की तरह लटका रहे तो वह व्यक्ति हास्य-विनोदशून्य, रसिक तथा विवेकवान् और शान्त होगा। जिसके होंठ सूखे हों वह हृदय से शुष्क व भीरु अवश्य होगा। जिसके होठ वक्र दिशा मे मिलते हों वह चालाक होगा, जिसके दोनों अधर दोनों ओर कानों पर ऊपर को मुड़ जाएं वह हठी, दंभी और क्रूर होता है।

7. दाढ़ी-मूछ—दाढी-मूछ को लोग पुरुषत्व का परिचायक मानते हैं। जिस पुरुष के दाढ़ी-मूंछ जमे ही नहीं तो उसे धूर्त या नपुंसक मानिए। उसके स्वभाव में चचलता, भीरुता और अविवेक होगा। ऐसा पुरुप अपने को स्त्रियों से भी निर्वल समझेगा। यदि वहुत कम वाल हो तो उनके स्वभाव में नारी-स्वभाव के लक्षण मिलेगे। बहुत-सी स्त्रियां भी ऐसी मिलती है जिनके श्मश्रु-देश में वाल होते हैं। उन्हें सस्कृत में पोटा या नरमानिनी कहते हैं। ऐसी स्त्रियां पुरुषों की सी चेष्टा करती है और क्रूर स्वभाव की होती है। पाश्चात्य कामशास्त्रियों का कथन है कि स्त्रियों में कामेच्छा प्रवल होने से तथा निरंतर अतृप्त रहने से उनके मुख पर वाल निकल आते है। ऐसी स्त्रियां स्वभावतः चिड़चिड़ी और

दु:शील हो जाती है।

नोकदार मूछोवाले वीर स्वभाव के होते है। खुशामदी, कंजूस, कायर और निर्वीर्य की मूछें तराजू के पलड़े की तरह लटक जाती हैं। नुकीली, स्निग्ध, कोमल और नत दाढ़ी-मूछ को लोग अशुभ मानते है। दाढी-मूछ से वहुत अच्छी मनुष्य-परीक्षा नहीं हो सकती, क्योंकि उन्हें इच्छानुसार भी इधर-उधर किया जा सकता है अथवा मुख-देश से विलकुल निर्वासित किया जा सकता है।

8. गाल—बहुत फूले हुए गालवाला आदमी या तो भोंदू होता है या विनोदी या व्यसनी अथवा आलसी। फूले हुए गाल होने पर भी हसते समय जिनके गाल में गड्ढे पड़ जाते है, वह उद्योगी, रसिक, तीक्ष्ण-बुद्धि और आत्मविश्वासी होता है। बहुत छोटे या वहुत वड़े गालोवाले आत्मशक्ति से हीन और परावलम्बी होते है। मासल और कोमल गालोंवाले सुकुमार मनोवृत्ति के होगे तथा पतले और धसे हुए गालोंवाले चिन्तनशील, परिश्रमी, यशोभिलाषी, नारी-प्रेमी और कठोर, कर्कश, उद्दण्ड तथा दृढ साहसी होंगे।

9. दात—दांतों से अन्दर की विद्युत् का पता चलता है। दातों के चमकदार होने से ज्ञात होता है कि उस व्यक्ति के शरीर में तेज है। धुधले होने से आन्तरिक मलिनता स्पष्ट होती है। मोती जैसे, विजली जैसे, कुद जैसे धवल और आभाप्रद दांत सुन्दर स्वास्थ्य के द्योतक होते हैं। बडे दातोंवाले प्राय: सुखी, प्रसन्नचित्त, सरलहृदय और बुद्धिमान् तो अवश्य ही होते हैं। दातों की पक्तियां घनी और सम होना शुभ है। वक्र दन्तवाला हिसा-बुद्धिवाला तथा वहुत छोटे दांतवाला धूर्त, चाटुकार और विश्वासघाती होता है। वहुत बड़े दांतोवाला अकर्मण्य, मूर्ख और मारा-मारा फिरनेवाला होता है। असम तथा विखरे हुए दांतोंवाला उच्छ खल होता है। वगल के दांतो के ऊपर एक नोकदार दांतवाला कुशाग्रबुद्धि और शीघ्र-चेतन होता है। निस्तेज दांतोंवाले को सदा उत्साहहीन और भीतर से बुझा हुआ मानना चाहिए।

10. ठुड्डी—विशेष चतुर की ठुड्डी नोकदार होती है। जिसकी ठुड्डी भरी और निकली रहती है वह आनन्दी जीव होता है। छोटी

ठुड्डीवाला गृहमोही, कंजूस, स्वार्थी और उद्दण्ड होता है, पतली ठुड्डी-वाला प्रेमी और रसिक तथा चौड़ी ठुड्डीवाला उदार एवं आवश्यकता से अधिक विनम्र होता है। बड़ी ठुड्डीवाला साहसी, कर्मकुशल एवं विश्वासी होता है।

आकृति-परीक्षा

सम्पूर्ण मुख-मण्डल को देखकर किसीके विषय में बहुत कुछ सरलता से जाना जा सकता है। किसीकी आकृति में भोलापन देखकर उसके स्वभाव की निष्कपटता का अनुमान सहज ही में हो जाता है। चेहरे पर सौम्यता देखकर सज्जनता का, रूक्षता देखकर कठोरता का, कोमलता देखकर सरलता का और वक्रता देखकर कुटिलता का ज्ञान देखने-मात्र से ही हो जाता है। चेहरे की स्वच्छता से स्वास्थ्य का पता तो लगता ही है, मन की स्फूर्ति का आभास भी मिलता है। मनुष्य के सभी गुणों की आभा उसकी आकृति में मिलती है। शरीर का सारा तेज मुख-मण्डल से व्यक्त होता है। आपने प्राचीन चित्रों में देखा होगा कि महापुरुषों और देवताओं के सिर के चारों ओर एक प्रकाश-मण्डल बना रहता है, उसे अंग्रेजी में 'Aurora' कहते हैं। यह प्रभा-मण्डल केवल कल्पना से नहीं बनाया जाता। वास्तव में, तेजस्वी पुरुषों के रक्त से एक प्रकार की आभा स्फुटित होती है जो कई फुट तक वायु-मण्डल पर अपना विशेष प्रभाव रखती है। प्रत्येक वस्तु जो चमकती है वह अपनी आभा फेंकती है। वह आभा मनुष्य की अन्तर्ज्योति से निकलती है। महात्मा गांधी के मुख पर जो तेज था, वह सर्वविदित है। मालवीयजी को जिन्होंने देखा है, वे भी उस तेज से परिचित होंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि किसीके मुख-मण्डल पर तेज देखकर आप उसकी तेजस्विता और प्रभाव-शक्ति को सहज में समझ सकते है। संयमहीन व्यक्ति के चेहरे पर कभी तेज की झलक न मिलेगी। आत्म-तेज—मनस्वी, गभीर, संयमी और शान्त मनुष्यों की आकृति में ही मिलता है।

जिसका चेहरा उभरा हुआ होता है वह यशोभिलाषी और क्रिया-चतुर होता है। जिसका अन्दर धसा हुआ होता है वह दुष्ट, कृपण, छली,

चिन्ताशील, मनहूस और नाना दुर्गुणसम्पन्न कहा जाता है। लटके हुए चेहरेवाला उदास और मलिन स्वभाव का तथा पर-द्वेषी होता है। सरल हृदयवाले का मुख सदैव ऐसा लगता है मानो वह मुस्करा रहा है। निश्छल स्वभाववाले हसमुख होते है। चपल एव उत्साही मनुष्य लम्बे मुहवाले होते है। वडे मुंहवाला दुःखी, दु.खदायी और अपघातक कहा जाता है। गोल मुहवाला उल्लू होता है तथा साथ ही शठ भी। छोटे मुहवाले छोटी तबीयत के, कायर तथा कामी होते है। वहुत बड़े मुख-वाला होने से विपत्तिभोगी, चौकोर होने से महाधूर्त और चौकन्ना एवं नत होने से अपराधी होना सूचित होता है। गिलहरी जैसा छोटे मुख-वाला कृपण होता है और हर काम को वचा-वचाकर करता है। 'वृहत्-सहिता' में लिखा है कि जिनके मुख गाय, वृष, सिह या गरुड़ की तरह प्रतीत होते है, वे वुद्धिमान्, चैतन्य, मनस्वी, तेजस्वी तथा उन्नतिशील होते है। वन्दर, भैंसा, सूअर या बकरे जैसे मुखवाले क्रम से उच्छृ खल, वुद्धू, नीच और निर्बल होते है। गर्दभ-मुख मे गर्दभ के सभी लक्षण रहते है।

निश्चिन्त रहनेवाले, सम्पन्न, शांतचित्त और आत्मविश्वासी के मुख पर झुरियां नही मिलती, कष्ट-सहिष्णु, परिश्रमी, चिंताग्रस्त या धनहीन के मुख पर रेखाए मुख्यत' व्यक्ति-विशेष के परिश्रम, अभ्यास और चितनशीलता का परिचय देती है। सर्वांगसुन्दर मुखवाला रसिक, भोगी, कला-सगीत-प्रेमी और जनानुरागी होता है। विकृत मुखवाला प्रपची, कटुभाषी तथा नाना विकार मन में लिए रहता है। मुख के रंग से नही, उसके गठन और उसकी स्वाभाविकता एवं समता से मनुष्य के व्यक्तित्व का पता चलता है। वुद्धिमान् का आप रग नही देखते। यदि किसीके चेहरे का ऊपरी भाग सकीर्ण और पीछे की ओर झुका हो और गाल तथा ठुड्डी का भाग विस्तीर्ण तथा आगे की ओर निकला हो तो आप भाप जाएगे कि वह दभी, महालोलुप और निकम्मा है।

मुख की आकृति की वनावट से लोग सदा से प्रभावित होते आए है। इग्लैण्ड की रानी एलिजाबेथ कहा करती थी कि किसीका सुन्दर

मुख सबसे सुन्दर प्रशसा-पत्र है।[1] इग्लैण्ड के विश्वमान्य कवि शेक्स-पियर ने भी एक पात्र के मुख से इसी बात को ध्वनित करते हुए कहा है कि मै तुम्हारे चेहरे को सम्मान, सत्यवादिता और अनुराग का एक मानचित्र मानता हूं।[2]

चेहरे की बनावट से मनुष्य-स्वभाव और चरित्र की बनावट अवश्य झलकती है, लेकिन कभी-कभी धोखा भी हो जाता है। इसलिए मुखा-कृति देखकर ही किसीको सज्जन-दुर्जन न समझना चाहिए। अभ्यास से और नाना वस्तुओ के प्रयोग से लोग तरह-तरह के मुंह बना लेते है। अंग्रेजी में अभी हाल में एक अच्छी पुस्तक निकली है; उसका नाम है, 'आइडिया हैव लेग्स' अर्थात् विचारों में बढ़ने की शक्ति होती है। उसमें लिखा है कि इस समय के सुप्रसिद्ध वक्ता चर्चिल ने अपने युवा-काल में वर्षो तक सामने शीशा रखकर मुह बनाने का अभ्यास किया था। किसी भाव को व्यक्त करते समय आकृति की बनावट कैसी होनी चाहिए, इसका अध्ययन करके उसने यथावसर अपने मुह को वैसा ही बनाना सीखा और तब वह सफल वक्ता बन सका। ऐसे धूर्तराज और भी मिल सकते है, जो अपने व्यक्तित्व को छिपाकर कृत्रिम व्यक्तित्व प्रकट करे।

सम्भवत: उक्त ग्रंथ में ही या अन्यत्र कही, हमने इटली के सुप्रसिद्ध मुसोलिनी के सम्बन्ध में पढ़ा है कि उसने लोगो को प्रभावित करने के लिए एक विचित्र प्रकार का अभ्यास किया था। किसीसे बातचीत करते समय वह अपनी आकृति में ऐसा परिवर्तन कर लेता था कि लोग उसीके वश में हो जाते थे। यह परिवर्तन वह केवल नेत्रों के सहारे करता था। आंखों को दीर्घाकार बनाकर वह पुतली के सहारे काले गोले को नेत्र-मडल के ठीक बीचोबीच अवस्थित कर देता था। इससे काले भाग के चारों ओर सफेद भाग का एक मंडल घिर जाता था और अधिक देर तक इसी प्रकार एकटक देखने पर सामने बैठनेवाला एक प्रकार से

---

1. A good face is the best letter of recommendation
2 In the face I see the map of honour, truth and loyalty
—Shakespeare

मेस्मेराइज्ड (मोहित) हो जाता था। मुसोलिनी ने भी शीशे के सामने कुछ दिनो में इसका अभ्यास कर लिया था।

इस तरह के और भी कलाकुटिल मिल सकते हैं जिनकी मुखाकृति से सहसा धोखा हो सकता है; पर नव्वे प्रतिशत आदमी चेहरे से प्रकट हो जाते हैं। सोते समय उनके चेहरे को देखकर उसकी ठीक-ठीक परीक्षा हो सकती है; अथवा जब वे हसते हों तो ध्यान से उनके चेहरे को देखिए। उस दशा में उनकी बनावट खुल जाएगी। बहुत-से ऐसे लोग मिलेंगे जो हसते हुए भी रोते-से प्रतीत होंगे क्योकि उनका हृदय रोता रहता है।

3. धड़

1. अब ग्रीवा को लीजिए। गले की बनावट से भी आदमी का कुछ पता लग जाता है। लम्बी गर्दनवाला मूर्ख, भटकनेवाला, बक्की तथा बहुत खानेवाला होता है। जिसका गला बहुत भरा हुआ रहता है वह कामी और व्यसनी होता है। जिसका गला नीचे भारी, ऊपर एकदम पतला हो, वह खा-पीकर मस्त रहने में ही जीवन की उपयोगिता मानता है। सिर एकदम कधे से जुड़ा हुआ लगे तो वह व्यक्ति परिश्रमी, शुष्क, अहकारी और कृपण होता है। शुष्क या नसों के कई भागों में बधा हुआ गला निर्धनता का चिह्न है। भैंसे जैसे गलेवाला बलवान् होता है। शख जैसी ग्रीवावाला गुणी, यशोभिलाषी और स्वाभिमानी होता है।

2. वक्षस्थल—जिसका वक्षस्थल उन्नत, चौडा और भरा हुआ होता हैं, वह सुखी, शक्तिशाली और कर्मशील होता है। ऐसा व्यक्ति स्वभाव से ही शूरवीर होता है। सकीर्ण वक्षस्थलवाला कायर, अकर्मण्य और छोटे विचारों का होता है। ऊचे वक्षस्थलवाला साहसी, उत्साही और सर्वदा सामर्थ्यवान् होता है।

3. कधा—सहनशील, परिश्रमी और पुरुषार्थी का कधा बैल की तरह उठा हुआ और मासल होता है। अपराधी का कधा स्वभावतः झुका हुआ और कृश होता है।

4. पेट और कमर—लम्बे पेटवाला बहुभक्षी, अस्थिर-चित्त और चिड़चिड़े स्वभाव का होता है। गोल पेटवाला प्रायः विनोदी, रसिक,

प्रत्येक दशा में सुखी एवं सन्तुष्ट तथा विश्वासपात्र होता है। शरीर-सम्बन्धी कार्य वह कम कर सकता है, किन्तु बुद्धिक्षेत्र में वही गणेश हो सकता है। जब आपको सरल चित्त का मित्र बनाना हो तो किसी मोटे आदमी को ढूंढ़िए। कृशोदर सबसे निकृष्ट होते है। सर्वोत्तम वे होते है जिनके वक्ष से उनका पेट थोडा नीचा होता है; न बहुत उठा हुआ, न अधिक लम्बा। पतली कमर स्त्रियों की शोभा है। पुरुष की कमर भरी हुई ही श्रेष्ठ होती है। लचकदार कमरवाले को लचकदार स्वभाव का मानना चाहिए। वह स्त्रियों का अनुरागी और पुरुषों से दूर भागनेवाला होगा। समान पेट होने से वह मनुष्य भोगी होगा।

5. हाथ—श्रेष्ठ पुरुष के हाथ उसके घुटनों तक जाते हैं। हमने सुना है कि गांधीजी के हाथ घुटनो के पास तक पहुंचते थे। अच्छे हाथ हाथी की सूंड की तरह ऊपर से क्रमशः पतले होते है; अधिक लम्बे और भरे हुए होते है। ऐसे व्यक्ति यशस्वी, कार्यकुशल, उदार, एवं शक्तिशाली होते हैं। ऐसे व्यक्ति जिनके हाथ बहुत छोटे या असमान बालों से भरे रहते हैं, वे प्रायः दुःखी और कापुरुष, बातों के बली और उलटा-सीधा काम करनेवाले होते है। जिनके हाथ ऊपर-नीचे एक-से होते हैं अर्थात् शुण्डाकार नही होते, वे प्रपंची, निष्फल क्रोधी, चालाकी के काम में पटु और कर्कश होते हैं।

6. हथेली—मनुष्य को परखने की सबसे अच्छी कसौटी हथेली है। हमने कई वर्ष पहले एक प्राचीन एवं अनुभवी फ्रेंच लेखक का एक ग्रंथ पढा था। वह ग्रंथ हस्त-विज्ञान पर था। उस लेखक ने लिखा था कि जब आप किसी नये आदमी से मिलते हैं तो हाथ मिलाते समय उसके हाथ को देख लीजिए। यदि आप हस्त-विज्ञान के दो-चार प्रमुख लक्षणों के जानकर भी होगे तो उस आदमी के स्वभाव आदि के विषय में उनसे बहुत कुछ जान जाएंगे और सतर्क होकर बातें करेगे।

हथेली पर दृष्टि डालते ही सर्वप्रथम नाखूनों पर दृष्टि डालिए। यदि वे चिकने, चमकदार, सुडौल और लाल या ताम्रवर्ण के हों तो निश्चय ही मान लीजिए कि वह व्यक्ति तेजस्वी और शरीर-मन से शुद्ध एवं स्वस्थ है। नखों के मूल में अर्द्ध-चन्द्र का चिह्न होना सुन्दर

स्वास्थ्य का परिचायक होता है। जब आपकी पाचन-क्रिया ठीक होती है और रक्त शुद्ध होता है, तब वह चिह्न उक्त स्थल पर प्रकट होता है। अस्वस्थ होने पर वह चमडे से ढक जाता है और नाखूनों पर सफेद-सफेद छीटे पड जाते है। यदि किसीके नख विवर्ण हो तो उसे तर्क-कुतर्क-प्रेमी मानिए। रूक्ष नखवाला निर्धन होता है। काले या फटे हुए नख मनुष्य की हीनता प्रकट करते है। यदि किसीके नख गन्दे हो तो वह स्वभाव का भी गन्दा होगा। किसीके नख धसे हो तो वह मन्दबुद्धि होगा। किसीके नख पिलपिले हो तो वह बड़ा निर्बल और डरपोक होगा। नखों से उगलियो की शक्ति बढती है। अतएव यदि नख मजबूत रहेगे तो उगलियां विशेष क्रियावान् होंगी, और उगलियां ही सारे हाथ को सुदृढ करती है; तथा हाथ ही मनुष्य का मुख्य सहायक एव सखा होता है। अतएव नखों पर विशेष ध्यान रखिए।

अब उगलियो पर दृष्टि डालिए। उगलियों का राजा अगूठा है। हाथ की सारी चाबी अगूठे के हाथ मे रहती है। अन्य चारों उगलिया मिलकर भी किसी वस्तु को दृढता से नही पकड सकती। जब वे अगूठे का सहयोग पाती है तभी सबल होती हैं, तभी हाथ की मुट्ठी बधती है और तभी आपकी मुट्ठी मे कोई वस्तु आती है। अगूठे को अलग खड़ा रखकर केवल चारों उगलियों को मिलाकर किसीको एक मुक्का लगाइए तो उसे कुछ भी चोट न लगेगी, किन्तु अगूठे का आश्रय लेकर मारिए तो आपकी पूरी शक्ति केन्द्रित होकर प्रहार करेगी।

अगूठे की बड़ी महिमा है। उसीसे राजतिलक होता है, उसीसे आप लिखते है और उसीसे किसी वस्तु को पकड़ते है। यदि अंगूठा न हो तो एक अक्षर भी लिखना कठिन होगा। वह न हो तो आप एक लोटा भी सीधे नही उठा सकते। अगूठा जब चैतन्य होकर खड़ा हो जाता है, उस समय चारों उंगलियां सारी शक्ति लगाकर भी हथेली को ढककर नही रख सकती। इतना प्रभावशाली अंग मनुष्य के प्रभाव और पुरुषार्थ का निश्चय ही प्रतीक होगा।

एक अग्रेजी विद्वान् ने मानव-परीक्षा की एक अच्छी युक्ति बताई है। मुट्ठी बाधने पर जिसका अगूठा चारो उगलियों के ऊपर रहता

है, वह मनुष्य आत्मविश्वासी, धैर्यवान्, चेतनावान्, शक्तिसम्पन्न, स्वाभिमानी, दृढ़निश्चयी और साहसी तथा क्रियाकुशल होता है। जो व्यक्ति अंगूठे को उंगलियों के बीच में रखकर मुट्ठी बांधता है, वह भीरु, साहसहीन, निर्बल, सन्देहग्रस्त, आलसी, अकर्मण्य, परावलम्बी और चेतनाहीन तथा चंचल-चित्त होता है। इसकी आप स्वयं परीक्षा करके देखिए। अंगूठे को ऊपर रखकर मुट्ठी बांधने से हाथ ही में नहीं, मन में भी दृढता आती है, नवीन स्फूर्ति आती है और एक प्रकार का आत्म-बल अनुभूत होता है। अंगूठे को अन्दर रखने से मुट्ठी कसकर नहीं बांधी जा सकती। इस अवस्था में मन भी ढीला रहता है और अंगूठे के बंधने से सारी आत्मा बंधी हुई-सी लगती है। अतएव स्पष्ट है कि अंगूठा हमारी शक्ति का द्वारपाल है और अपने स्थान का सरदार। यदि बच्चे अंगूठे को उंगलियों से दबाकर रखते हों तो समझिए कि वे निकम्मे होंगे। यदि आप घरेलू काम के लिए परम स्वामिभक्त सेवक चाहते हों तो ऐसे आदमी को लीजिए; वह कभी स्वतन्त्र मनोवृत्ति का न होगा। यदि आप महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए किसी व्यक्ति की खोज में हों तो ऐसे व्यक्ति को देखिए जो मुट्ठी बांधना जानता हो।

मनुष्य के अंगूठे में जन्म से ही विशेषताएं होती है। एक विशेषता तो यह होती है कि प्रत्येक व्यक्ति के अंगूठे की रेखाएं भिन्न होती है। इसलिए सरकारी कागजों पर अंगूठे के निशान लिए जाते है। सब जगह की रेखाएं बदलती रहती है। पर अंगूठे की रेखाएं सदैव एक-सी रहती हैं, यही इसका प्रमाण है कि अंगूठा हमारे स्थायी व्यक्तित्व का सच्चा प्रतीक होता है। व्यास के मत से मनुष्य की सूक्ष्म देह अथवा आत्मा अंगूठे के बराबर होती है।

अब अंगूठे की बनावट पर संक्षेप में इतना जान लीजिए। अंगूठा न बहुत बड़ा, न बहुत छोटा होना अच्छा माना जाता है। बहुत बड़े अंगूठे-वाला उच्छृंखल और असहनशील होता है। छोटे अंगूठेवाला दयाहीन, मन्द, अल्पधी और संकीर्ण विचारों का होता है। वह सुविभक्त अर्थात् उंगलियों से सुदूर रहे तथा स्वतन्त्र एवं प्रभावशाली प्रतीत हो तो मनुष्य की श्रेष्ठता का बोध होता है। उंगलियों के बहुत निकट और हथेली से

सटा हुआ होने पर वह किसी व्यक्ति की अयोग्यता प्रकट करता है। अगूठा इतना बड़ा होना चाहिए कि वह मुट्ठी बांधने पर बीच की उंगली की गाठ के ऊपर जाकर उसको ठीक से दबाकर पकड़ सके। वीर स्वभाव के मनुष्य का अगूठा नीचे स्थूल, बीच में तलवार की धार-सा उभरा हुआ और ऊपर पीछे की ओर कुछ झुका हुआ किन्तु मांसल होता है। मूर्ख का अगूठा लोटे जैसा होता है। जिसका अंगूठा जितना ही चैतन्य होगा उतना ही वह व्यक्ति भीतर से क्रियाशील और उत्साही होगा। जिसका मूल भाग पतला, ऊपर का अगुष्ठ भाग स्थूल होता है वह निर्बल होता है।

उगलियो के सम्बन्ध में कुछ जानने योग्य बाते ये है। ढीली और उभरी नसों से युक्त उंगलियोवाले कलाप्रेमी हो सकते है पर वे शक्तिमान् नही होते। अपने-अपने स्थान पर सब सुदृढ़ हों, स्वतन्त्र हों और मिलने पर बिखरी हुई-सी न लगे तो वे उगलियां मनुष्य की दृढ़ता को सूचित करती है। जिसकी उगलियों के मिलने पर किन्ही दो उंगलियों के बीच से छेद नही दिखाई देता, वह धन-संग्रह में प्रवीण एवं धनी माना जाता है। विरली उगलियां निर्धनता सूचित करती है। जिसकी हस्तांगुलियां दीर्घ होती है, वह दीर्घायु होता है। टेढ़ी-मेढी उंगलियोवाले वक्र स्वभाव के होते है।

करतल-स्निग्ध, सुकोमल, कान्तिमय और भरा हुआ रहने से मनुष्य के ऐश्वर्य, उन्नत स्वभाव और सुन्दर स्वास्थ्य का बोध होता है। निस्तेज, शुष्क और दबे पांवोंवाले कर्कश, कृपण और कठोर कर्म में अभ्यस्त होते है। चौड़ी हथेली का मनुष्य उदार और कृती, कुशल होता है। जिसका पाणितल लाल होता है, कमल जैसा लगता है, उंगलियों के मूलस्थान में उभरा रहता है, सुन्दर लाल रेखाओ से हस्ततल विभक्त रहता है, वह प्रभुतावान्, शासनप्रवीण, जनानुरागो और बुद्धिकुशल माना जाता है। जिसका पाणि-देश संकीर्ण, नतोन्नत अथवा एकदम खाली-सा लगता है, काली या धुधली रेखाओं से भरा या मुख्य रेखाओ से हीन होता है, पितृ-धन-वंचित, मृत्यु-भीत, आलसी, प्रमादी, पुरुषार्थहीन तथा केवल शारीरिक परिश्रम में कुशल होता है। सौम्य

पुरुष की हथेली न बहुत गरम होती है, न बहुत ठंडी। डरे हुए, अस्थिर चित्त और छली की हथेली ठंडी लगती है। निकम्मे आदमी की हथेली पसीने से भीगी रहती है। क्रूर, शूर और अहंकारी की हथेली गरम और कठोर होती है।

उंगलियों और अगूठे के नीचे के स्थान उभरे रहने से मनुष्य की शक्ति का आभास मिलता है। सामुद्रिक शास्त्र को आप चाहे न मानिए, पर इतना तो मानेंगे कि जिस उंगली का मूल देश उभरा रहता है, वह अधिक सजीव और सक्रिय होती है। उंगलियों की सारी शक्ति उनके मूल-देश से मिलती है। इन उभरे हुए स्थानों को सामुद्रिक भाषा में ग्रह-स्थान कहते हैं। अंगूठे के नीचे शुक्र का निशान होता है। जिसका शुक्र स्थान उच्च होता है, वह आदर्शवादी, सौंदर्य-साहित्य-संगीत-कला-नृत्य-प्रेमी, कलाविद् और शिल्प-विद्या का अनुरागी होता है। जिसका यह स्थान बहुत ऊंचा होता है वह कामी, निर्लज्ज और महाभोगी होता है। यदि यह स्थान नीचा हो तो ऐसा मनुष्य स्वार्थी, आलसी और द्वेषी तथा निकम्मा होता है। तर्जनी के मूल-देश को बृहस्पति का स्थान कहते हैं। यह स्थान बहुत ऊचा होने से मनुष्य महान् अहंकारी और उच्छृंखल होता है; ऊंचा होने से प्रभुत्व-प्रेमी, शासन-पटु और तेजस्वी होता है। नीचा होने से वंचक और नीच प्रकृति का होता है। मध्यमा उंगली के नीचे शनि-स्थान होता है। शनि-स्थान उच्च होने से मनुष्य अल्पभाषी, आमोद-प्रमोद-प्रेमी और एकान्तप्रिय होता है। उसके नीचा होने से वह व्यक्ति नीच विचारोंवाला, उद्धत और प्रायः आत्महत्या की प्रवृत्ति रखनेवाला होता है। अनामिका के मूल में रवि रहता है। उच्च रवि-स्थानवाला मनुष्य चंचल, कला-प्रेमी, खोजी और स्त्रीभक्त होता है। ऐसे व्यक्ति प्रायः लम्बे केश पसन्द करते हैं। जिसका यह स्थान नीचा होता है वह आलसी और किंकर्तव्यविमूढ होता है। कनिष्ठा के नीचे बुध का स्थान है। बुध का स्थान ऊंचा रहने से मनुष्य शास्त्रज्ञ, वक्ता, परिश्रमी, साहसी, भ्रमणशील एवं चतुर होता है। अत्युच्च होने से शठ, झूठा, विश्वासघाती और स्त्री-सुख से वंचित होता है। नीचा होने से विद्या-द्रोही, अकर्मण्य और मूर्ख होता है। हथेली के जिस हिस्से से टेक

लगाकर लिखते है, वह चन्द्र का स्थान है। जिसका यह स्थान ऊंचा होता है वह आत्मज्ञानी, सगीत-प्रेमी, आस्तिक और चिन्तनशील तथा गभीर होता है। जिसका चन्द्र-स्थान नीचा होता है, वह चिन्तन-शक्ति से रहित होता है। चन्द्र-स्थान और वुध-स्थान के बीच में तथा शुक्र-स्थान और वृहस्पति-स्थान के बीच में मगल के स्थान होते हैं। यदि अगूठे के ऊपरवाला मगल-स्थान उच्च हो तो वह व्यक्ति महासाहसी, पराक्रमी, विवाद-प्रेमी और तत्काल ज्ञानवान् होगा। चन्द्र के ऊपरवाला मगल-धाम ऊचा रहने से मनुष्य धीर, न्यायप्रिय, विनम्र, दृढप्रतिज्ञ और साहसी तथा धर्म-प्रेमी होगा। जिसके दोनों मगल-स्थान उच्च रहते हैं, वह निष्ठुर, अत्याचारी, उग्र, दुःशील, कामी और रक्तपात-प्रेमी होता है। दोनो स्थान निम्न होने से स्वभाव में अस्थिरता और भीरुता व्यजित होती है।

सामुद्रिक मत से वृहस्पति और रवि, दोनो के स्थान उच्च होने से मनुष्य धनी होता है। साथ में वुध भी ऊचा हो तो विज्ञान और न्याय-शास्त्र में प्रवीण होता है; मगल भी उच्च हो तो रणकुशल। शनि, वृहस्पति जिसके उच्च होते है वे धैर्यवान् किन्तु मूर्च्छा या वायु से आक्रान्त होते है। शनि, वुध उच्च होने से वह व्यक्ति चोर, क्रोधी और उच्छृंखल स्वभाव का होता है। शनि, मंगल की उच्चता से निर्लज्ज और क्रूर होता है।

हथेली का पिछला भाग यदि कछुए की पीठ की तरह हो तो शुभ है। वह व्यक्ति उन्नतिशील होगा जिसका पाणि-पृष्ठ समुन्नत हो, चमकदार और मुलायम हो। जिसके इस भाग में वहुत नसे उभरी हों वह कर्कश और निर्वल होगा। जिसका यह भाग वहुत फूला हो वह रोगी, निकम्मा और सुस्त होगा। जिसका सम्पूर्ण हाथ शेर के पजे जैसा लगे वह खतरनाक होगा।

7. हाथ की रेखाएं—हाथ की रेखाओं पर कुछ लिख देना भी अप्रासगिक न होगा। हस्त-रेखा विज्ञान पर प्राचीन विद्वानों ने वहुत कुछ लिखा है। पाश्चात्य विद्वानों में 'कीरो'[1] इस विषय का प्रकाड

1. Cheiro

पण्डित था। उसने इस भारतीय शास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन किया था और हस्त-रेखा से स्वयं अपनी मृत्यु-तिथि और ऐसी ही कितनी घटनाओं की पहले से ही घोषणा कर दी थी जो सत्य निकली। लार्ड किचनर की युवावस्था में ही उसने उनका भविष्यफल वता दिया था और यह भी कह दिया था कि उनकी मृत्यु जल में होगी। अन्त में सचमुच उन्हें जल-समाधि प्राप्त हुई। हस्त-रेखा की सत्यता के ये श्रेष्ठ प्रमाण है।

वास्तव में, हाथ की रेखाए व्यर्थ या केवल हाथ की शोभा-सामग्री नही होती। यदि प्रकृति ने उन्हे शोभा के निमित्त बनाया होता, तो वे इस रूप में नही, सुन्दर पुष्पो के रेखाचित्र के रूप मे होतीं। इन रेखाओं से मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्बन्ध होता है। एक-दूसरे की हस्त-रेखा नही मिलती क्योंकि सवका व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न होता है। सत्य बात यह है कि करतल सारे व्यक्तित्व का ऑफिस होता है जहां व्यवसाय-सम्बन्धी सारे बही-खाते रहते है। किसी वस्तु पर जव अन्य वस्तु की रगड़ अधिक समय तक पड़ती है तो वहां निशान पड़ जाता है। हमारे मन पर जव चिन्ता की रगड पडती है तो माथे पर वल पड़ जाता है और जब बहुत रगड़ पड़ती है, तो गालो पर झुर्रियां पड़ जाती है। हाथ की रेखाएं भी हमारी प्राकृतिक शक्तियों के सम्मिलन या सघर्ष के फल-स्वरूप वनती हैं। वे मनुष्य के व्यक्तित्व के साथ-साथ बनती-बिगड़ती है; यही इस वात का एक अच्छा प्रमाण है कि वे हमारी आन्तरिक दशा को व्यक्त करती है। आपमे यदि मनोबल हो तो आप कुछ समय में रेखाओं को वदल सकते हैं। बुद्ध के नौ तरह के हस्त-चित्र मिलते है, जिनमें नौ तरह के रेखाक्रम हैं। अवस्थानुसार और आत्मशक्ति की ह्रास-वृद्धि के साथ ये परिवर्तन होते रहते है। भीतर से स्वस्थ होने पर रेखाए लाल हो जाती है और स्वास्थ्य बिगड़ने पर या चित्तवृत्ति विकृत होने पर काली या पीली पड़ने लगती है। इससे मालूम होता है कि रेखाए आन्तरिक क्रियाओं की सूचना देती हैं।

हस्त-रेखा का विषय बहुत विस्तृत है। उनकी विशेष जानकारी के लिए आप तद्विपयक किसी ग्रथ का अध्ययन कीजिए। वहुत सक्षेप में

हम उसकी दो-चार मुख्य बातों का उल्लेख यहां पर करते है। हाथ में मुख्य लम्बी रेखाओं के अतिरिक्त कम लम्बी रेखाएं होना शुभ माना जाता है। जिसके हाथ में अधिक रेखाएं भरी रहती है, वह व्यक्ति दुःखी, कर्कश, दरिद्र, भाग्यहीन और शरीर से दुर्बल होता है। जिसके हाथ की रेखाएं लाल रंग की होती है, वह व्यक्ति वाक्पटु, उग्र और भोगविलास का अनुरागी होता है। जिसकी बहुत लाल होती है वह भयकर, क्रोधी, दुष्ट और पर-द्रोही होता है। पीली रेखावाला पित्त-पीड़ित, उग्र स्वभाव का, महत्त्वाकांक्षी, परिश्रमी और द्वेषी होता है। काली रेखाओवाला दोषी, द्वेपी, मलिनबुद्धि और मृत्यु के निकट रहनेवाला होता है।

हाथ की चार रेखाएं मुख्य होती है। वह रेखा जो मणिवंध के मध्य से उठकर अगूठे को घेरती हुई तर्जनी के नीचे जाती है उसे जीवन-रेखा या पितृ-रेखा कहते है। हथेली के मध्य में जो रेखा एक पार्श्व तक जाती है, उसे मातृ-रेखा कहते हैं। उसके ऊपरवाली प्रधान रेखा को आयु-रेखा मानते है और जो रेखा मणिवंध से उठकर सीधे ऊपर की ओर जाती है उसे ऊर्ध्व-रेखा या भाग्य-रेखा कहते है।

(दाहिने हाथ में) जिसकी पितृ-रेखा बहुत चौड़ी और कान्तिहीन होती है वह चिन्तातुर, अस्वस्थ, स्वभाव का कुटिल और आत्मशक्ति से हीन होता है। इसका शृंखलामय होना दुर्वलता एव शारीरिक अस्वस्थता का द्योतक है। यदि वह छोटी हो और हाथ की पार्श्व-सीमा तक न पहुंचे तो प्राणो का आयुर्बल कम होता है। जिसकी यह रेखा स्थान-स्थान पर खडित रहती है, वह समय-समय पर नाना प्रकार की व्याधियों से पीड़ित होता है। जिसकी यह रेखा अंगूठे के मूल प्रदेश की ओर चली जाती है उसकी पुरुपार्थ-शक्ति व्यर्थ होती है। यदि इसका मूल नाना रेखाओ से कटा हो तो वह प्राणी मिथ्याभिमानी और अस्थिर बुद्धिवाला होता है, किन्तु विवेकवान् और विश्वासयोग्य होता है। जिसकी पितृ-रेखा से एक रेखा निकलकर भाग्य-रेखा में मिलती है वह व्यक्ति यशस्वी, विद्वान् और सिद्धिसाधक होता है। जिसकी इस रेखा से उसकी मातृ-रेखा आकर नही मिलती है वह व्यक्ति हठी, उद्धत, महाभिमानी और आतुर मतिवाला होता है। ऐसा व्यक्ति हाव-भाव

दिखाने में कुशल, लम्बी-चौड़ी बातें हांकने और व्याख्यान देने में अनन्य तथा आत्मविज्ञापन में सबसे आगे रहता है। साथ ही, वह किसी काम को मन लगाकर करने में समर्थ होता है; किसी विषय का विशेषज्ञ और दुस्साहसी होता है।

जिसकी मातृ-रेखा (इसे मस्तक-रेखा कहते हैं) लम्बी और सुडौल हो वह धैर्यशाली, व्यवसायी और आत्मविश्वासी होता है। जिसकी यह रेखा खंडित होती है, उसे मस्तक में चोट लगने का भय रहता है। यदि इसके अन्त में बहुत-सी शाखाएं हों तो वह व्यक्ति बड़ा ढोंगी और विलासी होगा। यदि यह रेखा और पितृ-रेखा दोनों छोटी हों तो किसी आकस्मिक घटना से मनुष्य मरता है। यदि यह रेखा अथवा पितृ-रेखा या आयु-रेखा किसीके हाथ में न हो तो वह व्यक्ति आकस्मिक घट-नाओं या चोट आदि से विशेष कष्ट पाता है।

आयु-रेखा—(इसे हृदय-रेखा भी कहते हैं) इसके शृंखलामय होने से मनुष्य निकम्मा और कामुक होता है। यदि यह कटी न हो तो मनुष्य दीर्घजीवी होता है। जिसके दोनों हाथों में यह शाखाविहीन होती है वह अल्पायु होता है। यदि यह रेखा बीच उंगली के नीचे ही टूट जाए तो हृदय-वेदना और मानसिक कष्ट अथवा चोट का भय रहता है। जिसकी आयु-रेखा झुककर मातृ-रेखा से बीच उंगली के नीचे मिलती है उसकी हठात् मृत्यु होती है। जिसकी यह रेखा मातृ-रेखा की ओर झुकी रहे और मातृ-रेखा इस रेखा की ओर तनी रहे अर्थात् यदि बीच उंगली के निम्न भाग में आयु-रेखा और मातृ-रेखा में कम अन्तर हो, तो वह व्यक्ति रहस्यमय प्रकृति का और रिश्वती होगा अथवा अनुचित रूप से धन-संग्रह का आकांक्षी होगा। यदि इस रेखा की एक शाखा निकलकर मातृ-रेखा से मिले और बीच ही में किसी अन्य रेखा से खंडित भी हो गई हो तो उस व्यक्ति का विवाह शोचनीय होगा तथा वह व्यक्ति मानसिक कष्ट से पीड़ित होगा। कनिष्ठा के नीचे इसमें शाखाएं न रहने से पुत्र-प्राप्ति की आशा कम रहती है।

भाग्य-रेखा—(इसे भोग-रेखा भी कहते हैं) इसको हम मनुष्य के कर्म-बल को नापने का माप-दण्ड कह सकते हैं। किसीसे मिलते ही

आप उसके हाथ की ओर दृष्टि डालने पर तत्काल इस रेखा को देख सकते है और अनुमान कर सकते है कि वह व्यक्ति उन्नतिशील है अथवा नही। यदि यह रेखा मणिबध से उठकर मध्यमांगुली के मूल देश तक सीधी, अवाध जाए तो वह व्यक्ति परमसुखी और उन्नतिवान् एवं ऐश्वर्यशाली होगा। वह जिस स्थिति में भी होगा, अपने वर्ग मे सुखी और मान्य होगा। जहा यह रेखा खडित होगी, वहां मनुष्य का ऐश्वर्य खण्डित होगा। खण्डित होने पर यदि पास से दूसरी भाग्य-रेखा फिर चल पडे तो उस व्यक्ति का व्यक्तित्व पुनः प्रभावशाली होगा। यदि हथेली के बीच से यह उठे और वुध की ओर जाए तो वह व्यक्ति व्यवसाय-कुशल या विज्ञानकुशल होगा। जहां वह वक्र होगी, तो मनष्य के लिए विपत्ति सामने खड़ी होगी। यदि शुक्र के स्थान से कुछ रेखाए निकलकर इसको और पितृ-रेखा को काटे तो उस व्यक्ति को स्त्री-वियोग होगा। जिसके हाथ में यह रेखा बिलकुल नही होती वह उद्यमहीन, निराश और अर्थ-कष्ट से दबा रहता है। यदि यह रेखा पितृ-रेखा से उठे तो वह व्यक्ति मनस्वी और पौरुषवान् होता है। मूल में इसकी एक शाखा शुक्र-स्थान और दूसरी शाखा चन्द्र-स्थान की ओर जाने से वह व्यक्ति कल्पनाप्रिय और रसिक होता है। हाथ में जहां से यह रेखा चले उस अवस्था से उन्नतिकाल का आरम्भ मानना चाहिए। जहा यह रेखा मातृ-रेखा को काटती है वहां पैतीस वर्ष की आयु मानी जाती है।

8. मणिबंध—मणिवध से पुरुष के पुरुषार्थ और उसकी दृढता का पता चलता है। वीर पुरुष का मणिबध सुदृढ, सुश्लिष्ट और सधि-विशिष्ट होता है। जिसकी कलाई मजबूत होती है उसका दिल भी मजबूत होता है। लचकदार कलाईवाले का स्वभाव भी लचकदार अर्थात् चचल होता है। झुकी हुई या ढीली कलाईवाला पुरुष नारी-स्वभाव का होता है, अकर्मण्य एवं विलासी होता है। प्राचीनकाल से बहिनें भाइयो की कलाई मे राखी बाधती आ रही है, युद्धकाल में पत्नियां रण-ककण पहनाती आ रही है। यह क्यों? इसका कारण है कि वे मणिवध की दृढ़ता में विश्वास करती हैं और चाहती है कि वे झुके नही। इसीसे उक्त अग का महत्त्व प्रकट होता है।

स्वस्थ ग्रौर ऐश्वर्यशाली पुरुप के मणिवंध में तीन सरल ग्रौर सुन्दर रेखाएं होती हैं। स्वास्थ्य जितना ग्रच्छा होता जाता है, उतनी ही वे रेखाए स्पष्ट होती जाती हैं। कर्मशील व्यक्ति की कलाई खड़ी रहती है, ग्रकर्मण्य ग्रौर भीरु की झुक जाती है।

4. नितम्ब से पदतल तक

1. नितम्व—कठोर ग्रौर वहुत वडे नितम्बवाला व्यक्ति ग्रालसी, ग्रक्खड ग्रौर दभी होता है। मांसल ग्रौर उभरे हुए नितम्व का मनुष्य साहसी, शक्तिवान् तथा स्वावलम्वी होता है। नितम्बहीन व्यक्ति निकम्मा होता है।

2. जघा—हाथी की सूड या केले के पौधे जैसी जघा उनकी होती है जो शक्तिवान्, स्वस्थ ग्रौर भोगसमर्थ होते हैं। साधारण व्यक्ति की जंघाएं कुत्ते या शृगाल की तरह विरल ग्रौर मांसहीन होती है। पैर ही शरीर-सदन का खम्भा होता है। वह मजवूत होता है तो शरीर भी मजवूत होता है। वह टेढा-मेढ़ा या निर्वल होता है तो मनष्य भीतर-वाहर दोनों से निर्वल होता है। पतली टांगोंवाले ऐश्वर्यभोगी नही होते।

3. **पदतल**—उत्तम पुरुष का पदतल लाल, मांसल ग्रौर सरस रहता है। ऐसा व्यक्ति जब चलता है तो उसका पूरा पैर जमीन पर पड़ता है। मार्ग में उसके पूरे पैर की छाप मिलती है। ग्रवनतिशील व्यक्ति के पैर की पूरो छाप नही मिलती।

अंग-प्रत्यग द्वारा मनुष्य-परीक्षा के यही मुख्य लक्षण है। प्राचीन ग्रार्य ग्रथों में इनपर ग्रच्छी छानबीन हुई है। वैद्यक ग्रथो में इनपर वैज्ञानिक रीति से विचार किया गया है। सुश्रुत ने तो एक-एक ग्रंग की नाप तक निर्धारित कर दी है। उसने सारे शरीर की भी प्राकृतिक लम्वाई वताई है। उसके ग्रनुसार पदाग्र पर खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर उठाने से नीचे से कराग्र तक मनुप्य ग्रपनी उगलियो के माप से 120 ग्रगुल का होता है। चरक ग्रौर कौटिल्य के मत से साधारण रीति से खड़े होने पर पैर से सिर तक मनुष्य 84 अंगुल लम्वा होता है। 36 अंगुल का ग्रन्तर पैर ग्रौर हाथ उठाने के कारण हो जाता है। जो व्यक्ति

120 अंगुल (या समभाव से खड़े होने पर 84 अगुल) लम्वा होता है वह वैद्यक के मत से स्वस्थ, दीर्घायु और सुखी एव प्राकृतिक विभूति-सम्पन्न होता है। 'बृहतसहिता' के मत से साधारण रूप में खड़े होने पर जो 108 अगुल लम्बा हो वह साधारण श्रेणी का सज्जन होता है। 96 अंगुलवाला मध्यम श्रेणी का और 84 अगुलवाला साधारण श्रेणी का सत्पुरुष होता है। इससे कम लम्बा व्यक्ति अधम होता है। साधारणतया लोग अपने अगुलों से 84 अंगुल लम्वे ही होते है।

सुश्रुत ने अंगो द्वारा आयु-परीक्षा का विधान भी वताया है। उदाहरणार्थ, जिसके सधि-स्थल, शिराए और स्नायु गूढ़ होते है; इन्द्रियां स्थिर, शरीर पैर से सिर तक उत्तरोत्तर अधिकाधिक सुडौल होता है, वे दीर्घायु होते है। जिसके पैर छोटे, शिश्न दीर्घ, छाती की पसलियां सकुचित, पृष्ठ-भाग सकीर्ण, कान अपने स्थान से अधिक ऊंचे, नाक ऊपर चढी हुई हो और जिसके हसने पर उसके मसूड़ों का मांस दिखलाई पडता हो और जो आखों को वहुत फेरता हो, वह अल्पायु होता है। उसी प्रकार जो जन्म से ही नीरोग हो; जिसके शरीर, ज्ञान, विज्ञान की धीरे-धीरे अवस्थानुसार वृद्धि होती है; वह दीर्घायु होता है। जिसके शरीर, ज्ञान आदि की वृद्धि तीव्रता से होती है, वह अल्पायु होता है। प्राय: यह देखा जाता है कि जिनका वड़ा सुन्दर शारीरिक विकास होता है, जिनका भविष्य बड़ा उज्ज्वल समझा जाता है, उनको अल्पायु में ही काल छीन ले जाता है। सुश्रुत के निदान से इसका रहस्य समझ में आ सकता है।

वैद्यक ग्रथो मे शरीर-परीक्षा के ऐसे ही कई नियम हैं। वात, पित्त, कफ आदि के आधिक्य या क्षीणता से मानव-स्वभाव किस प्रकार का होता है, इसका वर्णन भी है। बाहरी अंग-दशा से भीतर का सारा हाल अव भी कुशल वैद्य बतला देते है। उनका विशेष उल्लेख न करके हम अव यहा पर कुछ अन्य विधियों का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

एक प्रकार की परीक्षा-विधि यह है—25 वर्ष की आयु के पति-पत्नी अपने को तोले। यदि वे करीव-करीव वराबर वजन के हो तो सुखी और परस्पर प्रेमी होगे। पुरुष स्त्री से कम भारी हो तो निर्वल,

दु:खी और स्त्री-विजित होगा। स्त्री कम भारी हो तो वह सुशीला और पति की आज्ञाकारिणी होगी। स्वर से भी मानव-परीक्षा होती है। श्रेष्ठ व्यक्ति का स्वर हाथी, रथ, भेरी, मृदग, सिह या मेघ जैसा होता है। मूर्ख का स्वर गर्दभ जैसा और दुष्ट का स्वर काक जैसा कर्कश होता है। चाल से भी अच्छी परीक्षा होती है। विना शब्द किए चलने-वाला व्यक्ति सामर्थ्यवान् और सज्जन होता है। द्रुतगामी और वहु-गामी चचल तथा आतुरमति होता है। दभी उछलता-कूदता, पैर पट-कता हुआ चलता है। श्रेष्ठ प्रकृति का पुरुष सिह, मतग, सांड या मोर की गति से चलता है। सीधे आदमी के पदतल चलते समय सीधी दिशा में पड़ते हैं; नीति-निपुण और चालाक आदमी के पजे दायें-बाये निकले रहते हैं तथा मूढ के पजे एक-दूसरे की ओर झुके हुए होते हैं।

सारांश

इन सारी बातों का सारांश यह है—मनुष्य के व्यक्तित्व का एक प्रमुख अश उसके अग-प्रत्यग की वनावट से प्रकट होता है। मनुप्य में मनोवल हो तो वह इच्छानुसार अगो को सुडौल, सतेज अर्थात् लक्षण-सम्पन्न वना सकता है। वह अगो को छोटा-वड़ा भले ही न कर सके, पर एक स्थान की कमी को दूसरे स्थान से पूरी कर सकता है। अगों की वनावट से अपनी स्वाभाविक प्रकृति को जानकर वह अधिक सावधान होकर वुद्धि-वल से उसको दबा सकता है और वह दव भी जाती है। जैसे किसी नाटे आदमी को आप देखिए; वह विशेप चैतन्य, कार्यपटु और दूसरों पर प्रभुता जमाने के लिए प्रयत्नशील मिलेगा। उसकी क्रियाएं प्राकृतिक नही, वौद्धिक होती है। इसलिए वह उस कमी को पूरा करने के लिए अधिक फुर्तीलापन, कार्यपटुता दिखाकर अपने को श्रेप्ठ दिखलाना चाहता है और द्वेपवश वड़े शरीरवालों पर शासन चलाने की मनोवृत्ति रखता है। लम्वे आदमी में यह भाव नही उठता।

सम्पूर्ण शरीर को देखिए

किसीकी परीक्षा जव आप अंग-प्रत्यग को देखकर करते है तो एकांगी दृष्टिकोण से न करिए। उसमें गलती हो सकती है। किसीका एक

अग प्रभावशाली हो सकता है, किन्तु उसीका एक विरोधी अंग विरोधी दिशा में उससे भी अधिक प्रभावशाली होकर पहले के प्रभाव को मन्द कर सकता है। अतएव सभी अगों से मनुष्य को पहचानिए। उदाहरणार्थ, यदि किसीकी नाक गोल और बगल से चपटी हो, उसकी आखें भी धंसी हों, होंठ भी पतले और जीभ भी बहुत लपलपाती हो, उसे आप लोभी समझिए। किसीकी आखे भी धसी हो, कान तने हों, भौहे वक्र हों, माथा सकुचित या सपाट हो, नाक वक्र हो, नीचे का होंठ ऊपरवाले पर शासन करता हो, तो उसे अभिमानी, क्रोधी या शीघ्रकोपी मानिए। किसीके कान खड़े हो, सिर गोल हो, नाक लम्बी हो, होंठ पतले और ठुड्डी छोटी हो तथा गर्दन लम्बी हो तो उसे गृह-मोही, स्त्री-प्रेमी मानिए। किसीकी आखें फटी-सी हों अर्थात् ऐसा लगता हो जैसे देखनेवाला आंखें फाड़-फाड़कर देख रहा हो, माथा धसा हो, केश रूक्ष या खड़े हो, सिर लम्बा, पैर पतले हो और ऐसा लगता हो जैसे उसके सब अंग शरीर के भीतर सिमटे जा रहे हैं तो उसको भयशील मानिए। जिसके गाल फूले हों, छाती पीठ की ओर विशेप झुकी हो, नाक त्रिकोण हो, सिर पीछे की ओर विशेष निकला हो, होंठ आपस में सिमटे-से हों, बाल बिखरे तथा खड़े हों, आंखे ऊपर-नीचे तनी हों, माथा या तो बहुत छोटा हो अथवा बहुत धसा हो, उसे अहकारी मानिए। जिसका मुह निकला हो, होंठ मोटे, गाल उभरे और आखे बैल जैसी हों उसको मूर्ख, आलसी, मानहीन मानिए। जिसका सारा मुंह लटका हुआ-सा हो, आवाज में भर्राहट हो, हाथ बहुत मोटे या पतले हों, वह असुखी और चिन्ताग्रस्त होगा। जिसके अग आपस में गोद से चिपकाए हुए-से लगते हैं, नाक विशेप चपटी होती है, नीचे का होंठ निकला रहता है, मुह फैला रहता है. कपाल दबा-सा रहता है, वह कंजूस होता है। जिसका मस्तक उठा रहता है, छाती चौडी और तनी रहती है, आंखे जिधर भी उठती है, सीधी दिशा मे देखती है, प्रत्येक अग नपा-तुला-सा रहता है, सिर छत्ताकार होता है, वह मेधावी, यशस्वी एव शूरवीर समझा जाएगा। जिसका भाल विशाल होता है, नासिका का अग्रभाग कुशाग्र होता है, कपाल का बुद्धि-स्थान विशाल और उठा होता है, शरीर के

सभी अंग सुविभक्त होते है, वह विशेष कार्यार्थी, उद्यमी, प्रबल विवेक, तेजस्वी और सर्वगुणसम्पन्न होता है (गांधीजी की आकृति को देखिए)। जिसका चेहरा मलिन हो, आंखे धुधली या कीचड़ से भरी हों, होंठ विवर्ण हों, ललाट निष्प्रभ हो, अग-प्रत्यग सुस्त हों, उसे आप रुग्ण, मुख्यतः उदर-विकार से ग्रस्त मान सकते हैं।

समूचे शरीर की परीक्षा करते समय आप मुख्य रूप से यह देखिए कि दांत, त्वचा, नख, रोम और केश चमकते हैं या नही। जिसके शरीर में तेज होता है, वह इन स्थानों से झलकता है। शरीर में जितने स्थान रूखे, मांसहीन और उभरी नसोंवाले होगे, वे अशुभ होंगे और बहुत क्रियाशील न होंगे। एक और बात यह देखने की होती है कि जो अंग इस समय किसी रूप में है उसका मूलस्वरूप क्या रहा होगा। स्वभाव से, खान-पान की विशेषता से और परिस्थितियों के आघात-प्रतिघात से अगों की वनावट में अन्तर आ जाता है। आप कुछ दिन चिन्ता कीजिए तो वालों की चमक निकल जाएगी; उनमें रूक्षता आ जाएगी और वे अपना प्राकृतिक रंग त्यागकर असमय में ही श्वेत हो जाएगे। आपके नेत्र कितने ही उन्नत हों, मद्य सेवन कीजिए तो वे नत हो जाएंगे। जन्म से आप अच्छी कमरवाले हो सकते है, पर वेसिर-पैर का खाना खाइए और पडे रहिए तो कमर की जगह पर तोंद निकल आएगी। अतएव मनुष्य के मूलरूप की परीक्षा करते समय उसकी परिवर्तित कर देनेवाली शक्तियों या परिस्थितियों को भी ध्यान मे रखना चाहिए—यद्यपि सत्य यही है कि शरीर की मूल प्रकृति में विशेष अन्तर नही हो सकता। जिन बच्चों की वनावट ही दुवली-पतली होती है उनमें से वहुत-से, चाहे वे कुवेर के पुत्र हों और रोज सुवर्ण और मुक्ता-भस्म खाए, तो भी दुवले ही बने रहते हैं। यदि किसी दरिद्र की वनावट अर्थात् प्रकृति में मोटापन रहता है तो वह साग खाकर भी मोटा होता जाता है। जो लोग पुनर्जन्म और कर्मफल में विश्वास करते है वे इसके रहस्य को अवश्य स्वीकार करेगे। पूर्वकर्मों के अनुसार ही मनुष्य को नया शरीर मिलता है।

अन्त में, हम पुनः कहेगे कि अंगों की वनावट को ही सर्वस्व न मान

लेना चाहिए। उनका सांचा न बदले यह ठीक है, पर उनका सस्कार प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। और मुख्य वात यह है कि मनुष्य अपनी आत्मा को प्रबल वनाकर शारीरिक असमताओ के रहते हुए भी अपना एक ऊचा व्यक्तित्व वना सकता है। महाकुरूप भी सद्‌गुणों से अपनी सारी कुरूपता को ढक सकता है। प्रकृति द्वारा किसीको सुन्दर अंग-प्रत्यग मिल सकते हैं, पर यदि उसका मन ही निर्वल हो तो वे अंग केवल मुर्दे के शरीर के आभूषण ही होगे। अतएव आप किसीकी परीक्षा करते समय उसके मन की विशेप रूप से परीक्षा कीजिए। मन की परीक्षा व्यवहार, अंग-प्रत्यग के सचालन और शारीरिक चेप्टाओं से होती है। इसपर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे।

8

संग्रह-त्याग न बिनु पहिचाने

इन बातों को ध्यान में रखिए

व्यवहार से, बातचीत से, अंग-चेष्टा या आकृति-परिवर्तन आदि से आप दूसरों की दृष्टि में कैसे लगते हैं और दूसरे लोग आपकी दृष्टि में कैसे लग सकते हैं, अर्थात् शरीर के बाहरी व्यापार से उनके मनोभावो या व्यक्तित्व का पता कहां तक और कैसे लगता है, इसको समझने के लिए इन कुछ बातों को ध्यान में रखिए :

1. मन ही सब इन्द्रियो के प्रवर्तन का हेतु है : 'मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्त्तने' (वाल्मीकि)—यह महाबुद्धिमान् हनुमान् की उक्ति है। मनुष्य के शरीर का प्रत्येक अंग मन के आदेश से ही सचालित होता है। मन में जैसे विचार उठते है, शरीर के अंग उन्हीके अनुकूल व्यक्त होते है। मन की चैतन्यता से इन्द्रिया चैतन्य होती है, उसके शिथिल होने से वे शिथिल पड़ती है और उसके अस्त-व्यस्त होने से वे भी भूले करती है। साराश यह है कि अंग-प्रत्यग की चेष्टा से मन की चेष्टा या मनोवृत्ति का ज्ञान हो सकता है।

2. मनोभाव के लक्षण शरीर पर तुरन्त ही प्रकट होते हैं—मन अपने को छिपाकर नहीं रख सकता। आकृति से, वाणी से, व्यवहार से या किसी चेष्टा से वह अपनी दशा को अभिव्यंजित कर देता है। इसको इन उदाहरणो से समझिए। जब मन कांपता है तो वाणी कांपती है, हाथ-पैर भी कांपने लगते हैं। मन सन्देहग्रस्त रहता है तो वाणी अस्पष्ट हो जाती है, आंखें स्थिर हो जाती है और अंगों की क्रिया-शक्ति मंद पड़ जाती है। किसी बात से जब मन फड़कता है तो शरीर के कोमल स्थान भी फड़कते है। जब मन भयभीत होता है तो हृदय जोर से धड़कता है, रोएं खड़े हो जाते हैं, शरीर के सब अंग विकल हो जाते हैं। जब मन कांपता है तो पलके बार-बार झपकती है। वह जब लोभग्रस्त होता है तो लार टपकने लगती है। वह जब चौंकता है तो कान खड़े हो जाते है।

जब वह हत्या करने का निश्चय करता है तो आंखों में खून सवार हो जाता है। वह जब क्रुद्ध होता है तो सांस की गति बढ़ जाती है, चेहरा लाल हो जाता है, अंग-प्रत्यंग फड़कने लगते हैं। उसपर कोई आकस्मिक आघात पहुंचता है तो चेहरा सफेद हो जाता है। मन के वेदनाग्रस्त होने पर स्वर भारी और शिथिल हो जाता है। और सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि जब कोई माता अपने छोटे बच्चे के मोह से व्याकुल होती है या उसकी कीर्ति-कथा सुनकर आनन्द-विह्वल होती है तो उसके स्तनों से दूध टपकने लगता है। इन सबसे यह स्पष्ट है कि आपके भाव-जगत् की छाया आपके बाह्य जगत् पर पड़ती है। बहुत कम लोग अपने भावों को पचाने में समर्थ होते हैं। इनको या तो योगी पचा सकता है या परम विमूढ अथवा कोई निर्लज्ज फक्कड़। साधारण व्यक्ति जब मनोभावों को दबाता है तो उसे नाना विकार हो जाते हैं। कभी-कभी देखा गया है कि कोई स्त्री अपने बच्चे की मृत्यु के बाद संस्तब्ध हो जाती है, उसके मुख से न आवाज निकलती है, और न आंख से आंसू की धारा। उस दशा में लोग उसे रुलाने का प्रयत्न करते हैं अन्यथा उसके पागल होने या मर जाने की आशंका रहती है। साधारण दशा में मनोभाव अभिव्यक्त हो ही जाते हैं और अंग-प्रत्यंग उनको छिपा नहीं सकते, क्योंकि वे शरीर के स्वतन्त्र अवयव नहीं होते। मन की हवा चलने से तन-तरुवर के सभी पत्ते हिलते हैं और उनके हिलने से हवा का रुख और उसकी तेज़ी का पता चल जाता है।

3. स्वभाव मूर्द्धा पर रहता है: 'स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते (हितोपदेश)। आपका स्वभाव प्रत्येक बात में आगे रहता है, प्रत्येक काम में सामने दिखलाई पड़ता है और उसके अनुसार आप व्यवहार करते हैं या किसीके व्यवहार से प्रभावित होते हैं। वह आपकी आकृति से प्रकट होता है; स्वर से, दृष्टि से प्रकट होता है तथा बातचीत के विषय एवं उसके ढंग से और आपके सम्पूर्ण आचरण से प्रकट होता है। साथ ही, आपके स्वभाव की विभिन्नता से इन सबमें विभिन्नता आ जाती है। अतएव किसीके ज्ञान आदि को देखने के पूर्व उसके स्वभाव से उसकी मनुष्यता की परीक्षा कीजिए।

स्वभाव की वहुत-सी विशेपताएं जन्मगत होती है। पूर्व सस्कारों और वाल्यकाल के वातावरण के अनुसार मनुष्य की प्रकृति का सच्चा निर्माण और विकास होता है, इसे सभी स्वीकार करते है। आगे चलकर मनुष्य परिस्थितियों के अनुसार और ज्ञान-विवेक के अनुसार भी अपने स्वभाव का परिष्कार करते है। यहां यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि मनुष्य अपने मस्तिष्क के केवल 1/8 भाग पर ही शासन करता है, शेप 7/8 भाग उसके स्वभाव या उसकी आदतो से ही अपने-आप शासित होता है। यह भी कह देना असगत न होगा कि मनुष्य में 75 प्रतिशत वुद्धिभाग जन्मगत होता है। विद्या, अभ्यास, अनुभव से यह केवल 25 प्रतिशत ही उसमे मिलाता है। इन सवसे अन्तर्मन और उसके सस्कारों की महत्ता समझ में आ सकती है। यदि स्वभाव पर आरम्भ से ही नियत्रण न रखा जाए तो आगे चलकर ज्ञान-वल से उसका सुधार नही होगा। सव प्रकार से यही स्पष्ट है कि ज्ञान की अपेक्षा स्वभाव से किसीके व्यक्तित्व की परीक्षा करना अधिक सुगम है। किसीका स्वभाव अच्छा होगा तो उसका प्रेरणात्मक ज्ञान उसका सहायक ही होगा। स्वभाव विपरीत होगा तो उसकी चेतन-वुद्धि भी विपरीत दिशा में कार्य करने वाली होगी। वुद्धि-वल से और जिह्वा-वल से कभी-कभी स्वभाव को छिपाया जा सकता है, पर सर्वदा नही।

4. रूप के मोह में न पड़िए—किसीके रूप को देखकर ही उसको प्रधानता न दीजिए। आचरण से भी उसकी परीक्षा कीजिए। वेश्या रूपवती होकर भी दुराचारिणी होती है। कस्तूरी को काली समझकर फेंकने की चेप्टा न कीजिए। तालाव की पहली ही सीढी तक जाने से उसकी गहराई का अनुमान नही होता; और अन्दर तक जाइए। कोई आपसे मिलता है तो उसकी सफेद कमीज देखकर ही स्वच्छता-प्रेमी न मान लीजिए। उस कमीज के नीचे भी देखिए, वहां शायद एक वड़ी गन्दी वनियान मिलेगी जो गन्दे स्वभाव के सर्टीफिकेट की तरह उसके गले मे टंगी होगी।

किसीके मुख से सीता-सावित्री के उपाख्यान सुनकर ही उसको महात्मा न मान लीजिए। उसके कमरों की दीवारों पर भी दृष्टि डालिए,

सम्भव है वहा उसके स्वभाव को प्रिय लगनेवाली ससार की चुनी हुई कुलटाओ के चित्र टगे मिले। उसके ग्रामाफोन के रिकार्ड देखिए। हो सकता है. वह आपको भजन सुनाता हो और घर में कव्वालियां सुनकर अपनी स्वाभाविक तृप्ति करता हो। उसकी मेज को नही, पुस्तकालय को देखिए। मेज पर सम्भव है वह धर्मशास्त्र के ग्रथ रखता हो और पुस्तकालय मे सचित्र कोकशास्त्र मिल जाए। किसीको स्वच्छता कहां तक प्रिय है, इसे जानना हो तो उसका बैठकघर नही वल्कि उसका रसोईघर देखना चाहिए। किसका जीवन कहां तक सुखी है, इसको उसकी आकृति पर नही, उसके स्त्री-वच्चो की आकृति पर पढना चाहिए। किसी कवि के व्यक्तिगत जीवन के आनन्द को उसके काव्य से नही बल्कि उसके रोजनामचे से जानना चाहिए। काव्य में तो वह सुवर्णकोष लुटाता होगा, पर निजी जीवन में सम्भवतः दूसरो से रुपये उधार लेकर जीविका चलाता हो। किसीका साहस-वल उसके शब्दों में न देखिए और न उसकी सम्पत्तिशालीनता की अवस्था मे। विपत्ति मे देखिए उसकी जिह्वा तेज चलती है या उसके पैर। मित्र की परीक्षा अपने सुख के दिनों में नही, सकट के दिनो में कीजिए। दाढी देखकर किसीको सरदार न मान लीजिए, वल्कि देख लीजिए उसके पास सरदार का दिल भी है या नही। रुपये की गोलाकृति और उसकी चमक-दमक देखकर ही उसको खरा न मान लीजिए, उसे बजाकर भी देख लीजिए, हो सकता है, वह जाली या खोटा निकले। प्रत्येक वस्तु के सामान्य रूप को नही, उसके विशिष्ट रूप को भी देखकर तव उसके विपय में निर्णय कीजिए। मनुष्य की योग्यता-अयोग्यता को सम्भवतः उसके रूप से आप न पढ़ पाए, पर उसके कार्य, व्यवहार और स्वभाव के विज्ञापन से अवश्य पढ लेगे।

इस सम्वन्ध में आप उस उपदेश को याद रखिए जो मछलियों ने राम को दिया था। पम्पासर में बगुलों की ओर लक्ष्मण की दृष्टि आकृष्ट करके राम ने कहा था कि हे लक्ष्मण! देखो, यह जीव कैसा साधु है; धीरे-धीरे पैर उठाकर रखता है; डरता है कि कही उसके पैरों के नीचे किसी जीव की हिंसा न हो जाए। सरोवर की मछलियों ने इसको

सुनकर तत्काल कहा—हे राम! तुम क्या कह रहे हो, इस धूर्त ने हमारे वंश के वंश निर्मूल कर दिए हैं—साथ रहनेवाला ही साथी के चरित्र को जान सकता है: 'सहवासी विजानाति चरितं सहवासिनः।'

5. देश, काल, परिस्थिति को ध्यान में रखिए—किसी व्यक्ति अथवा किसी वस्तु का निरूपण करते समय देश-काल और परिस्थिति के अनुसार विचार कीजिए। विचार ही न कीजिए, अपने जीवन में भी आप देश, काल, परिस्थिति के अनुकूल सुधार कीजिए; जिससे आप सामयिक बन सके। 'जैसा देस वैसा भेस' की कहावत न भूलिए। यदि पण्डित जवाहरलाल नेहरू भारतवर्ष में हिन्दू-राज्य की स्थापना का विरोध करते है तो आप उन्हें हिन्दू-द्रोही कहने से पहले एक बार इन बातों पर भी विचार कर लीजिए कि आप एक ऐसे देश में है जहां और भी धर्मों के लोग स्वाधिकारपूर्वक रहते हैं; आप एक ऐसे काल में हैं जिसे बीसवी शताब्दी कहते हैं और जिसमें सर्वत्र प्रजातंत्र राज्यों की स्थापना हो रही है, और आप एक ऐसी परिस्थिति में है जिसमें धर्मान्धता से देश-समाज की हानि हो सकती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से आप वञ्चित हो सकते है। समय परिवर्तनशील है और समय के साथ सभ्यता का प्रत्येक अंग परिवर्तनशील है। सम्भवतः हम-आप उस युग में होते जब राजनीति धर्म की एक शाखा-मात्र थी और सौभाग्य से यही पण्डित जवाहरलाल नेहरू होते और सभी आधुनिक साधन भी सुलभ होते, तो यह सम्भव था कि धार्मिक भावना से प्रेरित होकर गवर्नमेण्ट ऐसे ही नियम बना देती कि रेलें साइत से चलें, दिशाशूल में न चलें; गार्ड लोग सीटी नहीं, शंख बजाया करे; गाड़ी चलते समय गार्ड के डिब्बे में हवन और मंगल-स्तोत्र का पाठ होता चले जिससे यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो जाए। पर वर्तमानकाल में ऐसी बातों की कल्पना करना भी मूर्खता है।

यह तो सार्वजनिक विषयों के सम्बन्ध में हुआ। व्यक्तिगत व्यवहार में भी हमारी परीक्षा इसीसे होती है कि हम समय के साथ कहां तक आगे बढ़ रहे है। आप किसीसे मिलते हैं तो इसी दृष्टि से उसको देखिए। इस बात को विवेकपूर्वक देख लीजिए कि वह व्यक्ति जैसा

आचरण कर रहा है, वैसा करने के लिए वह बाहरी वातावरण से कहां तक विवश है। अपने को उसकी परिस्थिति में रखकर तब उसके व्यक्तित्व को तोलिए।

इस प्रश्न को और भी निकट से तथा अन्य प्रकार से देखिए। कभी-कभी एक ही प्रकार का कर्म भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पड़कर भिन्न हो जाता है; उदाहरणार्थ, साधारण दशा में कोई व्यक्ति किसीकी हिंसा करता है तो वह हत्यारा माना जाता है और फांसी पर लटका दिया जाता है। युद्ध में शत्रु-हिंसा करने पर वही व्यक्ति शूरवीर और राजसम्मान का पात्र माना जाता है। कर्म एक ही प्रकार का होने पर भी परिस्थितिया कर्ता के रूप को भिन्न कर देती हैं। यदि आप परिस्थितियों को न जाने और इतना ही जाने कि अमुक व्यक्ति ने दस आदमी मार डाले तो आप उस व्यक्ति को महाहिंसक मान लेंगे। एक अन्य उदाहरण लीजिए। एक समय था जब हिटलर विजेता की स्थिति में था। उसकी सेनाए दिग्विजय करती हुई सारे विश्व को कपा रही थी। उस समय लोग उसे सर्वशक्तिमान, ऐतिहासिक युग का सर्वश्रेष्ठ योद्धा मानते थे। कालान्तर में परिस्थिति ने पलटा खाया। अब किसीको हिटलर के वीर-रूप का ध्यान नही आता; सब उसकी अदूरदर्शिता और अमानुपिकता की कथाए कहते-सुनते ही हैं। उसकी विशेषताओं को कोई सोचता भी नही। परिस्थितियो का इतना प्रभाव किसीके व्यक्तित्व पर पड़ सकता है! विजेता हमारी दृष्टि में सदा से देवतुल्य हो जाता है और विजित रावण का अवतार। जब परिस्थितियां स्वाभाविक रूप से हमारी मनोदशा पर इतना प्रभाव डालती है तो हम उनकी उपेक्षा कैसे कर सकते है? हां, इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि हम केवल परिस्थितियो को ही न देखे, देश-काल ही को न देखे, बल्कि मानव के व्यक्तित्व को उसके बीच में खड़ा करके देखे और स्वय भी उन्हीके बीच में अपने को रखकर विचार करे।

6. स्वतन्त्र बुद्धि से विचार कीजिए—किसीके व्यक्तित्व की शुद्ध परीक्षा करते समय उसके रग-रूप, उसकी स्थिति और उसके कार्यक्रम आदि का ध्यान रखना तो आवश्यक ही है। इस बात की और भी

अधिक आवश्यकता है कि आप अपने स्वभाव और स्वार्थ के आधार पर किसीकी रूपरेखा न बनाएं। प्रायः यह होता है कि आदमी अपनी स्थिति में सबको रखकर उनके विषय में अपनी एक धारणा बनाता है। ऐसा भी होता है, और प्रायः होता है कि हम स्वय जैसे है, वैसे ही दूसरो को देखना चाहते हैं। यदि वे वैसे नही होते तो हम उनके व्यक्तित्व का सम्मान नही करते। यही बुद्धि विवेकभ्रष्ट हो जाती है।

वास्तव में, प्रत्येक बुद्धिसम्पन्न मनुष्य में एक-दूसरे को पहचानने की शक्ति है; वह नित्यशः इस शक्ति का उपयोग भी करता है, उससे त्रुटि वही होती है जहां वह भावुकता के आवेश में या अपने स्वभाव की विवशता से या अनुभवशून्यता से अथवा अज्ञानवश निष्पक्ष होकर किसी के वास्तविक रूप को नहीं देखता। वह जो कुछ देखता है उसे एकांगी दृष्टिकोण से और अपने मन के संकल्प के अनुसार देखता है। मन में किसी पूर्व-वासना के होने से हरएक देखी हुई वस्तु उसीके रंग में रग उठती है। मान लीजिए आप धर्मान्ध है। उस दशा में अन्य धर्म का सभ्य व्यक्ति भी आपको चांडाल जैसा लगेगा। आप पुराने ढंग के कट्टर सनातनधर्मी पण्डित हों तो अपने से भी अधिक किसी साफ-सुथरे शूद्र को महागन्दा और अछूत ही मानेगे। यदि आप उदारबुद्धि के होगे तो महापतित को भी अपना बन्धु ही मानेगे। इसीको दूसरे रूप में यों समझिए। एक हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति को उसकी माता महानिर्दोष और दुर्बल मानती है। उसकी स्त्री उसको रसिकराज समझती है, अपना देवता मानती है। उसके वच्चे उसीको अपना सरक्षक और शासक मानते है। उसके सेवक उसीको धर्मावतार; मित्रगण एक समर्थ वन्धु और शत्रुगण साक्षात् दानव समझते है। वे उसके व्यक्तित्व को उसी रूप में देखते हैं, जिससे उनका सम्बन्ध है। पर क्या सबके विचारो को अलग-अलग लेकर आप उस व्यक्ति का समूचा व्यक्तित्व चित्रित कर सकते है? कभी नही। अनुरागी व्यक्ति अपने प्रेम-पात्र की त्रुटियों को कभी नही देखता। द्वेषी व्यक्ति अपने शत्रु के सीधे आचरण को भी सदोष मानता है। जब हमारे मन में किसी व्यक्ति या किसी वस्तु के पक्ष-विपक्ष में कोई धारणा पहले से बनी रहती है तो हम उसके सम्बन्ध में विचार

करते समय उसके साथ न्याय नहीं करते। हम उसके रूप को नहीं बल्कि अपने स्वभाव या स्वार्थ को उसीके रूप मे मूर्तिमान देखते हैं और भ्रम में पड़ जाते है। जिससे हमारा स्वार्थ-साधन नही होता, उसे हममें से अधिकाश लोग दो कौड़ी का आदमी समझ लेते हैं। यदि कोई अनीति-पूर्वक भी हमारा उपकार कर देता है तो हम उसको बड़ा भला आदमी मान लेते है।

जब तक हम व्यक्तिगत प्रश्नों को अलग रखकर किसीके विषय में विचार नही करते, तब तक हम उसको समझने में अवश्य भूल करेंगे। अतएव यह आवश्यक है कि पहले आप अपने परीक्षा-यन्त्र को ठीक कर ले। यदि आपका कोई हाथ पक्षाघात मे निर्जीव होगा तो उसमें किसी जीवित व्यक्ति की नाड़ी भी यदि पकड़ा दी जाएगी, तो आप उसको निर्जीव घोषित कर देगे। नेत्र-दोष होने पर सुन्दर दृश्य भी कष्टप्रद होता है। यदि आप लोभी होंगे तो उसी व्यक्ति को सज्जन समझेंगे जो कुछ भेट-पूजा लेकर आपसे मिलेगा; खाली हाथ मिलनेवाला महास्वार्थी जैसा लगेगा। यदि आप हृदय के दुर्बल होंगे तो बलवान् व्यक्ति आपको ब्रह्मराक्षस जैसा प्रतीत होगा और यदि आततायी होंगे तो बड़े से बड़े आदमी को मिट्टी का कच्चा घड़ा समझेंगे। बिना टिकट के रेलयात्रा करनेवाले को टिकट-कलेक्टर यमदूत जैसा लगता है।

इसलिए यदि आप दूसरे को समझना चाहते हैं तो पहले मिथ्या धारणाओं को मन से निकाल दीजिए। यदि कोई आपके सत्कर्मों का सम्मान नही करता तो आप समझ लीजिए कि उसके मन में भी आपके प्रति कोई दुर्भावना है, जिसके कारण वह आपके रूप को नही देख पा रहा है। एक-दूसरे के निकट जाने के लिए ऐसी धारणाओं को निर्मल करने की परम आवश्यकता होती है।

✓7. मनुष्य-मनुष्य में स्वाभाविक स्नेह या विद्वेष भी होता है। इसका यही अर्थ नही है कि यदि किसीसे किसीके स्वभाव का मेल बैठता है तो वे परस्पर स्नेही होते है, नही मेल खाता तो द्वेषी हो जाते हैं। इसमें सत्यता है, चोर-चोर मौसेरे भाई कहे भी जाते है। पागल आदमी पागलों को देखकर आनन्दित होता है, सज्जन सज्जन को और सत्यवादी

सत्यवादी को।

स्वाभाविक स्नेह और विद्वेष का एक गूढ रहस्य भी होता है; उसको जान लेना चाहिए। मनुष्य के मस्तिष्क में विचारों की जो तरगे उठती हैं वे शरीर में ही नही विलीन हो जाती; वे मनुष्य के शरीर के चारों ओर के वायुमडल को आन्दोलित करती हैं। तरंगों की यह क्रिया स्वाभाविक होती है। वे विचार-तरगें निकट के अनुकूल विचारों को ग्रहण करती हैं और प्रतिकूल विचारों से टकराती है। उनका आघात मस्तिष्क पर पड़ता है। शरीर के चारों ओर यह सघर्ष वायुमंडल में निरन्तर चलता है। मस्तिष्क में चुपचाप उसकी अनुभूति होती है। किसी पवित्र मन्दिर में जाने पर आपको जो शान्ति मिलती है, उसका एक कारण यह है कि वहां जो शुभ विचार वायुमडल में तैरते रहते हैं, वे आपके अनुकूल विचारों को और सबल कर देते हैं। कभी-कभी आपने अनुभव किया होगा कि किसी मकान या स्थान-विशेष में जाने पर आपके मन में अकारण विरक्ति या भय की भावना उठती है। उस जगह को आप मनहूस मानते हैं। इसका कारण यह है कि वह किसी समय दुष्टों का केन्द्र रहा होगा। वहां वही विचार अधिक समय तक फैले रहते हैं।

इसी प्रकार आपको इसका अनुभव भी हुआ होगा कि कभी-कभी किसी अपरिचित व्यक्ति से मिलते ही आपके मन में उसके प्रति श्रद्धा-अनुराग के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति आपसे बार-बार मिलकर हर बार आपके समक्ष सुन्दर भाव प्रकट करता है, फिर भी आपके चित्त में उसके प्रति अनायास अश्रद्धा और विरक्ति की भावना ही उत्पन्न होती है। ऐसे आदमियों की शक्ल से ही आपके मन में चिढ पैदा होती है। ऐसा क्यों होता है? इसका कारण भी वही है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। वह व्यक्ति आपके मुह पर मीठी बात करता होगा, पर उसके मन में आपके प्रसि निरन्तर दुर्भावनाएं व्याप्त रहती होंगी, जिनकी विद्युत्-तरंगे आपकी विचार-तरंगों से चुपचाप टकराती होगी। कोई हृदय से आपके साथ सहानुभूति रखता होगा तो उसकी तरगें आपकी तरगों से मिलकर आपके मन को और भी चेतनावान् बना देती होंगी। इसका यही

वैज्ञानिक रहस्य है, जिसको आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक मानते हैं।

इस सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिकों ने एक और खोज की है। उनका कहना है कि हृदय में जब किसी भाव की तीव्रता होती है, तो भिन्न-भिन्न प्रकार की गधे निकलती हैं। उन्हे हम नही जान पाते क्योकि मनुष्य की घ्राण-शक्ति सीमित है। ऐसे जीव-जन्तु, जिनकी सूंघने की शक्ति तीव्र है, उनको शीघ्र ही ग्रहण कर लेते है। भयभीत होने पर शरीर से एक दुर्गन्ध निकलती है। उसे अग्रेजी में भय-गन्ध[1] कहते है। वह जानवरो को असह्य हो जाती है, इसमें सत्यता है। जो लोग रात में बहुत बच-बचकर चलते हैं, उन्हें सांप-बिच्छू मिल ही जाते हैं। निडर लोग नगे पांव घूमते हैं, पर उनपर ऐसे जीव-जन्तु अनायास आक्रमण नही करते। आप डरते हुए गाय-बैल के पास जाइए तो वे भडकते है और मारने को दौडते है। आपका नौकर निडर होकर जाता है तो उनमें ऐसी कोई प्रतिक्रिया नही होती। इसकी परीक्षा आप स्वयं कर सकते हैं। भय की दशा में शरीर के दूपित पदार्थ बाहर निकलते हैं इसको तो आप मान ही लेगे। प्राय: पसीना निकलता है और कभी-कभी मलमूत्र भी। जब कोई गन्दी वस्तु बाहर निकलेगी तो निकटस्थ जीव को अप्रिय अवश्य लगेगी और वह उसका प्रतिकार भी करेगा।

यह कोई नई खोज नही है। ऋग्वेद के ऋषि इस रहस्य की खोज दूर तक कर चुके थे। उनका कथन है कि जब मनुष्य के चित्त में कोई भावना बलवती होती है, तो उसके शरीर से उसी भावना से अनुप्राणित एक प्राणसूत्र निकलता है, जो समीप के वायुमण्डल में व्याप्त हो जाता है। रात मे चोर को देखते ही कुत्ते भौकने लगते है। शीघ्र चेतन होने के कारण वे उस प्राण-सूत्र से प्रभावित हो जाते हैं। इसी प्रकार जब कौवे घर की छत पर या द्वार पर बोलते है तो लोग कहते हैं कि कोई अतिथि आने वाला है। अतिथि आए या न आए, ऋग्वेद के उक्त मत के अनुसार इसका यह रहस्य है कि किसी स्नेही का मन आपमें लगा है; उसकी भावनाए आपकी ओर केन्द्रित हैं। कौवे उस प्रकार के वायु-व्याप्त प्राण-सूत्र से शीघ्र प्रभावित हो जाते है। वेद का कथन है कि

1. Fear-Scent

जब मनुष्य चलता है तो उसकी पद-ध्वनि भी प्राण-सूत्र की विद्युत् से यथेष्ट काल तक अनुप्राणित रहती है। यही कारण है कि बहुत-से कुत्ते चोर को या उसके पद-चिह्नों को देखे बिना भी सवेरे जाकर दूर की किसी झाड़ी आदि को नखों से खोदने लगते है और वहां प्रायः चोरी का धन गड़ा मिल जाता है। चोर जिस दिशा में गया हुआ रहता है, कुत्ते वहां की मिट्टी को सूघते हुए पहुच जाते है। इस विद्या की खोज अथर्वा ऋषि ने खोई हुई गायों का पता लगाने के लिए की थी। इससे उन्हीके नाम पर इसको अथर्वा प्राण-सूत्र कहते है।

इस प्राण-सूत्र का विशेष महत्त्व है। निकट के प्राणी सद्भावनाओं और दुर्भावनाओं से भीतर ही भीतर प्रभावित होते हैं। प्राण की आकर्षण-शक्ति इसीपर अवलम्बित रहती है। कोई जनानुरागी व्यक्ति जब सामने आता है तो लोग उसके प्रति श्रद्धावश झुक जाते है। इसका कारण यही है कि उसका प्राण-सूत्र सबके प्राणो को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। एक-दूसरे के प्राण-सूत्र परस्पर बंध जाते है। जो अपने को सबका बन्धु मानता है, उसके सभी बन्धुवत् ही हैं। इस प्राण-सूत्र का सम्बन्ध रक्त से भी होता है। महाभारत के अन्त मे युधिष्ठिर ने स्वीकार किया है कि जुए के समय जब कर्ण उनके प्रति कठोर से कठोर वाक्य कह रहा था तो उन्होंने सिर उठाकर देखा। तत्काल ही उनके नेत्र कर्ण के प्रति श्रद्धावश झुक गए। वे उसके चरणों की ओर देखने लगे। तब वे यह न जानते थे कि कर्ण उनका सहोदर है। कोई आन्तरिक शक्ति ही उनके मन में आत्मीयता जगाती थी। वह शक्ति 'अथर्वा-शक्ति' थी। ऐसा भी आप देखेगे कि कभी-कभी लोग एकाएक घर लौट जाने को व्यग्र हो जाते है, उनके मन में उच्चाटन हो जाता है, घर जाकर वे किसी आत्मीय को बीमार या संकटग्रस्त देखते है। रक्त रक्त को पुकारता है। किसीकी माता बीमार होकर या आपदाग्रस्त होकर जब अपने पुत्र का ध्यान करती है तो उसका चित्त जल्दी प्रभावित हो जाता है। पत्नी की विचारधारा उतनी जल्दी नही दौड़ती। रक्त-सम्बन्ध की दृढ़ता और मतैक्यता में प्राण-सूत्र ही भीतरी सहायक होता है।

मन की भावनाओं का कितना प्रबल प्रभाव बाहर की वस्तुओं पर पड़ सकता है, इसको आप इन प्रत्यक्ष प्रमाणो से समझिए। कछुआ अपने अण्डों का पोषण स्वय नही करता। उन्हे वह तीर पर बालू में गाड़ देता है, स्वय जल-स्थित होकर दूर से ही उनपर अपना आन्तरिक प्रभाव डालता है। उस प्रभाव से वे बढ़ते है। कछुए को हटा दीजिए तो अण्डे निर्जीव हो जाएंगे। कई प्रकार के सर्प ऐसे मिलते है जो शिकार के लिए कही नही जाते; वे एक जगह मुह खोलकर अपनी क्षुधा-भावना या इच्छा-शक्ति को तीव्र करते है। दूर के कीडे-मकोड़े उनकी ओर आकर्षित होकर इस प्रकार चले जाते है जैसे चुम्बक की ओर लोहा। इसी प्रकार के और भी उदाहरण दिए जा सकते है।

साराश यह है कि विचारों की अनुकूलता-प्रतिकूलता से आकर्षण या उच्चाटन स्वाभाविक रीति से होता है। आपके विचार शुद्ध होगे तो शुद्ध विचारो के व्यक्ति आपकी ओर आकर्षित होगे। आपके हृदय में कालिमा होगी तो कलुषित विचारों के व्यक्ति बिना ढूढ़े आपको मिल जाएगे। चोर चोर को बहुत जल्दी पहचान लेता है। रिश्वत लेनेवाला अफसर रिश्वत देनेवाले को पहचानने में प्रायः भूल नहीं करता।

इसके अतिरिक्त यह भी प्रमाणित है कि एक-दूसरे की आंतरिक भावना से मनुष्य निरन्तर प्रेरित होता है। अतएव किसी विचार-सकट में पड़ने पर अपनी आत्मा को साक्षी मानना चाहिए। प्राचीन शास्त्रों का एक निश्चित मत यह भी है कि मनुष्य में स्वाभाविक आकर्षण या विद्वेषण पूर्वजन्म के व्यवहारों के आधार पर होता है। पूर्वजन्म के संस्कार आत्मा के साथ आते है। गाय का अबोध बच्चा पैदा होते ही अपनी मां की ओर आकर्षित होता है। हजारों गायों में भी वह अपनी मां को पहचानकर उसीकी ओर दौड़ेगा; पैदा होते ही अज्ञात प्रेरणा से वह थन की ओर दौड़ता है। इन्ही सबको ध्यान में रखकर शास्त्रकार पूर्वगत सस्कारों को मानते है। आप इसको माने या न मानें, इतना तो स्वीकार करेगे ही कि बहुत-सी प्रेरणाएं मन में ऐसी उठती हैं जिनके कारण का पता नही चलता। वे प्रेरणाएं निकटवर्ती व्यक्ति की

आन्तरिक प्रेरणाओं से प्रभावित होकर भी उठती है। एक की आत्मा दूसरे की आत्मा को शीघ्र पहचान लेती है। इन प्रेरणाओं की उपेक्षा आप बिना विचारे हुए न कीजिए। इनके आधार पर दूसरों के व्यक्तित्व की परीक्षा कीजिए।

8. किसी महापुरुष के व्यक्तित्व की परीक्षा तत्काल न कीजिए—किसी भी महापुरुष को उसके शरीर में न ढूढ़िए। उसके व्यक्तित्व की आभा उसकी वाणी और उसके कर्म में देखिए। वाणी, कर्म में भी तत्काल नहीं, कुछ समय बाद उनके परिणाम या प्रभाव में देखिए। महापुरुष शरीर से हमारी ही तरह लौकिक होते हुए भी अलौकिक होते है। उनका मन अगाध होता है, उनकी वाणी गम्भीर होती है और उनके चरित्र विलक्षण प्रतीत होते हैं। इसलिए उनके मन की गहराई आप शीघ्र नही नाप सकते। उनका चित्त हर्ष-विषाद से शीघ्र आन्दोलित नही होता; अतएव चित्त के ये भाव भी उनकी आकृति में लक्षित नही होते। उनका चित्त-संयम विशेष प्रबल होता है। उनकी वाणी में गूढ़ता होती है; अतएव उसका अर्थ उनके कर्म के साथ ही प्रकट होता है। उनके चरित्र का लक्ष्य-मार्ग लम्बा होता है। वे किसी दूर की वस्तु की प्राप्ति के लिए सतर्क होकर चलते हैं। सर्वसाधारण उस लक्ष्य को न देखकर उनकी गति-विधि पर सन्देह कर सकता है।

इस सम्बन्ध में इन श्लोकों को ध्यान में रखिए :

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतासि को हि विज्ञातुमर्हति ।। (भवभूति)

—उत्तम पुरुषों का हृदय वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल होता है। उसे जानने में समर्थ कौन होता है ?

सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।
उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा ।। (पंचतंत्र)

—सम्पत्ति और विपत्ति में महात्माओं का एक रूप रहता है। सूर्य उदयकाल में भी लाल रहता है, अस्तकाल में भी।

चरित्र की गूढता को समझने के लिए आप महात्मा गांधी के जीवन का अध्ययन कीजिए। उनके बहुत-से कामों को पहले लोग उनकी

अक्षम्य राजनीतिक भूलें समझते थे, पर कुछ दिनों बाद उनके सुन्दर परिणाम को देखकर गांधीजी की दूरदर्शिता की प्रशसा करते थे।

इन बातों को देखते हुए यही जान पड़ता है कि हम सत्पुरुषो को उनकी आकृति में नही बल्कि उनकी कृति में देखें। ईश्वर-दर्शन के विषय में गांधीजी कहते थे कि परमात्मा शरीर द्वारा नही, कर्म द्वारा प्रत्यक्ष होता है। यही बात उन महापुरुषों के लिए भी सत्य है जो ईश्वर के निकट पहुंचे हुए होते है।

छोटी बातो से ही किसीके बडप्पन की परीक्षा होती है—मनुष्य साधारण बातों में या साधारण व्यक्तियो के साथ जैसा आचरण करता है उसीसे उसके स्वभाव के उन सूत्रों का पता चलता है जिनसे वह बना हुआ होता है। बड़े कामों या बडे आदमियो के सामने तो सभी सावधान रहते है और अपने कृत्रिम स्वभाव का विज्ञापन करते है। छोटे कामों में या सर्वसाधारण के समक्ष वे अपने को बनाने की विशेष चेष्टा नही करते। अत. अपने वास्तविक रूप में खुल जाते है। बड़ों के सामने कोई विनम्रतापूर्वक बाते करता हो तो उसको स्वभाव से विनम्र या मृदुभाषी न मान लीजिए। यह देखिए कि अपने से छोटे के सामने जाते ही वह ऐंठने और कण्ठ-व्यायाम तो नही करने लगता। विशेष अवसर पर प्रदर्शित आचरण से नही, बल्कि दैनिक आचरण से मनुष्य के जीवनक्रम का पता चलता है।

किसीकी अग-चेष्टा को पढ़ते समय भी उसके सूक्ष्म स्थानों को देखने से अधिक ज्ञान हो सकता है। प्रेम, भय आदि के आक्रमण से रोम खड़े मिल सकते है। सिर के बाल तो उनकी अन्तिम दशा मे ही खड़े होगे।

इसी प्रकार समाज की दशा जनसाधारण की दशा को देखकर जानी जाती है। भारत में बड़े-बड़े धनकुबेर है, पर उनके कारण हम सारे देश को सम्पन्न नही कह सकते। सम्पन्न तो तब कहेंगे जब जन-साधारण की आर्थिक स्थिति भी सन्तोषजनक हो।

इस बात को कभी न भूलिए कि हवा के रुख का पता छोटे-छोटे तिनकों, धूलिकणों और पेड़ की पत्तियों से लगता है। लकड़ी के कुन्दों,

पर्वत की चट्टानों और पेड़ के तनों से आप पता नही लगा सकते कि हवा किधर को जा रही है। किसी व्यक्ति, किसी समाज अथवा किसी वस्तु की स्वाभाविक गति किधर को है, इसका पता उसके साधारण लक्षणों से ही लग सकता है। उसको पहले साधारण स्थिति में देखिए और उसके बाद असाधारण स्थिति में देखकर इसका पता लगाइए कि उसमें कितने असाधारण गुण भी है। इन सबको ध्यान में रखकर मनुष्य को पहचानने का प्रयत्न कीजिए।

मनुष्य-परीक्षा के ढंग

मनुष्य-परीक्षा के कई ढग पहले भी प्रचलित थे, अब भी प्रचलित हैं। विद्या और ज्ञान-सम्बन्धी परीक्षाओं के अतिरिक्त मनुष्य के गुण-स्वभाव,आचार-विचार की परीक्षा भी आदिकाल से होती आ रही है। यही नहीं, पहले तो चरित्र की जांच के लिए अग्नि-परीक्षा जैसी कठिन परीक्षा होती थी। मानव के अग-प्रत्यंग आदि की परीक्षा के सम्बन्ध में हम इससे पूर्ववाले अध्याय में विशेष रूप से लिख चुके है।

इस युग में भी स्कूली परीक्षाओं के अतिरिक्त कई अन्य ढंगों से भी परीक्षाएं होती है। अब तो मनुष्य की विचार-तरंगों को जांचने के वैज्ञानिक यत्र भी निकल गए हैं। पाश्चात्य देशों में, मुख्यत: अमरीका में बुद्धि-परीक्षा[1] तथा विचार-अध्ययन[2] आदि नामों से बुद्धि-परीक्षा की कई प्रणालियां आजकल प्रचलित है। कई प्रकार के प्रश्नों के उत्तर लेकर लोग व्यक्ति-विशेष की प्रतिभा, योग्यता अथवा विचारधारा की थाह लगाते हैं। मनोवैज्ञानिक जगत् में अवसर-विशेष पर मनुष्य के व्यवहार की क्रिया-प्रतिक्रिया देखकर विशेषज्ञ लोग उसकी चित्त-दशा अथवा उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को नापते है।

ये सब विधियां विदेशियों के लिए आधुनिक हो सकती हैं, भारतवासियों के लिए प्राचीन ही है। महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से जो प्रश्न पूछे थे वे सब बुद्धिमापक प्रश्न ही थे। राम ने भरत से चित्रकूट में बहुत-से प्रश्न उनके चरित्र और उनकी क्रिया-प्रणाली को समझने के

1. Brain Test, intelligence Test
2 Thought-Reading

लिए किए थे। उनमें से कुछ अनुवादित रूप में ये हैं :

'—कभी सध्या-आगमन के समय सोते तो नही हो ? ···प्रहर-भर रात्रि रहे जगकर कार्य-सिद्धि के उपाय पर विचार करते हो ?···अल्प व्यय से किसी महत्त्वपूर्ण कार्य की सिद्धि होने का निश्चय करके उसको शीघ्र प्रारम्भ तो कर देते हो ? ··तुम्हारे बिना कहे अन्य लोग तुम्हारे अभिप्राय को भांप तो नही लेते ? सहस्रों मूर्खों की अपेक्षा एक पण्डित को निकट रखने की इच्छा रखते हो कि नहीं ? क्या, अपनी स्त्रियों को समझाते रहते हो ? उनकी बातों का विश्वास तो नही करते ? अपने मन की गुप्त बाते तो उनसे नही कह देते ?·· तुम्हारे सब कर्मचारी निःशक होकर जब चाहे तब तुम्हारे पास तो नही चले आते अथवा भय से तुमसे बहुत दूर तो नही भागे फिरते ? तुम्हारी आमदनी से तुम्हारा खर्च कम है कि नही ? ··क्या तुम्हारा वेदाध्ययन और तुम्हारे कर्म सफल होते हैं ?'

इस प्रश्नावली का उल्लेख हमने इसलिए विशेष रूप से कर दिया है कि आप इसपर भी विचार कर ले कि राम जैसे बुद्धिमान् महापुरुष किसी मनुष्य की सफलता के लिए उसमें किन-किन गुणों का होना आवश्यक समझते थे। रामायण, महाभारत में ऐसे अनेक प्रसग हैं। उन ग्रन्थों की रचना का एक प्रयोजन ही यह ज्ञात होता है कि लोग भिन्न-भिन्न परिस्थिति में भिन्न-भिन्न योग्यता और स्वभाव के मनुष्यों के आचरण देखकर तथा उनके आचरणों के परिणाम देखकर मनुष्य-जीवन के रहस्यो से परिचित हो जाएं। प्राचीन शास्त्रों में इन्द्र और धर्म आदि प्रायः मनुष्य की परीक्षा ही लेते घूमते थे। इनको विशुद्ध रूपक मानकर आप इस बात को समझ सकते है कि किन-किन बातों के आधार पर तथा किन स्थलों पर मनुष्य की परीक्षा होती है। हमारे नीतिशास्त्र मुख्यतः मनुष्य को पहचानने के लिए लिखे गए है। अतएव मनुष्य-सम्बन्धी ज्ञान की प्राप्ति के लिए उन ग्रन्थों का आश्रय लेना चाहिए।

आजकल किसीको उसकी लिखावट से भी पहचानने की विद्या चल पड़ी है। वैज्ञानिकों का कहना है कि जब हम लिखने बैठते हैं तो शरीर की पांच सौ छोटी-छोटी नसे सयुक्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में अवश्य

ही अक्षरों की बनावट पर हमारे स्वभाव का प्रतिबिम्ब पड़ता होगा। एक बात तो स्पष्ट है कि जिसका चित्त स्थिर होता है उसके अक्षर सुडौल, नपे-तुले रहते है। घबराए व्यक्ति के अक्षर असम और टूटे-फूटे-से रहते हैं। कागजी जालसाजी को पकड़नेवाले विशेषज्ञ अक्षरों की बनावट देखकर ही निर्णय करते हैं। नकली कागज बनानेवाले या हस्ताक्षर करनेवाले का हाथ उस सफाई से नहीं चलता जैसा सही-सही लिखनेवाले का चलता है। उसके अक्षरों में कम्पन की लहर स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। वह डरता हुआ और बना-बनाकर लिखता है, इससे अक्षरों में कृत्रिमता आ ही जाती है। यह विषय बहुत विस्तृत और जटिल है। इसपर जानकारी के लिए अंग्रेजी में आप कई ग्रन्थ पा सकते हैं।

परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने एक और मनोरंजक प्रणाली निकाली है। वे आपसे अपना ही रेखाचित्र बनाने को कहते है। आप अपने को जैसा समझते हैं, वैसी आकृति जिस तरह भी बना सकते है, बनाइए। चित्रकला का कौशल दिखलाने की आवश्यकता नही। टेढ़ा-मेढ़ा जैसा भी बने, आप अपना रूप बनाते जाइए। आप जो कुछ बनाएंगे उसपर आपके व्यक्तित्व की कुछ न कुछ छाप अवश्य होगी। उसीके आधार पर भी मानव-शास्त्र के पण्डितगण आपके स्वभाव के छिपे हुए रहस्यों को पढ़ते हैं। उनका कहना है कि आपका अन्तर्मन अपने स्वभावानुकूल आपके हाथों को चलाता है। उन चित्रों से पता चलता है कि आपके भीतर अपने प्रति क्या विचार है, या वास्तव में भीतर से आपकी बनावट कैसी है।

इस विषय पर अमरीका की एक प्रसिद्ध प्रत्रिका[1] में एक विद्वान[2] का एक उपयोगी लेख है। उसके अनुसार पहले आपको अपना वैसा चित्र बनाना पड़ता है जैसा आप अपने को तत्काल समझते है। उसके उपरांत दूसरे कागज पर मनोवैज्ञानिक आपसे आपका वैसा चित्र बनाने को कहता है जैसा होने को आपके मन में आकांक्षा रहती है। इसके बाद मानस-हंस नीर-क्षीर-विवेक करता है। वह मुख्यत: इन बातों के आधार

1. Maclean's Magazine, January 1, 1948
2. George Kisker

पर परीक्षा करता है :

1. जो स्वस्थचित्त और सरल होते है वे कैसा भी चित्र बनाएं, कम से कम अपने को मनुष्य जैसा बनाते है और उसमें बुद्धि का कौशल नही दिखलाते है, अथवा जिन अंगो को सुन्दर मानते है उनको बढ़ा-चढ़ाकर दिखलाते है, अथवा जिन अगों को दुर्बल समझते हैं, उनको मोटी रेखाओं आदि से सजीव बनाने का प्रयत्न करते हैं। प्रबल भावुक और मन से क्षुब्ध लोग अपनी आकृति पशु जैसी बना डालते हैं।

2. दुर्बल चित्तवाले, जड़मति और बाल-बुद्धिवाले लोग पहले एक गोला बनाते है, उसमें नाक-मुह आदि चित्रित करते है, फिर उसी गोले के आधार पर इधर-उधर रेखाएं खीचकर हाथ-पैर लटका देते है। अस्पताल में मस्तिष्क की दुर्बलता के रोगी और नादान बच्चे अपना चित्राकन इसी प्रकार करते है।

3. सकोची, शकाकुल और कायर स्वभाववाले बहुत सोच-सोचकर हल्की, टूटी-फूटी या लहरदार लकीरे खीचते हैं। उत्तेजित स्वभाव वाले, अहकारी तथा महत्त्वाकांक्षी लोग बड़ी गहरी लकीरों से अपना चित्र अकित करते है। दुस्साहसी तथा निर्भीक व्यक्ति जल्दी से जल्दी चित्र बना डालता है। दीर्घसूत्री, आवश्यकता से अधिक चौकन्ना रहनेवाला प्रत्येक कार्य को सांगोपाग पूर्ण करने का अभ्यासी बडा समय लेता है।

4. अपने को सर्वश्रेष्ठ समझनेवाला व्यक्ति अपने वास्तविक रूप से अपने चित्र-रूप को विशेष सुन्दर बनाता है। उसकी गर्दन चाहे झुकी हो, पर चित्र में तनी हुई दिखाएगा क्योकि अहकारवश वह उसको वैसी ही समझता होगा। नाटे आदमी अपना रूप प्रायः लम्बा चित्रित करते है। इससे उनकी मनोवृत्ति का पता चलता है। अतृप्त आदमी प्रायः अपने वास्तविक चित्र में अपने को दुर्बल और कल्पित चित्र में मोटा बनाता है। इससे पता चल जाता है कि उत्तम भोजन, पर्याप्त धन, सुख की प्रबल आकांक्षा उसके मन में है।

5. खिलाड़ी मनोवृत्ति के लोग अपने हाथ या पैर को विशेष महत्त्व-पूर्ण चित्रित करते हैं; अपने को विद्वान् माननेवाले ललाट को, रसिक लोग आंखो को, आत्महत्या की मनोवृत्तिवाले अथवा जीवन से विरक्त

लोग अपने को सचमुच भूत जैसा चित्रित करते हैं।

ऐसे ही अन्य लक्षणों से विशेषज्ञ लोग मनुष्य की अन्तर्दशा को समझने का प्रयास करते हैं। अमरीका और कनाडा के प्रत्येक अस्पताल मे इस प्रणाली का व्यवहार आजकल किया जाता है। वहां की जेलों में भी अपराधियों की मनोदशा को समझने के लिए इस प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। बड़ी-बड़ी कम्पनियों में वे लोग इसका प्रयोग करते हैं; और पति-पत्नी के झगड़ों में भी इसके सहारे उनके अन्तर्मन में छिपी हुई भावना का पता लगाते हैं।

इन बातों से परीक्षा कीजिए

सर्वसाधारण के लिए उक्त प्रयोग झंझटी हैं। दैनिक जीवन में हम किन लक्षणो से किसको कैसा समझते है, इसपर अब विचार कीजिए। प्रायः वाणी, मुख-मुद्रा, अंग-चेष्टा और व्यवहार से ही लोगों के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। इन सबमें वाणी का स्थान प्रमुख है। 'नारद पंचरात्र' नामक एक प्राचीन ग्रन्थ में सत्य ही लिखा है कि मनुष्य के सभी कर्मो का मूल मन है; मन के अनुसार ही वाणी निकलती है और वाणी से ही मन का रहस्य खुलता है :

मानसं प्राणिनामेव सर्वकर्मैककारणम्।
मनोनुरूपं वाक्यं च वाक्येन प्रस्फुटं मनः॥

वास्तव में, मन के सहयोग से ही शब्दोच्चारण होता है। पाणिनि ने लिखा है कि जब मन शरीराग्नि को उत्तेजित करता है तो वह वायु को प्रेरित करती है; तदनन्तर वही वायु छाती में प्रविष्ट होकर स्वर उत्पन्न करती है :

मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्दं जनयति स्वरम्॥

वाणी-मन का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार शरीर की 78 छोटी-बड़ी नसे जब एक-दूसरे से सम्बद्ध होती हैं तब जाकर एक शब्द मुख से निकलता है। ऐसी दशा में अवश्य ही वाणी से कंठ की नही, शरीर के एक बड़े भाग की क्रिया-शक्ति व्यंजित होती है। पर यह मानना पड़ेगा कि वाणी द्वारा ही किसीका सर्वस्व

नही प्रकट होता। मनुष्य अन्यमनस्क भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त चतुर लोग शब्दों में, उनकी ध्वनि में वनावट भी करते हैं। अतः व्यवहार-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित चेस्टरफील्ड का मत है कि किसीसे मिलने पर उसके शब्दो पर ही ध्यान न दो, वल्कि उसकी आकृति से भी उसके मनोभावों को ताड़ो। इससे भी वुद्धिमत्तापूर्ण उपदेश राम का है। राम ने लका से लौटते समय हनुमान को पहले ही भरत के पास यह कहकर भेज दिया था कि मुख के वर्ण से, दृष्टि से और वातों से भरत के मन का सारा रहस्य जानने का प्रयत्न करना :

ज्ञेयाः सर्वे च वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च।
तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्या व्याभाषितेन च ॥ (रामायण)

अव इनमें से एक-एक पर विचार कीजिए और देखिए कि किस प्रकार इनके द्वारा मनुष्य अपने को व्यक्त करता है।

1. वाणी—अवसर के अनुकूल, सार्थक, स्पष्ट, सरल, हितकारी, तर्कसम्मत, विषयानुकूल शुद्ध शव्दावली से मनुष्य की श्रेष्ठता और वुद्धिमत्ता तथा सज्जनता प्रकट हो ही जाती है। इनके अतिरिक्त कौन किस विषय पर कितनी मौलिकता के साथ वोलता है, कैसे स्वर में वोलता है और कहां तक अपने भावों की पुष्टि कर सकता है, इससे भी मनुष्य की गहराई का पता चलता है। शब्दों से किस प्रकार की विचारधारा व्यक्त होती है और उसके अनुकूल कहां तक वोलनेवाले की आकृति में साम्य रहता है, इससे भी मनुष्य की भीतरी सचाई का, वनावट का पता चलता है।

चतुर आदमी समयानुसार श्रोता के स्वभाव, परिस्थिति को ध्यान में रखकर मुख्य विपय को आगे रखकर वोलता है। मूर्ख का प्रधान लक्षण यह है कि सव भूलकर वेमौके वोलता है। जो सार्थक, सुवोध और संयत भाषा मे वोलता है, वह वुद्धिमान् गिना जाता है। जो निरर्थक, अस्पष्ट और विशृंखल भापा का व्यवहार करता है, वह प्रलापी, धूर्त, मूर्ख और अविवेकी माना जाता है। तर्कसम्मत वाणी का व्यवहार करनेवाला सज्जन, क्रियाकुशल, प्रतिभाशाली और शिष्ट होता है। तर्कहीन वोलनेवाला दभी, जड़मति, असत्यवादी, छली और

दुराग्रही होता है। जो सद्भावना लेकर बाते करता है वह किसी निर्णय पर शीघ्र पहुंच जाता है। दुर्भावनावाले बात में गांठ पर गाठ बाधते चलते है।

बुद्धिमान् पुरुष गंभीर विषयों में और गंभीर स्वर में और गभीर आकृति से बात करता है। सज्जन और सरस प्रकृति के लोग सामयिक विषयों पर मधुर स्वर में और सरल आकृति से बात करते है। दंभी और दुर्विनीत व्यक्ति अपने विषय में उत्तेजनात्मक स्वर में, दूसरों के विषय में कर्कश स्वर में अपनी आकृति को विकृत करके तब बोलता है। धूर्तो का विषय परनिन्दा, स्वर बहुत दबा हुआ और चेहरा परम रहस्यमय होता है। विशेष विवरण आगे के लक्षणों से जानिए।

बुद्धिमान् व्यक्ति एक-एक शब्द को तोलकर बोलता है। वह एक बार में एक ही विषय पर बात करता है, जमकर बात करता है और कोमल शब्द किन्तु अकाट्य तर्क प्रस्तुत करता है। उसके विचारों में क्रमबद्धता, स्वर में दृढ़ता और भावों में गंभीरता होती है। अनावश्यक विषयों की चर्चा में वह प्रायः नही पड़ता और काम की बातें करता है। वह अपनें मौलिक विचार आकर्षक ढंग से व्यक्त करता है और एक ही बात को बार-बार नही घोटता। स्वयं कुछ कहकर वह दूसरो को भी कुछ कहनें का अवसर देता है। बातचीत के समय उसकी आकृति में घबराहट के चिह्न नही दिखलाई पड़ते क्योंकि उसमें आत्मविश्वास रहता है।

सज्जन व्यक्ति कम बोलता है, जो बोलता है विनम्रतापूर्वक बोलता है। वातचीत में वह परनिन्दा, परस्त्री-चर्चा, आत्मप्रशसा और उपहासजनक विषयों से विरक्त रहता है। उसकी आकृति में सौम्यता रहती है। उसका स्वर गंभीर किन्तु मृदु होता है। सज्जन की सज्जनता उसकी साधुवाणी से ही झलक उठती है।

मनस्वी मनुष्य की वाणी में गभीरता रहती है, किन्तु कर्कशता नही। वह ठनकती हुई निकलती है। मनस्वी व्यक्ति निश्चित विषयों पर निश्चयात्मक बुद्धि से और ओजमयी भाषा में बोलता है। प्रायः वह भविष्य-सम्बन्धी किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के विषय मे बातचीत करता

है। बोलते समय उसके मन का सारा तेज उसकी आकृति में रहता है। उसकी बातचीत और आकृति दोनों से स्वाभिमान टपकता है।

सरल-स्वभाव व्यक्ति प्रायः सामयिक विषयो की चर्चा करता है। हास्य-विनोद और व्यंग्य के साथ बात करता है तथा सरल भाषा का व्यवहार करता है। वह लच्छेदार बोली कम पसन्द करता है।

रसिक स्वभाव का व्यक्ति सरल और काव्यमय भाषा में प्रायः सरस विषयों पर बाते करता है, और जब बात करता है तो उसकी आकृति पर उसकी आन्तरिक मुग्धता, विह्वलता और भावुकता रहती है। उसके मुख से छलकती हुई वाणी निकलती है। वह प्रायः चुटकियां लेते हुए बाते करता है।

चतुर आदमी जिससे मिलता है पहले उसीके अनुकूल बाते करता है। कोई मनोरंजक विषय छेड़कर उसीको अधिक बोलने का अवसर देता है और स्वयं उसकी बातों का समर्थन करता है। उसके विचारों को अच्छी तरह जानकर तब उन्हीका भाष्य करता है। इस प्रकार एक बार में या कई बार में किसीको रिझाकर तब अवसर के अनुसार प्रयोजन की बात करता है।

धूर्त बड़ा बातूनी होता है: 'बहुवक्ता भवति धूर्तजनः' (कौटिल्य)। 'कही की ईंट कही का रोड़ा' लेकर वह भानुमती का कुनबा तैयार कर देता है। उसकी भाषा अतिरंजित होती है। दृष्टान्त से भरी हुई, वादों से लदी हुई और विचारोत्तेजक वाणी द्वारा वह एक ही विषय पर कई तरह से बाते करता है। तर्क-वितर्क से वह घबराता है और श्रोता को किसी स्थल पर प्रभावित करके धाराप्रवाह बोलने लगता है। कही पकड़ में आने पर मुख्य विषय से जान छुड़ाकर इधर-उधर की बाते करता है। ऐसा व्यक्ति बातचीत में बहुत देर तक नही अड़ता। प्रायः वह अपनी ही बातों को खण्डित करता चलता है। वार्तालाप में वह चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख अवश्य करता है, और अपने अनुभवो की विशेष चर्चा करता है तथा दूसरों पर अपने कल्पित उपकारों का दिल खोलकर वर्णन करता है। वह ऐसी ही बातें करता है जिससे सुननेवाले उसको अपना शुभचिन्तक, सज्जनों का शिरोमणि और

दुर्जनों का काल समझें। सभी बड़े कार्यों का श्रेय वह स्वयं लेना चाहता है।

मूर्ख तो अपनी वाणी से तत्काल खुल जाते है। इसीलिए शास्त्र-कारों ने मूर्खों को मौन रहने का उपदेश किया है। सर्वप्रथम तो मूर्ख अशुद्ध भाषा बोलता है और जो बोलता है उसको भी कर्कश स्वर में। बोलते-बोलते वह बातों का क्रम भूल जाता है और किसी अन्य दिशा की ओर वह निकलता है। उससे कोई बात छेड़ दीजिए तो वह चुप हो जाता है या 'जी हां' करने लगता है। बातें सुनते-सुनते 'तब, तब' या 'तब क्या हुआ' ही कहता है और समझता कुछ नही। प्रायः वह दो-चार वाक्य स्वयं बोलकर बार-बार श्रोता से पूछ लेता है—'क्या समझे?' और रह-रहकर भौचक्का रह जाता है, हकलाने लगता है या अकारण अपनी बात से गद्गद हो जाता है अथवा अट्टहास करने लगता है। अधिकतर एक ही विषय पर वह हमेशा बात करता है और बातों का कबंध खडा करके उसीको नचाता है।

पीड़ित व्यक्ति के सम्बन्ध में तुलसी की यह उक्ति ही पर्याप्त है:

आरत के हित रहत न चेतू।
पुनि पुनि कहत आपनी हेतू॥ (मानस)

चाटुकार आवश्यकता से अधिक विनीत और लच्छेदार वाणी बोलता है। प्रायः वह अपना अस्तित्व मिटाकर बात करता है, अर्थात् स्वाभिमानगत होकर दूसरों की बनावटी प्रशंसा करता है। वह सदा हां में हां मिलाता है; 'बहुत अच्छा', 'हमारी जान आपके लिए हाजिर है', 'हमारे रहते आपका बालबांका न हो सकेगा' आदि अनेक प्रकार की बनावटी शब्दमाला का व्यवहार करता है। प्रायः वह दबी ज़बान से ही बात करता है और शकल से खोया हुआ या आपकी सेवा के लिए उतावला-सा प्रतीत होता है। 'छोटा मुह बड़ी बात' की उक्ति को वह पद-पद पर चरितार्थ करता है।

विश्वासघाती की बातों में चाटुकारिता होती है, साथ ही साथ आत्म-विज्ञापन भी होता है। वह बार-बार शपथ खाता है, सत्य-भगवान् की दुहाई देता है और अकारण अधिक स्नेह दिखाकर

रहस्यमयी बाते सुनाता है और कहता जाता है कि किसीसे कहिएगा नही, हम आपसे ही कह रहे है। घुमा-फिराकर वह आपका भेद जानने के लिए तरह-तरह की वाते करता है। प्रायः वह धीरे-धीरे आश्चर्य प्रकट करता हुआ और सवेदना प्रकट करता हुआ वात करता है। वात की लम्बी-लम्बी भुजाए फैलाकर दूसरो के दिल टटोलता है।

वचनवीर बडी लम्बी-चौड़ी बाते करता है। ऐसे आदमी को गप्पी कहते है। उसकी बातो का अन्त नही दिखाई देता। 'हमने यह किया, हमने वह किया' के अतिरिक्त वह और कुछ वहुत कम जानता है। अपने किस्से खतम हो जाते है तो अपने वाप-दादों के मनगढ़ंत किस्से सुनाता है। वह भी खत्म हो जाते है तो राजा बीरवल आदि के चुटकुले ही सुनाता है। बात-बात में वह शूरवीरता दिखलाता है, गरजता है और उफनता है। धमकियां देने का वह आदी होता है, पर उसको जरा-सा डाट दीजिए तो पिछड़ जाता है और वाते बनाकर कहता है कि मेरा मतलव यह नही, यह था। काम की वात वह एक भी नही कर सकता, क्योंकि जो बहुत बोलता है उसकी विचारशक्ति क्षीण होती है और उसको किसी बात पर मनन करने का कभी अवकाश नही मिलता।

निर्बल व्यक्ति भी बहुत बक-वक करता है। वृद्धावस्था में भी आदमी बहुत इसलिए वोलता है कि उसकी अन्य सभी इन्द्रियां अशक्त हो जाती है, इसलिए वह वाणी-बल के सहारे ही अपनी पूर्वशक्ति को विज्ञापित करता है और अपनी तात्कालिक उपयोगिता को सिद्ध करने की स्वाभाविक चेष्टा करता है। जो बहुत वोलता है, वह अवश्य भीरु, अस्थिर, अशक्त और अकर्मण्य होता है। क्रियावान् प्राणी सदैव मितभाषी होगे।

नीच का मुह तरकश की तरह वचन-वाणों से भरा रहता है। नीतिकारों ने उसकी तुलना सांप के विल से की है। नीच व्यक्ति दुर्मुख, गला फाड़कर वोलनेवाला, असहनशील और कटुभाषी होता है। उसकी काक-वृत्ति नही छिपती। वह परनिन्दा को अपनी बातचीत का विषय बनाता है। अन्य प्रकार की बातो में किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है। प्रायः

वह उलझनेवाली बातें करता है और अधिक देर तक प्रलाप करता है। अपशब्द उसको कण्ठस्थ रहते हैं। उपहास करने में वह कृत-बुद्धि होता है। जहां उसका स्वार्थ होता है वहां वह बडा मधुरभापी भी बन जाता है : 'व्याधा मृगवधं कर्तु सदा गायन्ति सुस्वरम्' (व्यास) —हिरन का शिकार करते समय बहेलिया बड़े मीठे स्वर में गाता है।

2. व्यवहार—बातचीत से भी अधिक मनुष्य अपने व्यवहार से अपने को व्यक्त करता है। सज्जन पुरुष प्रत्येक परिस्थिति में मर्यादा का पालन करता हुआ देखा जाता है, और दुर्जन प्रायः मर्यादा का उल्लंघन कर देता है। सभ्य मनुष्य छोटी से छोटी बात में भी शिष्टाचार, शील तथा सौजन्य का ध्यान रखता है। असभ्य व्यक्ति के सम्बन्ध में इन्ही शब्दो के आदि में 'अ' जोड़कर समझ लीजिए।

3. मुख-मुद्रा और अंग-चेष्टा—जैसाकि हम कह चुके है, मनुष्य की आकृति में उसके मनोभाव तत्काल अकित हो जाते है। वाणी-व्यवहार में आसानी से बनावट हो सकती है, पर आकृति में भाव-परिवर्तन करना सहज नही होता।

भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियों की स्वाभाविक चेष्टाएं किस प्रकार की होती है, इसपर संक्षेप में कुछ जान लीजिए।

स्थिर स्वभाव का व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति में स्थिर रहता है। परिस्थितियों और बातचीत के झोंके से वह कम हिलता-डुलता है। विपरीत परिस्थिति में वह और भी दृढ हो जाता है। उसकी इन्द्रियो मे किसी प्रकार की विकलता और आकृति में तनिक भी विवर्णता दिखलाई नही पड़ती। गीता में कहा है कि जिसकी इन्द्रियां उसके वश में हैं, उसकी बुद्धि स्थिर है: 'वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।' धैर्यवान् और बुद्धिमान् सदा स्थिर ही मिलेगा। ऐसा व्यक्ति पुरुपार्थी, समाज का रक्षक, सज्जनों का पालक और परम विश्वासपात्र होता है।

अस्थिर चित्त का व्यक्ति अनेक रग बदलता है, अग-अग से छट-पटाता रहता है और तरह-तरह की शारीरिक चेष्टाए दिखलाता है।

उसकी आंखों पर दृष्टि डालिए तो आखे अस्थिर दिखलाई पड़ेंगी। साधारण वातों से कभी उसका चेहरा दमक उठेगा, कभी सूख जाएगा, कभी सफेद पड़ जाएगा। प्रायः वातचीत करते समय उसके पैर मशीन पर काम करनेवाले दर्जी के पैर की तरह हिलने लगते हैं; हाथ वार-वार मुह पर चले जाते हैं; सामने यदि मेज़ हो तो वह उसकी चीज़ो को उलटने लगता है या दांत से अपने नाखून काटने लगता है।

अपराधी आदमी की आखे झुकी रहती हैं। आंखें नीची करके वह नीचे ही नीचे इधर-उधर देखता है, पर सामने नहीं देखता। वह आंख से आंख मिलाकर वात नहीं कर सकता। प्राय. हरएक वात दवी ज़वान से करता है। उसको कही वैठने में परेशानी-सी लगती है। उसका मुंह कुछ मैला-सा लगता है, कान लाल और चेहरा शैतान जैसा। उसकी आकृति में विशेष मलिनता रहती है और मस्तिष्क खिचा हुआ-सा। उसके मन में पकड़े जाने का भय सदा रहता है। इसलिए वह दूर पर होती हुई वातो को भी कान लगाकर सुनता है और एक-एक आदमी को भेद-भरी दृष्टि से देखता है। उसके हाथ-पैर प्रायः कांपते है।

अहंकारी व्यक्ति दायें-वाये वहुत घूमकर देखता है, सामने कम। उसकी आंखे चढी ही मिलती हैं। छाती आवश्यकता से अधिक तनी हुई और भौहे वंक रहती हैं। प्रायः वह हाथ पटक-पटककर वातें करता है। वात-वात में उसके अंग फड़कते रहते हैं, गर्दन उचकती है और मस्तक रेखांकित हो जाता है। उसके दांतों की एक पक्ति एक-दूसरे पर वैठ जाती है और गहरी सांस लेता है। अहंकारी और क्रोधी हाथ-पैर सब पटकने के वाद लपकता हुआ-सा विशेष चचल दिखलाई पडता है अथवा विवश होने पर अपना ही सिर पीटने लगता है। वह किसी सभ्य व्यक्ति से मिलने जाएगा तो कुर्सी को खींचकर भड़भडाकर वैठेगा और चलते समय मित्र से भी हाथ मिलाते समय उसको इतने ज़ोर से झटकेगा कि उसका अंग-अंग झटक उठेगा।

भयभीत आदमी हक्का-वक्का-सा रहता है और उसके रोम-रोम हिलते हुए दिखाई देते है। शास्त्र में लिखा है कि जिसका मन भय-संत्रस्त रहता है, उसके हाथ-पैर आदि निश्चेष्ट हो जाते हैं, मुख से वचन

नहीं निकलते और शरीर में कम्पन अधिक होता है:

भयसंत्रस्तमनसां हस्तपादादयोऽक्रिया:।
प्रवर्त्तते न वाणी च वेपथुश्चाधिको भवेत् ।।

वह रह-रहकर चौंकता है, विना परिश्रम के भी पसीने से भीगा रहता है। प्रायः वह वातों के वीच में या तो चुप हो जाता है या हकलाने लगता है। उसके चेहरे का रग तो विलकुल उड़ ही जाता है, शरीर के अंग सिमटने लगते है, आंखे निस्तेज हो जाती है, वाल या तो कांपते है या खड़े हो जाते है। आकृति से वह पिघलते हुए वर्फ जैसा लगता है। हरएक चीज़ को वह आंखे फाड़-फाड़कर देखता है। उसका दिल धड़कता है, आंख फड़कती है और दृष्टि भड़कती है।

जिसका हृदय पीड़ित होता है उसकी क्रियाएं शिथिल होती हैं; मुखमण्डल मुरझाया रहता है; हाथ-पैर भी निश्चेष्ट-से रहते हैं और वह जिधर भी देखता है, झुकी आंख से, पर एकटक देखता है। उसके स्वर में भर्राहट रहती है और चेहरे पर वल पड़ जाता है। उसकी प्रत्येक क्रिया मे उद्विग्नता रहती है।

संतुष्ट एवं स्वस्थ व्यक्ति का अग-अंग मुस्कराता है। उसका प्रत्येक अंग निकला हुआ और विशेष सचेत रहता है। उसमें स्फूर्ति दिखलाई पड़ती है, चेहरे पर शान्ति दिखलाई पड़ती है। प्रायः वह अपने अंगों का संकोचन कम करता है।

घवराया हुआ या किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति वार-वार जम्हाई लेता है या छींकता है, वात करते-करते नाक खोदने लगता है या सिर खुजलाने लगता है और पैर की उंगलियों से जमीन को खरोंचने लगता है। उसके कान उठ जाते हैं, आंखे आकाश-विहार करने लगती हैं और अंग-प्रत्यंग कभी आगे, कभी पीछे को चलते हैं। मुह तो खुला हुआ रहता ही है।

उन्मादी मनुष्य यों तो उछल-कूद मचाता ही है, पर रात्रि में और विशेषकर चांदनी रात में विशेष चेष्टाएं करता है। यह एक परीक्षित वैज्ञानिक सत्य है कि चन्द्र-किरणों से मस्तिष्क-रोगी का उन्माद वढ़ जाता है। पागलखानों में देखा गया है कि सन्ध्या तक पागल लोग कुछ

ठीक रहते है, पर चन्द्रोदय के साथ ही उनकी उन्माद-तरगे सागर-लहरों की तरह उमडती है। पूर्णिमा की रात्रि में तो पागल लोग उन्मत्त सागर की तरह उछलते-कूदते और नाचते है। अतएव किसी मानसोन्मादी, भावोन्मादी या मेधोन्मादी की परीक्षा रात्रि में अच्छी हो सकती है। रात्रि में साधारण मनुष्य की भावनाएं भी तीव्र हो जाती हैं।

पुरुषार्थी और आत्मविश्वासी व्यक्ति अचचल रहता है और आदि से अन्त तक उसके मुख का वर्ण विकृत नही होता। वह प्रभावित होता है, सहमत होता है, पर किसीसे भीत होकर कभी आत्मसमर्पण के भाव नही दिखलाता। निकम्मा आदमी तो अपना तन-मन दूसरो के हाथ वेच देता है। वह दूसरो के हसने से हसता है, उनके रोने से रोता है। मल-मूत्र-विसर्जन के अतिरिक्त उसकी कोई शारीरिक क्रिया अपने मन से नही होती। उन्मत्त व्यक्ति बार-बार अगडाई और जम्हाई लेता है। एक वैज्ञानिक ने लिखा है कि बार-बार अगड़ाई लेना और जम्हाना पागलपन का लक्षण है।

कूप-मण्डूक या मिथ्याभिमानी बडा भयंकर होता है। वह किसी की नही सुनता। अपने कुल और अपनी विद्या के अहकार को ही वह वाणी, व्यवहार और आवरण से प्रकट करता है। जहां उसके मिथ्याभिमान का समर्थन होता है, वहा मन्त्रमुग्ध हो जाता है, जहा कोई सामाजिक प्रसग आता है, वह नाक-भौ सिकोडता और मूढवत् या क्रूरवत् आचरण करता है। ऐसा व्यक्ति अपनी अहमन्यता पर आघात होते देखकर कोई भी दुष्ट आचरण कर सकता है। वह अपने को समाज के प्रति उत्तरदायी नही समझता, उलटे सारे समाज को अपने प्रति उत्तरदायी मानता है, क्योकि उसके अनुसार जो वह समझता है, वही सवको समझना चाहिए, जो वह करता है, वही सबका कर्तव्य होना चाहिए और जिन वस्तुओ का वह परित्याग करता है, सबको उनका परित्याग करना चाहिए। इस प्रकार के संकीर्ण विचारवाले व्यक्ति अपने घर में परम सन्तुष्ट और चैतन्य प्रतीत होते है, किन्तु बाहरी जगत् में आते ही वे सनकी जैसे और शकल से ही डूबते-उतराते-से लगते है। वे प्रायः दूसरो के साथ दुर्व्यवहार कर बैठते है, क्योंकि उन्हें सामाजिक शिष्टाचार

और लोक-व्यवहार से स्वाभाविक अरुचि होती है। ऐसे लोगों के लिए अमरीका की सुप्रसिद्ध पत्रिका[1] में एक बडा मनोरजक और उपयोगी लेख है। उसका एक अंश इस प्रसंग मे उल्लेखनीय है। लेखक अलेन कारपेण्टर ने लिखा है कि वृद्धावस्था के कारण मस्तिष्क में जो खराबियां स्वभावत: उत्पन्न हो जाती है, उनको छोड़कर कूप-मण्डूकता मस्तिष्क की बीमारियो में सबसे अधिक व्यापक है। इस रोग से पीड़ित लोग अपनी छोटी-सी दुनिया बनाकर उसीमें रहते है। जनसाधारण में जो बाहरी प्रतिक्रियाए स्वभावत: होती है, वे उनमें नही होतीं। जगद्गति से वे न तो प्रभावित होते हैं और न उसको समझते ही है।[2]

ऐसा व्यक्ति विचारों से, स्वभाव से, आकृति से, सभी बातों से संकुचित प्रतीत होता है। वह सकुचित स्थान में रहना भी पसन्द करता है और डरता रहता है कि कोई उसके हवाई किले पर हमला न कर दे। यदि कोई हमला करता है तो वह उत्तेजित होकर आक्रामक का वध भी कर सकता है, क्योकि उसको दूसरों की परवाह नही रहती। वह अपने को सत्युग के आदमियों का वशधर समझता है और शेष लोगों को कलियुगी। 'ज्यों तेली के बैल को घर ही कोस पचास' की उक्ति उसके विषय में पूर्णतया चरितार्थ होती है। किसी तेली के बैल को देखकर ऐसे व्यक्ति के रूप को उसीके अनुरूप समझ लीजिए।

उद्योगी, विजयाकांक्षी, स्वस्थचित्त और बातचीत-व्यवहार में कुशल मनुष्य प्राय: भविष्य के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करते है। उनके मुख पर विषाद, निराशा या किसी प्रकार की चिन्ता की छाप नहीं मिलती। प्राय: वे अपने दाहिने अगों को अधिक संचालित करते है। इसका एक रहस्य है। हमारे मस्तिप्क का बायां भाग शरीर के दाहिने

---

1 Science Digest, November, 1946

2 Excluding mental diseases incidental to old age, Schizophrenia (संसार के प्रति पूर्ण विरक्ति किन्तु अपने प्रति पूर्ण अनुरक्ति का मानसिक रोग) is the most prevalent of all diseases of the mind Sufferers from it exist in a small world of their own which they themselves have created. Influences to which normal people react have become deadened and meaningless to the Schizophrenia

भाग का सचालक होता है और उसका दाहिना भाग शरीर के बायें भाग का। दूसरे शब्दों में, शरीर के दाहिने अग से बाये मस्तिष्क का सम्बन्ध रहता है और बाये से दाहिनी ओर के मस्तिष्क-खड का। यही कारण है कि जब किसीको वाम अग का पक्षाघात होता है तो उसके दक्षिण पार्श्व का मस्तिष्क शिथिल या विकृत हो जाता है। विचार-गर्भित वाणी के उत्पादक उत्तेजक व सचालक तन्तु मस्तिष्क के वाम भाग में रहते है, ऐसा शरीर-शास्त्री डॉक्टरों का मत है। मस्तिष्क में जब नये विचारों की सृष्टि होती है और वे प्रकट होना चाहते है तो दाहिने अंग विशेष सक्रिय होते है। अधिकारी पुरुष जब कोई विचार निश्चित करके आज्ञा देता है, तो दाहिने हाथ की तर्जनी स्वभावतः उठ जाती है। विचारवान् व्यक्ति किसी बात को समझाते समय दाहिनी तर्जनी से इगित करता है; लिखनेवाले अपने विचार दाहिने हाथ से व्यक्त करते है; व्याख्यान देने-वाले या अच्छे बोलनेवाले दाहिने हाथ को उठा-उठाकर विचारो का सकेत करते है या मस्तिष्क-क्रिया को संतुलित करते है। कोई उत्तेजना-त्मक विचार आते ही दाहिना अंग अपने-आप फडकने लगता है। स्त्रियों का बाया अग इसलिए फड़कता है कि उनमें प्राय. भावो की लहरे ही उठती है अथवा आशका या किसी चित्तस्थित चिन्ता की। बाये अग प्रायः उन स्वभावो के अनुसार कार्य करते है जो दाहिनी ओर के मस्तिष्क में बैठे रहते है। तत्काल निश्चय करने का काम बायां मस्तिष्क करता है। प्राचीन मानस-शास्त्री इस रहस्य को जानते थे। दाहिने अग के फड़कने पर शुभ कार्य करने का शकुन वे इसलिए बताते थे कि उससे प्रकट हो जाता था कि मनुष्य की बुद्धि उक्त कार्य के लिए दृढ़ हो चुकी है। रामा-यण में जब शूर्पणखा ने रावण को राम पर आक्रमण के लिए उत्तेजित किया तो उसने उससे यही कहा था कि जय-प्राप्ति का निश्चय करके शीघ्र अपने दाहिने पैर को उठाओ: 'शीघ्रमुद्ध्रियतां पादो जयार्थमिह दक्षिणः।' जिसका दक्षिण अग निश्चेष्ट हो उसे हतबुद्धि या लकीर का फकीर मानना चाहिए। साधारण व्यवहार में भी जिसको आप अपने से बड़ा समझते हैं, उसको दाहिनी ओर आसन देते है। अपनी पत्नी के स्वामी होनेके स्वाभाविक अभिमानवश आप उसको बाई ओर स्थान

देते हैं। यदि कोई स्त्री आपकी पत्नी या प्रेमिका न हो तो आप उसके सम्मान के विचार से उसको अपनी दाहिनी ओर ही स्थान देंगे।

कर्मशीलता के विचार के साथ-साथ दाहिना अंग अपने-आप चल पड़ता है, इसको एक अन्य प्रमाण से समझिए। लोग तलवार को दाहिनी कमर में नहीं, बाईं ओर लटकाते हैं। यह क्यों ? स्पष्ट कारण यही है कि वे समझते हैं कि आक्रमण या आत्मरक्षा का विचार आते ही दाहिना हाथ ही पहले चलेगा और उसके लिए हथियार को सुगम स्थान पर रखना चाहिए। बायें हाथ पर इतना विश्वास नहीं रहता, नहीं तो लोग दाहिनी ओर भी एक तलवार लटका लेते।

इसी प्रकार के बहुत-से लक्षणों से तरह-तरह के मनुष्य के व्यक्तित्व का निरूपण हो सकता है। सबसे सरल रीति यह है कि कुछ प्रकार के मनुष्यों की आकृति आदि का अध्ययन कर लीजिए और उनके रूप को मन में रख लीजिए। इसके बाद जिसकी परीक्षा करनी हो उसके आचार-व्यवहार, अंग-चेष्टा आदि की तुलना उन रूपों से कर लीजिए। उदाहरणार्थ, बुद्ध या गांधी की शांत, गंभीर और सौम्य तथा सतेज मुख-मुद्रा को मन में रखकर किसी अन्य में वैसी मुख-मुद्रा को पाकर आप समझ सकते हैं कि वह वैसे ही आचरण का व्यक्ति होगा, जैसे गांधी या बुद्ध थे। किसीका मनस्ताप किन लक्षणों से व्यक्त होता है, इसके लिए किसी विधवा या किसी पुत्र-वंचिता स्त्री का रूप मन में सोच लीजिए। किसीमें भी उन लक्षणों को देखकर आप उसके हृदय की वेदना का अनुमान कर सकते हैं।

यद्यपि वाणी, व्यवहार और आकृति आदि से मानव के आन्तरिक रहस्य का बहुत कुछ पता चल जाता है, पर इन सबसे धोखा भी हो सकता है। सिनेमा के पात्र या सी० आई० डी० वाले नाना रूप बना ही लेते हैं। अतएव एक ही बार में अथवा एक ही परिस्थिति में किसीको देखकर सहसा कोई विचार न निर्धारित करना चाहिए। साथ ही अन्य कुछ साधनों से भी मनुष्य की परीक्षा करनी चाहिए।

इन बातों को भी ध्यान में रखना चाहिए

1. ग्रह-दशा—ग्रह-दशा का प्रभाव मनुष्य पर पड़े या न पड़े, परन्तु

गृह-दशा का अवश्य पडता है। जो कुलीन होता है वह किसी न किसी अश तक गृह-मर्यादा का पालन करता है। उसे अपने पूर्वजों के मान का ध्यान रहता है। इसके अतिरिक्त जिसके घर की दशा अच्छी होती है, अर्थात् जो सुखी गृहस्थ होता है वह बाहर भी अपने उत्तरदायित्व को सम्हालता है और दुस्साहस नही करता। जिसके घर में अशान्ति रहती है, वह उच्छृखल हो ही जाता है। जिसके घर में आर्थिक संकट रहता है, वह सामाजिक जीवन में भी छोटा बनकर लाचार होकर रहता है या छल-कपट अथवा चोरी करने लगता है। जो स्त्री से संतुष्ट नही रहता वह वैरागी या दुराचारी, क्रूर अथवा नपुसक हो जाता है।

मनुष्य को समझने के लिए उसके पूर्वजों के, मुख्यतः माता-पिता के जीवन की थोडी-बहुत जानकारी आवश्यक होती है। सयमी माता-पिता की सतान प्रायः सयमी होती है। यह भी देखा गया है कि जिस वश में एक से अधिक पूर्वज दीर्घायु हुए होते है, उस वश में आगे भी लोग प्रायः लम्बी आयुवाले होते है। सुश्रुत ने इसका उल्लेख भी 'सूत्र-स्थान खड' (सुश्रुत-सहिता) में किया है। और किसीका प्रभाव पडे या न पड़े, माता का प्रभाव सतान पर अवश्य पड़ता है। माता के मिथ्याहाराचार से सन्तान बहुत-सी व्याधियां जन्म से लेकर आती है। माता की मनो-दशा का तो पूर्ण प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पडता है। एक सुप्रसिद्ध डाक्टर ने इसपर अनुसन्धान करके इसको प्रमाणित किया है। उसने कई घटनाओं का उल्लेख किया है। एक घटना यह है—एक किसान के पास एक पालतू सूअर था। वह बीमार हो गया। किसान ने उसके कान के पास चीरकर उसका कुछ खून निकाल दिया और वह ठीक हो गया। किसान की गर्भिणी पत्नी के मन में वह क्रूर कर्म कई दिनो तक ध्यानस्थ रहा। शिशु के उत्पन्न होने पर उसके कान की पाली खण्डित थी। इसी तरह के और भी सच्चे वृत्तान्त है जिनसे ज्ञात होता है कि मानसिक आघात होने से गर्भ-विकृति हो जाती है। गर्भिणी की कामनाओ का पूरा प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। दुराचारिणी की सन्तान सदा-चारिणी होती हुई कम देखी जाती है। कारण यही है कि सन्तान के रक्त के एक-एक बूद में मातृअश रहता है। चीनी से जो वस्तु बनेगी

उसमें चीनी के तत्त्व अवश्य रहेगे। जन्म के बाद माता की योग्यता और बुद्धि के अनुसार ही बालक का विकास होता है। यदि मां भीरु होती है तो लड़के को सदा उत्साहहीन बनाती है। यदि वह तेजस्विनी होती है तो वही करती है जो अजना ने हनुमान के लिए, विदुला ने सजय के लिए किया था। आधुनिक उद्दण्ड वीरों में नेपोलियन, हिटलर, मुसोलिनी और स्टालिन आदि अपने साहसी स्वभाव के लिए केवल अपनी माताओ के ऋणी है। यह निश्चित है कि बालक के स्वभाव पर उसकी माता का और बुद्धि पर पिता का प्रभाव पड़ता है। गर्भावस्था में और जन्म के बाद भी। वाल्मीकि ने लिखा भी है कि मनुष्य पिता का अनुकरण नही करता, अर्थात् माता का ही करता है: 'न पित्र्यमनुवर्त्तन्ते मातृक द्विपदा इति।' पिता का प्रभाव न पड़े, ऐसी बात नही। पिता का वीर्य दूषित होने से सन्तान शरीर से सदोष तो हो ही जाती है। गर्भ मे प्राण तो पिता का ही जाता है: 'आत्मा वै जायते पुत्रः।' शारीरिक, मानसिक तेज पुत्र को पिता से ही मिलता है। जन्म के बाद पिता का व्यवहार पुत्र के चरित्र-विकास पर प्रभाव डालता है। यदि पिता बड़ा क्रूर और आतकवादी होगा तो बच्चे का उत्साह ढीला होते-होते क्रूरता-भीरुता उसके स्वभाव में समा जाएगी। जो बच्चे बचपन मे सत्रस्त रहते है, वे आगे चलकर हकलाने लगते है, उनकी बुद्धि कुठित हो जाती है और उनका आत्म-विश्वास नष्ट हो जाता है। किसी भी कमजोर आदमी को डांटकर देखिए, अत्याचार का भय दिखलाइए, उसमें ये लक्षण प्रकट होगे। बार-बार जिसका हृदय धड़काया जाएगा, वह आगे चलकर धैर्यहीन तो हो ही जाएगा।

घरेलू जीवन का ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। मनुष्य के स्वभाव की रूपरेखा बचपन में बनती है। जो धारणाएं उस समय मन में बैठती है वही आगे भी पनपती है। उस समय की सगति का भी आगे तक प्रभाव बना रहता है। सबको जानकर तब किसीकी तत्कालीन परिस्थिति देखिए। उसकी जन्मगत विशेषताएं उसके आगे की विशेषताओं पर प्रभाव डालती हैं।

गृह-दशा की जानकारी के लिए व्यक्ति-विशेष की स्त्री के सम्बन्ध

में या उसके दाम्पत्य-जीवन के सम्बन्ध में भी जांच करनी चाहिए। यदि पत्नी अधिक धनी घर की होगी, बहुत शौकीन या चचला होगी तो पति के जीवन पर इन सबका प्रभाव पड़ेगा। वह परेशान और चिन्तित ही व्यक्त होगा। यदि परस्पर कलह रहता होगा तो पुरुष बाहरी व्यवहार में भी रूक्ष स्वभाव का प्रतीत होगा। इसी प्रकार गार्हस्थ्य जीवन की सफलता-विफलता का भी मनुष्य के स्वभाव और आचरण पर प्रभाव पडता है। शील, शिष्टाचार आदि कुलीनता के अग माने जाते है तथा दुर्विनीतता, उद्दण्डता, असभ्यता आदि को अकुलीनता के अन्तर्गत माना जाता है। अदालतो द्वारा दण्डित अपराधियों में से 80 प्रतिशत ऐसे होते हैं जो गृह-जीवन की भग्नता के कारण अपराधी वन जाते है।

2. आर्थिक दशा—किसीको समझने के लिए उसकी आर्थिक स्थिति को भी देखना चाहिए। कोई स्वभाव से परम उदार हो सकता है, पर आर्थिक विवशता के कारण उसको प्रत्यक्ष नही कर सकता। यदि वहुत परिश्रम करके भी कोई निर्धन ही वना रहता है तो उसको असमर्थ, अयोग्य मानने के पहले हमें यह भी देखना चाहिए कि कही वह पूर्वजों के ऋण तो नही पटा रहा है अथवा उसके आश्रितों की सख्या तो अधिक नही है। यह संभव है कि कोई स्वभाव से स्वाभिमानी हो, पर आर्थिक दशा खराब होने से वह सबके सामने झुकने को विवश हो गया हो। यह भी संभव है कि कोई स्वभाव से महाक्रूर हो, पर धनाभाव ने उसके जोश को दबा रखा हो। आर्थिक दशा बहुत प्रकार से मनुष्य के चरित्र को वनाती-बिगाड़ती है। ऋण लेनेवाले का आत्मसम्मान तो यो ही समाप्त हो जाता है; और ऋण देनेवाला प्राय: सद्व्यवहार भूल जाता है। लेन-देन से भावो में कैसा विचित्र परिवर्तन हो जाता है इसपर 'गुलिस्ता' में एक छोटी-सी कथा है। एक महात्मा के पास भक्तों का वड़ा जमाव होता था। दिन-भर लोग दर्शन के लिए उनके पास आते रहते थे, इसलिए उनको पूजा-पाठ का समय नही मिलता था। एक दिन उन्होंने एक व्यवहारज्ञ से अपनी निवृत्ति का उपाय पूछा। उसने कहा—जो तुमसे मिलने आते है उनमें से कुछ को तुम द्रव्य ऋण के तौर पर दे

दो और उनमें से जो समृद्ध जान पड़े उससे ऋण-याचना करो। महात्मा ने ऐसा ही किया और परिणाम यह हुआ कि जो ऋण ले गए वे इस विचार से नहीं आए कि कही महात्मा उसको वापस न मांगे और शेप लोग इस विचार से नही आए कि कही फिर कुछ मांग न वैठे।

3. सगति, व्यवसाय—संगति से मनुष्य की अच्छी परीक्षा होती है। यूरोपियन विद्वान् ने लिखा है कि यदि मुझे यह मालूम हो जाए कि तुम किसके साथ रहते हो, तो मै बता सकता हूं कि तुम कौन हो अर्थात् किस प्रकार के आदमी हो।[1]

व्यवसाय भी एक अंश तक व्यक्तित्व को प्रकट करता है। यदि कोई स्वतन्त्र और स्थायी व्यवसाय करता है तो वह अधिक स्वाभिमानी, प्रवन्ध-कुशल और स्थिरमति होता है। सेवा-व्यवसाय करनेवाले प्रवन्ध-कुशल हो सकते हैं पर उतने स्वतन्त्र और आत्मविश्वासी नही। रोज कुआं खोदकर रोज पानी पीनेवाले शान्त और स्थिरवुद्धि के हो ही नही सकते। द्यूत का व्यवसाय करनेवाला विश्वासपात्र और सत्यवक्ता कहां से होगा?

यदि कोई किसीका नौकर है तो उसके मालिक के व्यक्तित्व से उसका पता चल जाएगा। चर्चिल का नौकर महात्मा गांधी का अनुयायी कैसे होगा? क्रोधी का चरण-सेवक स्वाभिमानी नहीं हो सकता। वेश्या का नौकर दलाल ही होता है। कायर का नौकर गुण्डा भले ही हो, महावीर नही होता। इसी प्रकार सेवक से स्वामी का पता चल जाता है। चोर का स्वामी या तो स्वयं चोर होगा या मूढ़; डाकू का सरदार महाडाकू होता है। हनुमान का स्वामी हनुमान से भी वली और प्रभावशाली था।

4. वेश-भुपा—वेश-भूषा को भी देखिए। सरल स्वभाव के आदमी का पहनावा भी सादा होता है। वना हुआ आदमी बड़ा आडम्वर फैलाता है। उद्यमी का पहनावा चुस्त होता है और वुद्धि व्यवसाय करने वालों का ढीला-ढाला। अस्त-व्यस्त चित्तवाले का वेश भी अस्त-व्यस्त

---

1 Tell me with whom thou art found and I will tell thee who thou art.
—Goethe

होता है। हल्के आदमियो की वेश-भूषा बहुत ढीली-ढाली, सजावट से भरी हुई और बारीक से बारीक कपड़ो की बनी होती है। जिसके स्वभाव मे कृत्रिमता नही होती वह मोटा कपड़ा पहनता है। भड़कीली तबीयत वाले बड़े भड़कीले कपड़े पहनते है।

वेश-भूषा का इतना अधिक प्रभाव सामाजिक जीवन पर पड़ता है कि प्राय: साधारण लोग उसीसे प्रभावित होते हैं। पुलिस के कान्स्टेबल का व्यक्तित्व उसके चेहरे से नही उसकी वर्दी से प्रकट होता है। अंग्रेजी राज्य में पतलून पहनना ही बडा आदमी होनें का प्रमाण था। अब लोग खद्दर की वेश-भूषा को देशप्रेमी होने का चिह्न मानते हैं और बहुत-से लोग इसका अनुचित लाभ भी लेते है। देहातों मे बड़ी ऊची पगड़ी बाधकर अब भी महामूर्ख ब्राह्मण पण्डित बनकर अपने को पुजवाते है। इस प्रकार बनावटी वेश-भूषा से लोग अपने व्यक्तित्व को बढा-चढ़ाकर दिखाते है। यह सब देखते हुए केवल पहनावे से किसीके रूप को पहचानने में बड़ा भ्रम हो सकता है। तो भी वेश-भूपा से कुछ न कुछ वास्तविकता का पता चल जाता है, यह मानना पड़ेगा।

5. विद्या-बल—मनुष्य का सस्कार विद्योपार्जन से भी होता है, इसको कौन न मानेगा! पढा-लिखा आदमी चाहे स्वभाव का अच्छा हो या न हो, बुद्धिमान् क्रियावान् हो या न हो, विद्वान् तो होगा ही। मूर्खो की अपेक्षा उसकी सगति अधिक लाभदायक होगी। उसपर शासन करना कठिन होगा। उसमें स्वाभिमान किसी न किसी मात्रा में अवश्य होगा। अतएव किसीके आत्मरूप पर विचार करते समय यह भी देखना चाहिए कि उसमें कितना और किस प्रकार का विद्या-बल है, कितने विपयो में उसका प्रवेश है और उन विपयों का उसको कितना अभ्यास है। यह भी देखना चाहिए कि उसके मस्तिष्क में मेधा-शक्ति भी है या रट-रटाकर केवल उपाधि ही प्राप्त कर ली है। यह भी देखना चाहिए कि लौकिक व्यवहार में वह उस विद्या का सदुपयोग करता है या दुरुपयोग। मुख्य रूप से यह देखना चाहिए कि उसको विद्या का अजीर्ण तो नही है।

6 शिष्टाचार—शिष्टाचार भी विशेप रूप से देखने की वस्तु है।

शील, स्नेह, सौजन्य, सत्कार आदि केवल वाणी से ही नहीं प्रकट होते हैं—वे आंखों से, आकृति से और व्यवहार से आकर्षक बनते हैं। शिष्टाचार-पालन से मनुष्य के बड़प्पन का बोध होता है। मूर्ख लोग अपनी अशिष्टता के विज्ञापन से ही पकड़ में आते हैं। किस अवसर पर कैसा व्यवहार करना चाहिए, इनसे अनभिज्ञ होने के कारण वे प्रायः अशिष्ट बन जाते है। एक रूसी कहावत है, जिसका अर्थ यह है कि गधे को यदि मेज के पास कुर्सी पर बैठा दीजिए तो वह कूदकर मेज पर बैठ जाएगा और सोचेगा कि मनुष्य लोग मूर्ख हैं जो इतना बड़ा सपाट मैदान छोड़कर संकीर्ण कुर्सियों में समाए हुए हैं।

7. खान-पान—कौन किस तरह का खाना खाता है, कैसे खाता है, इससे भी आदमी की जांच होती है। खाने का असर मस्तिष्क और मानव-चरित्र पर पड़ता है, इसे हम लिख चुके है। अधिक अनुपयुक्त प्रकार का खाना खानेवाला भी कैसा हो जाता है, यह भी लिखा जा चुका है। अधिक खानेवाला मूर्ख होता ही है। भोजन कोई किस प्रकार खाता है, इससे भी उसकी बुद्धि-स्थिति का पता चलता है। स्थिर स्वभाव का व्यक्ति मुह बन्द करके अच्छी तरह चबाकर खाता है और खाते समय उसके मुह से चबाने की ध्वनि नहीं आती। उसकी उगलियां भी ऊपर तक गन्दी नही होती। चचल स्वभाव का व्यक्ति बहुत जल्दी खाता है, मुह खोलकर सड़प-सड़प की ध्वनि के साथ खाने को निगलता है, तथा हाथ ही नही, सामने का कपड़ा भी गन्दा कर लेता है।

8. हंसना—हसते समय मनुष्य की सरलता अथवा वक्रता अवश्य स्पष्ट हा जाती है। शान्त प्रकृति का मनुष्य प्रायः मुस्कराता है; सरल प्रकृति का खिलखिलाकर हसता है अथवा बहुत प्रसन्न होने पर अट्टहास करता है; पुरुपार्थी प्रायः अट्टहास करता है; निकम्मा या धूर्त आदमी घोड़े की तरह हिनहिनाता है; सभ्य आदमी उचित अवसर पर हंसता है, असभ्य अनुचित अवसर पर। सभ्य की हंसी में उसके दांत के पीछे का भाग कम दिखाई पड़ता है; असभ्य का सारा कण्ठ-देश राक्षस के गले की तरह खुल जाता है। हसमुख प्रसन्नचित्त होता है, कभी न हसनेवाला महाशुष्क मनोवृत्ति का तथा सदा उपहास

करनेवाला दुर्बुद्धि या कुटिल स्वभाव का होता है। सभ्य व्यक्ति व्यग्य-विनोद से हसते है। दुष्ट जीव दूसरों को सकट में देखकर या उनको वेवकूफ बनाकर हसता है। गन्दे स्वभाव का आदमी प्रायः भद्दे मजाक करता है।

और भी कुछ जान लीजिए

उपर्युक्त बातो को ध्यान में रखिए ही, कुछ और छोटी-मोटी बातों की सहायता से मनुष्य के रूप को पहचानिए :

1. अभिमानी व्यक्ति की दृष्टि सबके सिर के ऊपर रहती है; वीर स्वभाव के, सत्य तथा निश्छल स्वभाव के व्यक्ति आंख से आंख मिलाकर देखते है; सज्जन और स्नेही दूसरे के चेहरे की ओर देखते है; संकोची और शीलवान वक्षस्थल की ओर; नीच व्यक्ति कमर के नीचे; महानीच जूतों पर और लज्जित व्यक्ति अपने ही अंगों को देखता है। बिलकुल निकम्मा आदमी दूसरों की पीठ ही देखता है, क्योंकि वह पीछे-पीछे चलने का अभ्यासी होता है। भांड-स्वभाव का आदमी आंखे मटकाता है। वह किसीको नही देखता, दूसरे ही उसको देखते हैं।

2. सज्जन व्यक्ति किसीके गुणों की प्रशंसा मुक्त-कण्ठ से करता है, दुर्जन दबी जबान से, चाटुकार ढोल पीटकर और धूर्त 'किन्तु', 'परन्तु' लगाकर।

3. शब्दो का अपव्यय करनेवाला समय का अपव्ययी भी होता है।

4. सभ्य व्यक्ति मुह पर श्रद्धा-स्नेह के भाव दिखाकर सरलता-पूर्वक हाथ से किसीका अभिवादन करता है। दभी उपेक्षापूर्वक या तो मुह से कुछ बोल देता है या हाथ को बिजली की तरह चमकाकर गिरा लेता है। धूर्त बड़ा भारी दण्डवत् करता है और बार-बार हाथ जोड़ता है।

5. सत्पुरुष कभी यह नही कहता कि मेरा वह सिद्धान्त है। उसका सिद्धान्त तो उसके कार्यो से प्रकट होता है। जिसका कोई सिद्धान्त नही होता, वही चिल्लाता है कि मै तो अमुक सिद्धान्त का माननेवाला हूं। धूर्त और स्वार्थी लोग छोटी-छोटी बातो को भी सिद्धान्त का रूप दे देते हैं।

6. जब दो व्यक्तियों में परस्पर विश्वास होता है, तभी वे स्वाभाविक रीति से व्यवहार करते हैं। अविश्वास होने पर भला व्यक्ति भी प्राय: दुर्जन से अपने व्यक्तित्व को छिपाता है।

7. किसीका प्रिय विषय क्या है, इसकी जानकारी से उसकी मनोवृत्ति का झुकाव मालूम हो जाता है। सज्जनो को सार्वजनिक विषय प्रिय होते हैं। नर-वीरों को शासन-सम्बन्धी, साधारण को आमोद-प्रमोद-सम्बन्धी, नीच को दूसरों का अप्रिय करनेवाले विषय प्रिय लगते हैं और मूढ़ को सारा संसार असार लगता है।

भ्रम में न पड़िए

किसीके सम्बन्ध में कोई विचार स्थिर करते समय भ्रम में न पड़िए। किसीमें दस-पांच दुर्गुण हो सकते हैं, पर साथ ही पचास गुण हो सकते हैं। उन गुणों में वे दुर्गुण छिप जाएगे—उसी तरह जैसे चन्द्र में कलंक और आम में गुठली। साधारण परिस्थिति में किसीके गुण-दुर्गुण अच्छी तरह प्रकट नही होते। जिसका व्यक्तित्व परिस्थितियों के ऊपर उठा हुआ दिखलाई दे उसीको विजयी मानिए। जहां जिसके प्रति आपको भ्रम हो वहां परीक्षा करके देखिए। किसीकी ओर थोड़ा घूरकर देखिए कि वह स्थिर रहता है या अस्थिर हो जाता है अथवा आपकी आंखे फोड़ने दौड़ता है। किसीको छेड़कर देखिए कि उसमे सहनशीलता है या शीघ्र जल-भुन जाने की प्रकृति। किसीकी प्रशंसा करके देखिए और फिर उसीकी थोड़ी आलोचना करके देखिए। संभव है वह तुलसी की इस उक्ति को चरितार्थ करे :

> नीच चंग-सम जानिए, सुनि लखि तुलसीदास।
> ढील देत भुंइ गिरि परत, खैचत चढ़त अकास।।

किसी विषय में उसकी राय देखिए कि वह उसके सुलझाने में साधक होता है या बाधक। किसीको कोई जिम्मेदारी का काम सौपिए, देखिए वह खडा रहता है या अपने भागने को सडक बनाता है। जो आपसे दूसरों की रहस्य की बाते कहता है, उसको अपना भी कोई रहस्य बताकर देखिए और कहिए कि किसीसे कहे नही। सम्भव है वह एक-दूसरे के रहस्य ही कहता घूमता हो। किसीका उपकार करके

देखिए कि वह कृतज्ञ रहता है या कृतघ्न हो जाता है। किसीकी गलतियां पकड़कर देखिए कि वह सच्चे आदमी की तरह उनको मान लेता है या संकोची व्यक्ति की तरह लज्जित हो जाता है या धूर्त की तरह बातों से उनको ढकने की चेष्टा करता है, अथवा दुष्ट की तरह उसके कारण आपको अपना शत्रु मानने लगता है। इन प्रयोगों से बहुतो के सम्बन्ध में भ्रम-निवारण हो सकता है।

और भी कई तरह के भ्रम हो सकते है। किसीको साधु स्वभाव का, शान्तचित्त तथा स्त्रियो से विरक्त देखकर उसको लोग क्लीव समझ लेते है। वह सयमी भी हो सकता है। पुराने ढंग के लोग चौदह-पन्द्रह वर्ष के बालको में कुछ स्वच्छन्दता आते देखकर समझते हैं कि लड़का बिगड़ गया। उनके मुह पर मुहासे देखकर समझते है कि उनका ब्रह्मचर्य खडित हो रहा है। यहां घोर भ्रम होता है। चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में युवावस्था का आगम होने लगता है और शरीर की ग्रन्थियां अपने स्थानो में कुछ परिवर्तन करने लगती है, जिनके कारण सबका स्वभाव कुछ बदलता है और कुछ ग्रथियों के परिवर्तन तथा रक्त में विशेष गर्मी के कारण मुहासे निकलते है। एक तरह से शरीर में वसन्त ऋतु का आगमन होता है। विचारों में पतझड़ की हवा चलती है और मुख पर ऋतु की कोपले फूट निकलती है। ऐसी दशा में किसीकी परीक्षा करते समय उसकी अवस्था की स्वाभाविक विशेषताओ का ध्यान रखना आवश्यक है।

अपने दोषों को भी देख लीजिए

किसीके व्यवहार में कोई त्रुटि जान पड़े तो उसका सारा दोष मानने के पहले आप यह भी देख लीजिए कि कही आप ही ने तो नही उसको उसके मार्ग से गिरा दिया है। यदि कोई उत्तेजित होता है तो उसका मूल कारण सोचकर तब उसके स्वभाव को दोष दीजिए। सम्भव है, आप उसके ऊपर या उसकी किसी बात पर हस दिए हों, या आपने अन्यायपूर्वक दूसरो के सामने उसकी सत्य किन्तु अति कठोर आलोचना कर दी हो। उस परिस्थिति में शान्त स्वभाव का व्यक्ति भी उत्तेजित हो सकता है। हरएक व्यक्ति स्वभाव से कुछ न कुछ

खुशामद-पसन्द होता है, और चाहता है कि लोग उसका मजाक कम से कम दूसरों के आगे न उड़ाएं। यदि आप इसका ध्यान नही रखते तो अवश्य ही पीड़ित व्यक्ति आपे से बाहर हो जाएगा।

दूसरी भूल आप वहां कर सकते है जहां किसी भाव-प्रधान बात में तर्क का आश्रय ले। यदि कोई आपके तर्को को न माने तो आप उसे अयोग्य, व्यर्थ या मूर्ख समझेगे। पर आपको इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य तर्क से कम वश में आता है, भावों के सूत्र में यह शीघ्र वध जाता है। वियोगिनी स्त्री को आप तर्क से शान्त नही कर सकते। रुष्ट लड़के को तर्क से नही, स्नेह-भाव से मनाया जाता है। यदि वह आपके तर्क की अवहेलना करे तो उसको दुष्ट न मानकर अपने को अनुभवशून्य मानिए।

तीसरी मुख्य भूल आप यह कर सकते हैं कि स्वय विशेष सम्मान के पात्र न होकर दूसरों से आशा करे कि वे आपका सम्मान करे और न करने पर उनको अभिमानी या अशिष्ट मान लें। आपकी योग्यता-अयोग्यता, गुरुता-लघुता और उपयोगिता के अनुकूल ही दूसरों की दृष्टि में आपका स्थान बनेगा। आप चाहे जितने भी धधके, उसको देखकर कमल नहीं खिल सकता।

चौथी भयंकर भूल यह हो सकती है कि आप स्वय तो कुछ न करें और दूसरों से आशा करे कि वे ही आपका सब काम कर दे और यदि वे न करे तो आप उनको बुरा आदमी मान ले। यह स्मरण रखना चाहिए कि कोई व्यक्ति दूसरे का काम पूर्ण रूप से नही कर सकता। दूसरा आदमी सहयोगी ही हो सकता है। नौकर भी तभी काम करता है जब मालिक भी कुछ करता है। जो मालिक सोता है, उसके नौकर भी सोते हैं। दूसरों को लापरवाह या सुस्त समझने के पहले देख लीजिए कि आपकी लापरवाही से तो वे वैसे नही बन गए हैं।

पाचवीं भूल आपकी स्मरणशक्ति की हो सकती है। यदि आप कोई बात भूल जाएंगे तो दूसरे अवसर पर दूसरे को झूठा बना देगें। आप किसीकी बातों की जाच तभी कर सकते हैं जब उनको ठीक-ठीक याद रखें।

एक और त्रुटि यह हो सकती है कि आप स्वयं मिलनसार स्वभाव के न हो और दूसरों को दोष दे कि वे बड़े उजड्ड तथा मिथ्याभिमानी है। आप पहले अपनी परीक्षा कर लीजिए और देख लीजिए कि कहां तक आपमें सामाजिक होने के सद्गुण हैं। आगे हम कुछ प्रश्न देते है, जिनके उत्तर देकर आप पता लगाइए कि कहां तक आप समाज में प्रवेश करने योग्य है। दूसरो से भी इन प्रश्नों को पूछकर आप उनके विषय में बहुत कुछ जान सकते है, इसलिए हमने इसी प्रसंग में इनका उल्लेख करना उचित समझा है।

कुछ व्यक्तिगत प्रश्न

1. क्या आप किसी भी ढग की वेश-भूषा में बड़े-छोटों के साथ आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास के साथ मिल लेते है ?

2. क्या आपका उच्चारण शुद्ध है ?

3. जब आप किसी मित्र से मिलते है तो क्या आप किसी प्रश्न के साथ बातचीत का श्रीगणेश करते है ?

4. क्या आप प्राय. यह कहते है कि 'क्षमा कीजिएगा, ऐसा नही हो सका', 'मुझे दु:ख है, मैं ऐसा न कर सकूंगा' या 'आप बुरा न मानिएगा', 'मेरा अभिप्राय यह है' ?

5. क्या आप मित्र से प्रात: उसके कार्यालय में मिलते हैं ?

6. बड़े आदमियो से भी क्या आप आत्मसम्मान के साथ मिलते हैं ?

7. अपनी स्पष्ट आलोचना सुनकर आपको क्या खिन्नता नही होती ?

8. क्या आपकी ध्वनि स्पष्ट और गम्भीर है ?

9. क्या आप अपनी बातचीत के कारण व्यवहारकुशल माने जाते है ?

10. क्या आप अपने को कुछ लोगों का आज्ञाकारी और कुछ लोगों का अफसर बनाकर योग्यतापूर्वक किसी कार्य को सुचारु रूप से कर सकते हैं ?

11. चलते समय या खड़े रहने पर अथवा बैठने पर—इन तीनों अवस्थाओं में से किसी अवस्था में—आप झुकते है या नहीं ?

12. किसीसे बातें करते समय क्या आपको पता चल जाता है कि सुननेवाला आपकी बातों में कितना रस ले रहा है ?

13. कभी पहले के हास्य-व्यंग्य आपको याद रहते है कि नही ?

14. आप अपने मित्रों के आग्रहों से प्रायः अपनी जान छुड़ा लेने में समर्थ हो जाते हैं कि नही ?

15. आप हंसी-मजाक में भी अपने सत्य-व्रत का पालन करते है या नही ?

16. क्या आपको अपने परिचितों की कमजोरियों का ध्यान रहता है ?

17. क्या आप अपने वैवाहिक जीवन को सफल मानते है ?

18. क्या आपको अपनी भूलों पर कभी-कभी हसी आती है ?

19. आप मित्र की मित्रता का निरन्तर लाभ लेते रहते है ?

20. सच बताइए, क्या कभी आपके मन में यह भावना उठती है कि आपकी पत्नी आपके किसी सौभाग्यशाली मित्र की पत्नी जैसी रूपवती होती तो आप अधिक सुखी होते ?

21. क्या आपको स्त्रियों के सामने खड़े होने में कुछ झिझक मालूम होती है ?

22. आप अपने मिलने-जुलनेवालों से प्रायः कोकशास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र, कर्तव्यशास्त्र, वेदान्त और दर्शनशास्त्र की चर्चा करते हैं कि नही ?

23. क्या आप अपने मित्रों के साथ घूमने-फिरने भी जाते है ?

24. जब आपके मित्र आपको सिनेमा दिखलाने ले जाते है तो प्रायः वे ही स्वयं टिकट खरीदकर आपको सम्मानपूर्वक अन्दर ले जाते या नही ?

25. किसी मित्र के घर पर आपके बार-बार जाने पर भी क्या उसके घरवालों को आपके प्रति कोई अरुचि नही हुई ?

26. क्या आपको कहावते, मुहावरे और कवियों की कुछ मनोहर उक्तियां याद है ?

27. जब मित्र-मण्डली में किसी गम्भीर किन्तु आवश्यक विषय पर

विचार-विमर्श होने लगता है, तो क्या आपको शीघ्र घर लौटने का ध्यान आता है ?

28. क्या आप अपने व्यवसायवालों या बन्धु-बान्धवों के साथ ही अधिक मेलजोल रखते हैं ?

29. क्या आप अपने मन की सभी व्यथाएं मित्रों में प्रकट करते हैं ?

30. जहां लोगों में भाग्य के कुचक्र की कथाएं चलती हैं, वहां उनमें आपका नाम भी कथा-नायक या पात्र के रूप में वर्णित होता है या नही ?

31 क्या जब आप अपनी वात समाप्त कर लेते है तो लोगों को आपकी स्थिति पर दया आती है ?

32. दूसरों के व्याकरण-दोप आप उनको तत्काल बता देते है या नही ?

33. सिनेमा के चलते हुए गाने सुनकर क्या आप मुग्ध हो जाते है?

34. क्या कभी-कभी आप स्वयं भी कुछ गा लेते हैं ?

35. क्या शाम को आप प्राय: रेडियो सुनने की अपेक्षा कही बाहर जाना पसन्द करते हैं ?

36. क्या आपके घर में रोज सुवह-शाम आपकी कचहरी लगती है ?

37. क्या लडको के कपड़े आप अपनी रुचि से नही पसन्द करते है?

38. क्या आपको इसका अनुभव होता है कि पहले आपका जीवन अव से अधिक सुखी था ?

39. क्या परिचित लोगों को व्यक्तिगत पत्र लिखने में आपको बहुत देर तक सोचना पड़ता है ?

40. क्या घरेलू चिन्ताओं से कभी-कभी आपका मन उखड़ जाता है ?

41. क्या आपका शाम का कार्यक्रम बंधा रहता है ?

42. क्या आपको कभी-कभी इसका ध्यान आता है कि अव आपकी वृद्धावस्था आ गई ?

43. क्या कभी-कभी आपको अपने बड़े लड़के के प्रति ईर्ष्या-द्वेष होता है और आप, इस विचार से कि कहीं वह घर में आपकी गद्दी न छीन ले, उसको नीचा दिखाने के लिए गुप्त षड्यन्त्र या उसका मान-मर्दन करते है? अथवा क्या कभी आप यह समझते हैं कि आपका लड़का आपकी मृत्यु के बाद पूर्ण वयस्क हुआ होता तो ठीक था? अथवा क्या आप कभी यह समझते हैं कि वह आपसे दूर रहे तो आपका वैभव अधिक सुरक्षित रहेगा?

44. क्या आपके घर में किसी आकस्मिक गृह-संकट का दोष किसी नवविवाहिता गृहिणी या किसी नवजात शिशु पर डाल दिया जाता है?

45. यदि आपका नौकर अलग हो जाए या बीमार पड़ जाए, तो क्या आपको बाजार में खाना खाने के लिए बाध्य होना पड़ता है?

46. नौकर के बीमार होने पर आप उसके इलाज का यदि प्रबंध करते हैं तो उसके वेतन में से दवा आदि का मूल्य काट लेते हैं या नही?

47. क्या आप प्रायः पाखण्ड दिखलाते है जिससे लोग भयवश आपकी अधिक सेवा करें? और कभी घर के कामों में कृत्रिम विरक्ति दिखाकर तरह-तरह के नाटक करते है?

48. किसीके रूठने पर क्या आप उसको बिना धमकाए हुए भी मना लेने में सफल हो जाते हैं?

49. दूसरों के मेहमान होने पर क्या आपको अपने घर से अधिक सुख मिलता है?

50. क्या आपके नौकर आपको प्रसन्न रखकर आपके घरवालों का जब चाहें अपमान कर लेते है?

51. घर में क्या आप परम स्वतन्त्र रह सकते है और विवाह आदि में भी किसीकी राय नही लेते?

52. क्या आप घर में अपनी प्रभुता को स्थायी रखने के लिए किसी न किसीको मारते-पीटते या पेरते रहते हैं?

53. काम हो जाने के बाद कोई न कोई त्रुटि निकालकर क्या आप नौकरों-मजदूरों के पैसों में कुछ काट-कपट करने के व्यसनी है?

54. क्या आप बहुत विद्वान्, लोकप्रिय होकर भी घरवालों के प्रति

आत्मीयता का भाव दिखलाने में असमर्थ हैं ?

55. क्या आप घर में भी दो तरह की बातें करते हैं; अर्थात् मन में कुछ रखते हैं, कहते कुछ है तथा एक बार कुछ कहकर बाद को पलट जाते हैं ?

56. क्या आपको घरवालों के लिए रोज नये-नये कानून बनाने और दफा 144 लगाने का शौक है ?

57. क्या आपके सम्बन्धी लोग आपके घर बार-बार आना पसद करते है ?

58. आपके घर में त्योहार या मंगलोत्सव मनाए जाते हैं या नही?

59. क्या आपके लड़के और नौकर आपके चेले जैसे लगते हैं ?

60. क्या आपका इतना आतंक रहता है कि बच्चे दिन-रात पुस्तकों में ही अपनी आंखें गड़ाए रहते हैं ?

61. क्या आप बहुत-सी जीवित स्त्रियों के पति हैं ?

62. क्या आपके घर में हरएक प्राणी यह अनुभव करता है कि आप उसीको सबसे अधिक चाहते है ?

63. क्या सब स्वेच्छा से आपके सुख-दु:ख में सम्मिलित होते है ?

64. बाहर से जब आप कुछ लाते है तो उसमें से पहले अपना हिस्सा अलग कर लेते है या नही ?

65. क्या आप प्राय: घर में ही बैठे रहते हैं ?

66. क्या आपको क्रोध करके पछताना पड़ता है ?

67. कभी अकेले रहने पर क्या आप ऊबने लगते हैं ?

68. क्या आप बच्चों, बूढ़ों और नवयुवकों की संगति यथासमय आनन्दपूर्वक कर सकते है ?

69. कोई जब आपके प्रति स्नेह, सम्मान या कृतज्ञता प्रकट करता है, तो क्या आप उसके वश में हो जाते हैं ?

70. क्या आप किसीको बधाई या धन्यवाद देने में प्राय: चूक जाते हैं ?

71. जब आप रसमग्न होकर बाते करते हों तो यदि कोई अन्य व्यक्ति अपनी बातों से लोगों का ध्यान आपकी ओर से फेर ले, तो आप

रूठ जाते हैं ?

72. क्या आप नाना विषय में कुछ न कुछ प्रवेश रखते है ?

73. परिचितों के नाम आपको आसानी से याद रहते हैं या नही ?

74. क्या आप बहुत-से स्थानों पर केवल हाजिरी देने जाते हैं ?

75. क्या आप सभीसे घुल-मिल जाते है ?

76. क्या आप दूसरो के समय का भी ध्यान रखते है ?

77. क्या आप किसीसे पहली मुलाकात करने में केवल दस-पन्द्रह मिनट ही वाते कर सकते हैं ? और अपने काम की चर्चा करना भूल जाते है ?

78. किसीके घरेलू काम में कभी-कभी हाथ बंटाते हैं कि नही ?

79. क्या आप दूसरों के पास केवल गप्प करने जाते है ?

80. दूसरों की बाते आप ध्यान से सुनते है या नही ?

81. क्या आप दूसरों के मन में प्रायः सन्देह उत्पन्न करके फिर वताने का आश्वासन देते हैं ?

82. दूसरे लोग जव आपका मजाक करते हैं, तो क्या आप नक्कू वन जाते हैं ?

83. क्या आप 'जिन्दादिल' और 'हाज़िरजवाब' हैं ?

84. दूसरे जब चुप हो जाते है, तव भी आप बोलते ही रहते हैं ?

85. आप आसानी से बातचीत में विषय-परिवर्तन करने में सफल हो जाते हैं कि नही ?

86. नौकरों से गाली देकर वाते करने का अभ्यास आपने किया है कि नहीं ?

87. जिससे आपके नौकर या बच्चे सावधान रहे, आप छोटी गलतियों पर भी उनको बुरी तरह डांटकर उनकी भर्त्सना कर देते है या नहीं ?

88. अपनी गलती सुधारते समय क्या आप अपने को बहुत नीचे गिरा लेते है ?

89. क्या पास में पिस्तौल न रहने के कारण आपको बदमाशों से हमेशा भय बना रहता है ?

90. यदि आपके ये रहस्य, जो इन प्रश्नों के उत्तर के रूप में प्रकट हुए हैं, आपके मित्रों को बता दिए जाएं तो चित्त में आपको कुछ व्याकुलता तो नही होगी ?

91. क्या आप उठने-बैठने, खाने-पीने में सब मित्रों के साथ समानता का व्यवहार करते हैं ?

92. परिचितों के साधारण पत्रों का उत्तर क्या आप तत्काल दे देते हैं ?

अपने उत्तरों को तोलिए

आपने 'हां' या 'नही' में उत्तर दिए होगे। हम भी उसी प्रकार उत्तर देते है। दोनों का मिलान कीजिए। यदि अनुकूल उत्तरों की सख्या 75% निकले तो अपने को प्रथम श्रेणी में, 50% निकले तो द्वितीय श्रेणी में, 35% निकले तो साधारण श्रेणी में पास समझिए। यदि इससे कम निकले तो आप जिस श्रेणी के मनुष्य हैं, उसी श्रेणी में पड़े रहेगे और आपके पीछे वाले शीघ्र आपके समकक्षी होकर आगे बढ़ते जाएगे।

1. हा। 2 हा। 3. हा। 4. नही। 5. नही। 6. हां। 7. नही। 8 हा। 9 हां। 10 हां। 11 नही। 12 हां। 13. हां। 14 नही। 15. नही। 16 हा। 17. हां। 18 हां। 19 नही। 20 नही। 21 नही। 22 नही। 23. हां। 24. नही। 25. नही। 26 हां। 27 नही। 28 नही। 29 नही। 30 नही। 31. नही। 32. नही। 33. नही। 34. हां। 35 हां। 36 नही। 37 नहीं। 38. नही। 39. नही। 40. नही। 41 नही। 42. नही। 43. नही। 44. नही। 45. नही। 46. नही। 47. नही। 48. हां। 49 नहीं। 50 नही। 51. नही। 52 नही। 53. नही। 54. नही। 55. नही। 56 नही। 57. हा। 58. हा। 59 नही। 60. नही। 61. नही। 62. हां। 63. हां। 64 हां। 65. नही। 66. नही। 67. नहीं। 68. हां। 69 नही। 70 नही। 71 नही। 72 हां। 73. हां। 74. नही। 75. नही। 76 हा। 77. हा। 78. हां। 79. नही। 80. हां। 81. नहीं। 82 नही। 83. हां। 84. नही। 85 हां। 86. नही। 87. नही।

88. नही । 89 नहीं । 90. नहीं । 91. हां । 92. हां ।

इन सब उपायों का सम्मिलित प्रयोग करके आप दूसरों के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विशेष रूप से जानकार हो सकते है । पिछले अन्य अध्यायों में वर्णित बातों को भी ध्यान में रखिए। यदि साधारण दशा में किसीको आप न पहचान सकें तो उसको उन्मत्त दशा में देखिए। चाहे जिस तरह का उन्माद हो, मनुष्य उसमें अपने असली रूप में खुल जाता है क्योंकि तब बुद्धि का चातुर्य नही चलता। मुख्यतः मद्य, भंग आदि के मद में तो व्यक्तित्व का नग्न रूप दिखलाई पड़ता है। इसपर सुश्रुत ने वैज्ञानिक ढंग से विचार किया है। उसके अनुसार सात्त्विक स्वभाव के मनुष्य में उत्पन्न हुआ मद, पवित्रता, उदारता, प्रसन्नता, शरीर के शृंगारित करने की लालसा, गायन, अध्ययन, कीर्तिकर कार्य करने की इच्छा, भोग और उत्साह की भावना उद्दीप्त करता है। राजस स्वभाव वाले मनुष्य में मदाधिक्य से दुःखशीलता, आत्मनाशक कर्म, साहस और कलह की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है । तामस प्रकृति के मनुष्य में अपवित्रता मत्सर, झूठ बोलना और तरह-तरह की कुप्रवृत्तियां मद्य पीने के अनन्तर जगती है। तभी आप नीच प्रकृति के लोगों को नालियों में लोटते हुए पाते है। इसका कारण सुश्रुत के मत से यह है—प्रायः सभी अपनी मूल प्रवृत्तियों को एक अंश तक रोककर रूढ़ि और लोकप्रथा के अनुकूल आचरण करते हैं। मद्य के प्रभाव से प्रकृति उत्तेजित होकर उस कृत्रिम बन्धन को तोड़कर स्वच्छन्द हो जाती है। उस समय मन की वे सभी गूढ़ बाते, जो भीतर ही भीतर हमारे आचार-विचार को प्रभावित करती रहती हैं, सबल होकर प्रकट हो जाती है। मद्य को इसीलिए चरक ने 'प्रकृति-दशक' कहा है। आधुनिक वैज्ञानिक भी मानते है कि मानव-प्रकृति के अनुसार ही मद-प्रभाव में भिन्नता होती है। शराब के नशे ही में नही, सिगरेट-तम्बाकू के नशे में भी मनुष्य अपनी आन्तरिक प्रवृत्ति के अनुसार चेष्टाएं करता है। अतएव ऐसे अवसरों पर उसकी मुखमुद्रा, व्यवहार, बातचीत का अध्ययन करना चाहिए। यदि किसीकी आकृति आपकी समझ में न आए तो वृद्धों की आकृति की परीक्षा कीजिए। किसी अंग्रेज ने सोलह आने सत्य लिखा है कि वृद्धावस्था में

मनुष्य को वही आकृति मिल जाती है जिसका कि वह पात्र होता है।[1]

तेजस्वी का चेहरा वृद्धावस्था में अधिक सतेज हो जाता है, नीच विचारो के मनुष्य का चेहरा राख या कोयला हो जाता है। गांधीजी की आकृति तो मरने के बाद भी सजीव लगती थी।

हम समझते है, इस विषय पर इस अध्याय में आपको पर्याप्त सामग्री मिल जाएगी। आप दूसरो को सूक्ष्मता से देखिए और इसका भी ध्यान रखिए कि अन्य लोग भी वैसी ही सूक्ष्मता के साथ आपको देखते होंगे। अतएव दूसरो के निकट-सम्पर्क में आने के लिए अपने रूप में, आचार-व्यवहार और चेष्टाओं आदि मे यथावश्यक सस्कार कीजिए।

---

1 In old age men acquire the faces they deserve

9

आत्म-परीक्षा

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देकर आप अपनी त्रुटियों को स्वयं समझिए, क्योंकि प्राय: दूसरे लोग शिष्टता या संकोचवश आपकी त्रुटियों को देखते हुए भी चुप रहते हैं। इन प्रश्नों को हमने जानबूझकर एक क्रम में नहीं रखा है :

प्रश्न

1. कई प्रसंग ऐसे आते है जबकि किसी कार्य के करने या न करने के सम्वन्ध में आपमें और आपकी आत्मा में भीतर ही भीतर संघर्ष होता है। उस दशा में क्या आप अन्त में आत्मा पर विजयी हो जाते हैं अथवा आपकी आत्मा ही आपको पराजित कर देती है ?

2. आपके मन में कभी-कभी अनायास हर्ष या शोक की तरंगें उमड़ पड़ती होंगी। क्या आप उनमें तत्काल बह जाते है या कुछ देर तैरते भी हैं ?

3. आपके मन में कोई विस्फोटक पदार्थ तो नहीं है जिसके कारण आप वातों की साधारण चिनगारी से दगने लगते है ?

4. क्या आपको आते देखकर लोग भयवश मन ही मन संकट-मोचन का पाठ करने लगते हैं ? दूसरे शब्दो में—क्या लोग आपसे यह समझकर डरते है कि 'जनि कहइ कछु बिपरीत जानत प्रीति-रीति न बात को' ?

5. जब आप बोलने लगते है तो आपके कंठ से सुन्दर शब्दमाला निकलती है अथवा हवाई बन्दूक दगने लगती है ?

6. क्या यह सत्य है कि दूसरो की प्रशंसा करते समय आपको शब्द-दारिद्र्य का अनुभव होता है और निन्दा करते समय सहस्रनाग की जिह्वाएं मिल जाती हैं ?

7. जब आप दूसरों से मिलते है तो जासूस की तरह तो नही प्रतीत होते ? अथवा आपको लोग किसीका भेदिया तो नही समझते ?

8. आसपास कोई भी झगड़ा होने पर क्या नारद की तरह आपका

नाम उसमें नत्थी कर दिया जाता है ?

9. किसी न किसीसे उलझते रहने का क्या आपको 'अमल' पड़ गया है ?

10. क्या यह सत्य है कि किसी विषय को अतिरंजित किए बिना आप उसको व्यक्त नही कर सकते ?

11. कलियुग को दोष देना, विधाता के विधान को उलटा बनाकर उसकी आलोचना करना, अपनी दुर्दशा का सारा उत्तरदायित्व गवर्नमेंट, भगवान् या किसी अन्य व्यक्ति पर डाल देना तथा अतीतकाल के गौरव और सुखों की एक लम्बी सूची बनाकर उसका पाठ करना—क्या यही आपकी बातचीत के मुख्य विषय होते हैं ?

12. किसीसे मिलते ही क्या आप तत्काल आत्मकथा कहने लगते है ?

13. परछिद्रान्वेषण करके आप दूसरो के दोष कंठस्थ रखते है कि नही ?

14. क्या आपको जो मिलता है वही धूर्त, अविश्वासी या बेईमान होता है ?

15 आप ही दूसरो का गुणगान करते हैं या आपका भी गुणगान करनेवाला कोई है ?

16 आपकी प्रशसा कौन अधिक करता है ? आप स्वय या आपके मित्रगण या शत्रु ?

17 आपके मित्रो की संख्या अधिक है या शत्रुओं की ?

18 क्या हवा के साधारण झोंके से भी आप छीकने लगते है ? दूसरे शब्दों मे, क्या साधारण बातो से भी आपके हृदय में बड़े-बड़े छाले पड़ जाते है ?

19. क्या आप दूसरों को भ्रम में डालने का व्यवसाय करते हैं ? दूसरे शब्दों मे—खाकी कमीज हाफपैण्ट पहनकर तथा नकली तमचा लटकाकर या प्रान्तीय रक्षा-दल मे भर्ती होकर क्या आप यह प्रचार करते घूमते है कि आप सब थानेदारों के सिरमौर हो गए अथवा किसी अफसर की हां-हुजूरी करके लौटने के बाद क्या आप यह प्रचारित करते

हैं कि आप साहब से गप्प करने गए थे और उन्होंने शासन-सम्बन्धी अनेक मामलों में आपसे राय ली है, अथवा छठे-सातवे तक पढ़कर क्या आप दूसरों को यह बताने की चेष्टा करते है कि आप इतने योग्य है कि बड़े-बड़ों के कान कतरते है; अथवा कल्पित नौकरी पाकर क्या आप यह विज्ञापित करते है कि आप उच्च पदाधिकारी हो गए या होने जा रहे हैं ?

20. क्या आप अपनी महिमा को पूर्वजो की गौरव-गाथा सुनाकर बढ़ाते हैं।

21. क्या आप बात-बात में धमकी देते है, दूसरों को चौंकाते हैं और इस प्रकार काम निकालने की चेष्टा करते हैं ?

22. क्या आप हर प्रकार की प्रतियोगिता से घबराते हैं और शकित रहते है कि दूसरे लोग आपसे आगे न बढ़ जाएं ?

23. क्या आपके नौकरों की सूची में भगवान् का भी नाम है ? अर्थात् क्या आप यह सोचते है कि अमुक काम भगवान् चाहेंगे या करेंगे, तभी होगा ?

24. गर्मी में प्रचड धूप, बरसात में मूसलाधार वर्षा, जाड़े में खांसी-बुखार और शीत-प्रकोप—ये तीनों आपके कार्य में बाधक होते होंगे। घर छोड़ते समय घर के सुख, घरवालों के मोह के अतिरिक्त दिशाशूल, अशुभ मुहूर्त, अपशकुन प्रायः आपके पैर पकड़ ही लेते होंगे। दूर जाना है—'परदेस कलेस नरेसुहु को', सभी तो वहा पराये होते है, काम अकेले नही हो सकता—ये चिन्ताएं आपको प्रायः बैठा रखती होंगी। क्या हमारा अनुमान सत्य है ?

25. क्या अधिकांश कार्यों में आप अपने को असमर्थ पाते हैं और निराश हो जाते है ?

26 क्या यह सत्य है कि आपका घर ही आपका बन्दीगृह हो गया है, जहां स्त्री जेल सुपरिटेण्डेण्ट है और बच्चे जेल-फाटक के सिपाही है ?

27. यह कहां तक सत्य है कि यदि आपको घर के झंझट न होते तो आप अधिक सुख से रहकर लोक में बड़ी उन्नति कर सकते थे ?

28. आपकी बात का लोग एक अर्थ लगाते है या अनेक ?

29. दूसरों से आप विचारों के आदान-प्रदान के लिए मिलते है अथवा अपने मत की पुष्टि करने के लिए ?

30 प्राय: जब आप किसीसे मिलते हैं तो क्या आपका श्रोता आपकी बाते सुनते-सुनते ऊघने लगता है ? अथवा, क्या वह हां-हूं करता हुआ साथ-साथ कोई अन्य कार्य भी करने लगता है ?

31 बातचीत मे आपको खडन-मडन अधिक प्रिय है, या हां में हां मिलाना अथवा बाल की खाल खीचना या ईंट का जवाब पत्थर से देना ?

32 लोगो के बीच में जाने पर क्या आपके मन में यह भावना उठती है कि सभी आपको तथा आपकी वेशभूषा को घूर-घूरकर देख रहे हैं, और आपपर टूट पड़ना चाहते है तथा चारो ओर आपकी त्रुटियो की चर्चा हो रही है ?

33. जब किसी सभा-समाज में आप जाते है तो प्राय: अपने बैठने के लिए कोई कोने का स्थान अवश्य ढूढ़ते होंगे। बैठने पर आपका चित्त शान्त रहता होगा। और कही यदि सबके बीच में बैठना पड़े तो आपका हृदय धड़कता होगा, आखे फड़कती होंगी और आप रह-रहकर भड़कते होगे। क्या हमारा यह अनुमान आप ही के सम्बन्ध में है या किसी अन्य के ?

34 क्या दिन में कई बार आपकी टोपी या पगड़ी उछलकर दूसरों के पैरो में गिर पड़ती है ? अर्थात् क्या आप बहुतों के कृपापात्र या ऋणी है ?

35 क्या आप प्राय: नतमस्तक रहते है या कमर झुकाकर चलते हैं ?

36 क्या आपको किसीके साथ मित्रता निभाने में विशेष कठिनाई होती है और आप अपने मित्रो को उतनी ही बार बदलते हैं जितनी बार कोई धूर्त व्यक्ति अपनी बातो को बदलता है या पलटता है ?

37. क्या आपके कुछ गुप्त मित्र भी हैं जिनसे आप छिपकर मिलते है ?

38. काव्य, कला, साहित्य, सगीत, नृत्य या किसी मनोरंजक कार्य

से आपको सहज अनुराग है कि नही ?

39. क्या आप कोई दैनिक समाचारपत्र पढते हैं ? यदि पढ़ते है तो कैसे समाचारों में रुचि है ? चोरी-डाके के रोमांचकारी वृत्तान्त, दुराचार के समाचार, कही बिजली गिरने या रेल से भैंसा कटने का हाल तथा पति ने पत्नी की नाक काट ली—ये विवरण आप विशेष रूप से पढ़ते हैं या दवाओं के विज्ञापन ?

40 क्या यह सत्य है कि जो आपको त्रास दिखलाता है उसके आप अवैतनिक दास बन जाते है और जो आपके आगे विनम्रतापूर्वक झुकता है, उसकी गर्दन पर चढ़ जाते हैं ?

41. आप कम हसते है या अधिक ? अट्टहास पसन्द करते हैं या मुस्कान ? कण्ठ से ही हंसते है या हृदय से भी ? दूसरों का उपहास करते हैं या हास्य-विनोद ? अपने से बड़ो के साथ हंसी-मजाक करते हैं या समान श्रेणी के लोगों के साथ अथवा नौकरों के साथ भी कर लेते है ?

42. नगर-मुहल्ले या पड़ोस के समारोहो में आप आदरपूर्वक आमन्त्रित होते है कि नही ? आमन्त्रित होकर जाने पर आमन्त्रक आपके शुभागमन से प्रसन्न होता है या आप ही अपने को धन्य मानते है ?

43. आप प्राय: कुछ ऐसी बीमारियों से पीड़ित रहते होंगे जिनका निदान नही हो पाता ?

44. क्या यह सत्य है कि कोई भी बात आपके पेट में पहुंचते ही जुलाब की गोली बन जाती है ?

45. आप अपने बच्चों के बाप हैं या अध्यापक अथवा दोनों ?

46. आप अपनी स्त्री के स्वामी है या सखा अथवा दास ?

47. आप किसी चंचला या चंडी के पति तो नही हैं ?

48. आपके घर में पधारते ही सन्नाटा छा जाता है या तूफान चलता है ?

49. शत्रुओं पर वज्रपात कराने के लिए आप भगवान् को रोज मनाते हैं कि नही ?

50. क्या आप स्वयं अपने आदर्श है ?

51. एकाएक कोई ऊंचा पद पाकर आप आपे से बाहर तो नहीं

हो जाते ?

52 क्या प्रत्येक कार्य की सफलता का श्रेय आप स्वयं लेना चाहते है ?

53. आप शीघ्र प्रसन्न होनेवाले तो नही हैं ?

54. स्वप्नावस्था में आप भयानक दृश्य देखते है, या सुन्दरी स्त्रियों को अथवा खाद्य-पदार्थो को ?

55. क्या आप पैर पटकते हुए चलते है ?

56 यदि आप दुकान खोलकर बैठते हैं तो गम्भीर बने रहते हैं या नही ?

57 क्या आप नियम से प्रतिमास अपने स्त्री-बच्चों को कुछ जेब-खर्च देते है ?

58. चूर्णो या ओषधियों मे किन-किनका प्रयोग आप करते है ?

59. किसी कार्य में असफल होने पर आप मूर्च्छितावस्था में हो जाते है या विशेष सचेत ?

60. क्या आपके मन में कभी-कभी आत्मघात के विचार आते है ?

61 क्या कभी-कभी ऐसा होता है कि अनायास आपको सफलता पर सफलता मिलती है ?

62. आप आवश्यकता से अधिक आशावादी या निराश तो नही है ?

63. आप आवश्यकता से अधिक प्राचीन या अर्वाचीन तो नही है ?

64. आपके व्यवसाय पर आपके व्यक्तिगत चरित्र का कोई असर नही पड़ता—इसे तो आप मानेंगे ?

उत्तर

✓1. यदि किसी विषय मे आपमें और आपकी आत्मा में, अर्थात् अच्छी कामना और विवेक में, द्वन्द्व हो तो आत्मा से हार मान लेने ही में जीत होती है। आत्मप्रेरणा के रूप में ईश्वर का संकेत मिलता है। कालिदास ने लिखा है कि सदेहास्पद विषयों में सज्जन लोग अपनी आत्मा की गवाही को ही प्रमाण मानते है :

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्त.करणप्रवृत्तय: । (कालिदास)

2. अमरीका के कुछ प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन करके देखा कि हर तैतीसवे दिन प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में हर्ष या शोक-भावना की एक प्राकृतिक लहर आती है। हर्ष की भाव-लहर के उठने पर चित्त अकारण आह्लादित हो जाता है, बुद्धि में उदारता, सरसता, विनम्रता आ जाती है। शोक की तरग उठने पर अकारण उद्विग्नता, ग्लानि, क्रोध या विरक्ति की वासनाए तीव्र हो जाती है। जिस दिन मनोभाव में सहसा ऐसा परिवर्तन ज्ञात हो, उस दिन समझना चाहिए कि भावुकता की प्राकृतिक तरग उठी है। उस दशा मे चित्त-प्रवृत्ति हर्ष या शोक की ओर झुकी हुई मिलेगी। तैतीसवे दिन चित्त-दशा में वैसे ही परिवर्तन फिर होगा। यह क्रम चलता रहता है, परन्तु यह निश्चित नही कि एक वार हर्ष-वेग उठने पर दुवारा भी वही उठेगा। हर्ष के वाद शोक भी उठ सकता है। किसी-किसीको चौतीसवे या पैतीसवे दिन ये लहरे उठती है और उसी क्रम से आगे उठती रहती है। पांचवें सप्ताह में इसका अनुभव अवश्य होता है। भावोन्माद में सावधान रहना चाहिए और सहसा कोई भावुकतापूर्ण कार्य न करना चाहिए।

3. यदि आप असहिष्णु है तो आपके मित्रो की सूची में किसी वेहया या अभागे का नाम ही शेप होगा। जो बात-बात में उत्तेजित होता है, वह पागलपन की सडक पर निराशा की मोटर पर सवार होकर चलता है।

4 यदि लोग आपकी दु:शीलता के कारण आतकित रहते है तो आप किसी सक्रामक रोग से कम भयकर न होंगे। यह मानव-स्वभाव है कि जो जिससे भयभीत या शकित रहता है, वह उससे प्रेम नही करता। यदि आप इतने दुर्मुख है कि लोग आपसे बातें करने मे डरते हैं तो आपको समाज से सच्ची सहानुभूति नही प्राप्त हो सकती। ऐसे स्वभाव के व्यक्तियों को तुलसी ने खल-वर्ग मे माना है :

वचन-वज्र जेहि सदा पियारा।
सहसनयन पर-दोप निहारा॥ (मानस)

5 यदि आप कर्कशभाषी है तो आपकी बातो का किसीपर प्रभाव न पड़ता होगा। मनोहर शब्दों में कठोर तर्क उसी प्रकार प्रभावशाली होता है, जैसे सुन्दर नेत्रो मे कटाक्ष। शब्दों की हवाई बन्दूक दागने से जीवन-सग्राम में विजय नही मिलती।

6 यदि आप दूसरों की प्रशसा करने में असमर्थ और उनकी निन्दा करने में सर्वसमर्थ है तो अवश्य ही आपका हृदय दुर्भावनाओं से भरा रहता होगा। लोग आपके पास बैठने में घबराते होंगे और आपका विश्वास भी कम करते होंगे। निन्दक दूसरों की कालिमा अपने मुंह में लगाए घूमता है, इसको सत्य मानिए।

7. किसी सभ्य समाज में यदि आप दूसरों के भेद जानने का प्रयत्न करेंगे, अकारण दो आदमियों की बाते सुनने का प्रयत्न करेंगे, दूसरों की चिट्ठिया पढने का प्रयत्न करेंगे, दूसरों से कान में धीरे-धीरे बाते करने का प्रयत्न करेंगे, तो अवश्य ही लोग आपको भेदपूर्ण दृष्टि से देखेंगे। सम्भव है, आप घबराहट के कारण भौचक्के होकर दूसरो को आखे फाड़-फाडकर देखते हो, जिसके कारण लोग आपको जासूस जैसा समझते हों, कुछ भी हो, शकापूर्ण दृष्टि से देखा जाना अपमानजनक होता है।

8. यदि झगड़ो मे आपका नाम नारद की तरह नत्थी कर दिया जाता है तो इसका कोई कारण होगा; व्यर्थ ही आप देवर्षि के अवतार न बन गए होंगे। अधिकांश विवादों में पड़ जाने के आप व्यसनी होंगे, अथवा इधर की बात उधर लगाने में प्रसिद्ध या स्वभाव से कलहप्रिय अथवा पक्षपाती। किसी खास झगडे में सभव है आपका हाथ न हो, परन्तु पहले आप आग लगाने की यथेष्ट कीर्ति अर्जित कर चुके होंगे जिसके कारण कही भी आग लगने पर लोगो को आपका ही नाम याद आता होगा। कीर्ति मनुष्य के आगे-आगे दौडती है। दूसरो के झगड़ों में न पडने ही में बुद्धिमानी है; पड़े भी तो निष्पक्ष होकर।

9 बहुत-से लोगो का ऐसा स्वभाव बन जाता है कि वे दिग्विजय करते हुए चलते है, अकारण भी किसी न किसीपर उलझकर उसको पेरते है। कोई झगड़ने वाला नही मिलता तो वे किसीपर कल्पित अभि-

योग लगाकर उसको विवश करते हैं कि वह अखाड़े में आ जाए। कुटुम्बियों, सम्बन्धियों, मित्रों, नौकरों आदि पर दैनिक अत्याचार करने का उनको व्यसन होता है। यदि आप ऐसे हैं तो किसी ऐसे आदमी को मित्र या नौकर बनाइए जो अभ्यस्त बेहया हो। उसीको सिल्ली बनाकर रोज अपनी जिह्वा को पहंट लिया कीजिए। यदि आप ऐसा न करेंगे तो आपको अनिद्रा या अजीर्णता अथवा ज्वर या मधुमेह हो जाएगा। शेख-सादी को भी एक ऐसा अमली मिला था जिसका वर्णन उन्होंने गुलिस्तां में किया है। एक बादशाह था जो प्रतिदिन किसी न किसीको सताता रहता था। एक दिन एक साधु उससे मिलने आया। बादशाह ने उससे पूछा कि मेरे लिए कौन-सी पूजा सर्वोत्तम होगी ? साधु ने कहा—दिन का सोना, क्योंकि जब तक आप सोएंगे, कम से कम तब तक गरीबों की जान सांसत से बची रहेगी और आपको पुण्य मिलेगा।

10. यदि आप सत्य के ऊपर कल्पना का पहाड़ लादने के आदी होंगे तो सत्य अवश्य ही मर जाता होगा। बातों को मनोरंजक बनाने के लिए जो लोग उनमें कल्पना के पंख लगाते हैं, उनके हाथ से बातें निकल जाती हैं। नमक-मिर्च लगाना या बढ़ा-चढ़ाकर बातें करना अथवा तिल का ताड़ बनाना आत्मसम्माननाशी होता है। इसका अभ्यास हो जाने पर वक्ता स्वयं अपनी कल्पित कथाओं को सत्य मानने लगता है और श्रोतागण उसकी सत्यकथाओं को भी कल्पित समझने लगते हैं।

11. अपनी विफलता का दोष समय या किसी अन्य के सिर मढ़ने से अपनी अकर्मण्यता का विज्ञापन होता है। यदि आप सबल हैं तो आपको सभी सहायक मिलेंगे, और आप अतीत को न देखकर भविष्य को देखेंगे : 'सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।'

12. यदि आप सर्वत्र अपनी ही चर्चा करते हैं तो लोग आपसे ऊबते होंगे। अपनी राम-कहानी कहने का व्यसन पड़ जाने पर मनुष्य आत्मघोष (कौवा) जैसा लगता है जो अपना ही नाम रटता है।

13. यदि आप परछिद्रान्वेषी हैं तो समाज आपको मक्खी जैसा समझता होगा। दूसरे के दुर्गुणों को देखकर कहते फिरना वैसा ही है जैसा गलियों का कूड़ा गाड़ियों में भरकर ले चलना। उससे अपने गंदे

स्वभाव का विज्ञापन होता है। दूसरे के सद्‌गुण जिह्वा पर रखना वैसा ही है जैसा कपड़े पर इत्र लगाना। इसके विपरीत दुर्गुणो को जिह्वा पर रखना वैसा ही है, जैसा किसी दुर्गन्धित पदार्थ को जेब में भरकर चलना। किसीकी निन्दा करने के पूर्व निन्दक स्वयं निन्दा का पात्र हो जाता है।

14. यदि अपने अतिरिक्त अन्य सभीको आप धूर्त या विश्वास के अयोग्य मानते है तो आप स्वयं स्वभाव के कच्चे एवं सशयालु होंगे। जो सबको बेईमान समझता या बनाता है, वह स्वय बेईमान होता है। विश्वास विश्वास से ही जमता है । जो स्वय विश्वासपात्र होता है, उसको दूसरे भी विश्वासपात्र मिलते हैं। जो सदेहग्रस्त होता है, उसको अपने स्त्री-बच्चो के ऊपर भी सन्देह होता है।

15. यदि आप दूसरों के ही गुणगान करते है और स्वयं प्रतिष्ठित नही है, तो आपका महत्त्व किसी चारण से अधिक न होगा। यदि आप गुणी है तो आपके गुणगायक भी होंगे। दृश्य को दर्शक की कमी नही रहती।

16. आत्मप्रशसक हीनकोटि का व्यक्ति होता है। मध्यमकोटि के मनुष्य की प्रशंसा उसके मित्रगण भी करते है। उत्तम पुरुष की उसके शत्रु भी करते है। कर्ण की प्रशसा कृष्ण भी करते थे :

स्वतः तथा मित्र-समाज से सदा,
कहां नही कौन प्रशसनीय है।
गुणी वही है जिसके प्रभाव की,
करे विरोधीजन भी सराहना।। (अगराज)

17 यदि आपके मित्रों की सख्या अधिक है तो यह आपकी तेजस्विता, मिलनसारिता और विश्वासपात्रता का परिचायक है। सज्जन और शूरवीर सदैव अजातशत्रु होते है। यदि आपकी शत्रु-सख्या अधिक है तो आप स्वभाव, व्यवहार, पुरुपार्थ से कुटिल, असभ्य या असमर्थ होंगे। सभवतः आप पड्यन्त्री, कटुभापी या परद्वेपी होगे। अधिक संभव है कि आप अशक्त अतएव भयशील अतएव महाक्रोधी हों। इस सर्प-स्वभाव के कारण लोग लाठी लेकर आपके पीछे पडे रहते होंगे।

सर्प शरीर से निर्बल, स्वभाव से बहुत भीरु और उत्तेजित होने पर महा-क्रोधी और दुस्साहसी होता है । तीनों बातें प्रायः साथ चलती है· 'क्षीणा नराः निष्करुणा भवन्ति।' मित्र और शत्रु की सख्या तुलना करते समय इस बात का ध्यान रखिए कि बीस मित्र बराबर हैं एक शत्रु के।

18. दुर्बल व्यक्ति को जिस प्रकार साधारण जलवायु के परिवर्तन से जुकाम हो जाता है वैसे ही दुर्बल हृदय वाले साधारण बातों से 'छू' जाते हैं। मिथ्या अहंकार से लोगों को मनोमालिन्य होता है। ऐसे व्यक्तियो को मित्र-सकट सदैव रहता है।

19. मूर्ख, अकुलीन और अल्पज्ञ का प्रथम चिह्न यह है कि वह अपना ही मिथ्या विज्ञापन करता रहता है। 'विद्वान कुलीनो न करोति गर्व, गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति'—इस सम्बन्ध में महामना सुकरात के इस मत को मानना चाहिए कि संसार में सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का सरल और निश्चित उपाय यही है कि मनुष्य वास्तव में जैसा हो वैसा ही अपने को व्यक्त करे।[1]

जार्ज बर्नार्ड शॉ के इस मत को भी ध्यान में रखना चाहिए कि दरिद्र बने रहने का एक अच्छा उपाय है—अपने को धनी बताना या धनी होने का ढोंग करना।[2]

क्षुद्र प्रकृति के व्यक्तियों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे अपने प्रभाव का झूठा विज्ञापन करके दूसरों की दृष्टि में अपने को उच्च दिखलाने का प्रयत्न करते हैं। किसी बड़े आदमी की साधारण जान-पहचान का वे अनुचित लाभ लेना चाहते हैं और लेते भी है, परन्तु एक अवसर ऐसा आता है जब उनकी रही-सही प्रतिष्ठा भी मिथ्या प्रतिष्ठा के साथ धूल में मिल जाती है।

20. यदि आप स्वयं कीर्तिवन्त न होकर केवल पूर्वजो की कीर्ति के बल पर अपने को पुजवाना चाहते है तो यह आपका भ्रम है। चाणक्य

---

1 The shortest and surest way to live with honour in the world is to be in reality what we would appear to be.

—Socrates

2 A good way of keeping poor is pretending to be rich

—G B Shaw

ने लिखा है कि गुणी लोग अपने ही गुणों से प्रकाशित होते हैं, जन्म (अर्थात् जाति-कुल आदि) को कौन देखता है :

प्राकाश्य स्वगुणोदयेन गुणिनो
गच्छन्ति किं जन्मना।

पूर्वजों के यश पर ही रहने वाले को हम आलू-वर्ग का प्राणी मानते हैं। आलू की तरह उसका सर्वस्व पूर्वजों की मिट्टी के भीतर गड़ा रहता है। स्वयं यशस्वी होने पर पूर्वजों का यश सहायक होता है, न होने पर अपनी महिमा और भी घट जाती है, क्योंकि लोग कहते हैं कि ऐसे उच्च कुल में यह तुच्छ व्यक्ति कहा से पैदा हुआ। शॉ ने तो यहां तक कहा है कि किसी वड़े आदमी का सम्बन्धी होना वड़ा दुःखदायी है, क्योंकि उसीके नाम से हमारा परिचय दिया जाता है, और हमारे स्वतन्त्र व्यक्तित्व की गणना ही नही होती।[1]

21 धमकी देनेवाला सदा कायर होता है।[2] शक्तिवान् पुरुष धमकी नही देता। वह तो जो चाहता है उसको करके दिखा देता है। चौकनेवाली वातों से लोगों को आकर्पित करनेवाला झूठा गिना जाता है और प्राय ईसप की कहानियों मे वर्णित गड़रिये की तरह धोखा खाता है। वह गडरिया रोज 'भेड़िया आया, भेड़िया आया' कहकर चिल्लाता था। लोग सहायतार्थ दौड़कर जाते तो देखते कि वहा कुछ नही था। एक दिन सचमुच भेडिया आ गया। गड़रिया वहुत चिल्लाया, परन्तु लोग यह समझकर नही गए कि उसकी चौकाने की आदत ही है। भेड़िया उसको खा गया।

22. स्वाभाविक भीरुतावश प्राय: लोग प्रतियोगिता से घवड़ाते हैं और ऐसे ही कामो में हाथ लगाते है जिनमे प्रतियोगिता का भय नहीं रहना। वे डरते हैं कि कही विफल होने पर लोग उनकी हसी न उड़ाए। इससे उत्साह, साहस और आत्मविश्वास की कमी प्रकट होती है। मनस्वी व्यक्ति सदैव प्रतियोगिता का स्वागत करता है क्योंकि उससे

---

1. It is maddening to be related to a celebrated person and never be valued for own sake —G. B Shaw

2 Bullies are always cowards —G B Shaw

आत्मयोग्यता प्रमाणित होती है; अपने बलाबल का ठीक पता चल जाता है। अमरीका के गत प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट ने एक बार अपने राज-सचिव 'कार्डेल हल' से कहा था कि थोड़ी स्पर्द्धा या प्रतियोगिता की भावना उत्साहदायिनी होती है, क्योंकि वह प्रत्येक व्यक्ति मे यह भावना जागरित रखती है कि वह अपने सहकर्मी से अपने को अधिक योग्य प्रमाणित करके दिखलाए; इसके कारण वे सच्चे भी बने रहते है।[1]

23. यदि आप यह सोचते है कि भगवान् आपका काम करेगा तो उस सर्वेश को आप अपना कुली बनाते हैं। कोई सत्ता-महत्ताधारी किसी का सेवक होना स्वीकार नही करता। इस दुस्साहस के लिए सम्भवतः वह आपको दण्ड भी दे। 'होइ है सोइ जो राम रचि राखा' —यह कर्म-हीनो और भाग्यहीनों का मन्त्र है। शुक्र के शब्दो में नपुसक लोग ही कार्य-सिद्धि के लिए देवता के भरोसे बैठते है: 'क्लीबो दैवमुपासते।' और वन्दनीय बुद्धिमान् लोग पौरुष ही को महत्त्व देते हैं: 'धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुष महत्'

देवता को सहायतार्थ पुकारना अशक्तता का लक्षण है। इसका प्रबल प्रमाण यह है कि रोग से अशक्त होने पर प्राणी के मुख से स्वभावतः राम-नाम निकलता है। नीति का मत है कि पुरुपार्थी उद्योग से लक्ष्मी को प्राप्त करता है। 'देवता देते है'—ऐसा कापुरुष लोग कहते है, दैव को भूलकर पुरुषार्थ करो और यत्न करने पर भी सफलता न मिले तो देखो कि त्रुटि कहा है:

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी:,
दैव हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैव निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोष:।।

तुलसी ने भी लिखा है कि:

कादर मन कर एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा ।। (सुंदरकांड)

1. A little rivalry is stimulating, you know It keeps everybody going to prove that he is a better fellow than the next man It keeps them honest too
—Roosevelt

स्वावलम्बन के बिना देवता का भी अनुग्रह नहीं मिलता। देवबल होता है, परन्तु वह बाहर से नहीं आता, आत्मसाधना, बुद्धिप्रयोग से ही उत्पन्न होती है। जो देवप्रिय होने की आशा में बैठा रहता है वह बकरा, पशु, मूर्ख या पागल ही होता है। देवप्रिय के ये शाब्दिक अर्थ है।

सर्वोत्तम यह है कि आप अपने पुरुपार्थ को उद्दीप्त रखिए। इस विषय में महावीर कर्ण को आदर्श मानना चाहिए। सूतकुल में पलकर आत्मपौरुष से उसने आत्मोत्थान किया; राज्य-स्थापना, दिग्विजय की ओर निर्भय होकर पुरुपार्थ दिखाते हुए कर्मक्षेत्र में प्राण-त्याग किया, पुरुपार्थ से उसने देव कृष्ण तक को मोहित और मर्यादाभ्रष्ट कर दिया राजसभा मे कृष्ण के समक्ष कुरुराज द्वारा कही हुई अपनी लिखी यह कर्णप्रशस्ति हमें इस प्रसग मे याद आती है:

स्वबाहु से अर्जित राज्य-कीर्ति के,
स्वकर्म से सचित भाग्य के धनी।
हठोद्यमी, सत्य-पराक्रमी तथा,
अनन्य दानी नर-राज कर्ण है॥

× × ×

स्वय विधाता उनके ललाट की,
अदृष्ट-लेखा यदि मेटने लगे।
कभी न होगे मन में हताश वे,
समर्थ जो है पुरुपार्थ शक्ति से॥ (अगराज)

24. जिसके काम में शीत, उष्ण, भय, प्रेम, धन तथा दारिद्र्य बाधक नहीं होते, वही पंडित कहलाता है, ऐसा विदुर का मत है:

यस्य कृत्य न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भय रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते॥ (महाभारत)

उद्योगी पुरुप ऋतु, साधन-असाधन की अपेक्षा नहीं करता। आलसी ही धूप, ठडक, बरसात और आर्थिक स्थिति से प्रभावित होता है। उद्योगी का प्रत्येक पल शुभ-मुहूर्त होता है। उसके लिए कुछ भी भार-स्वरूप नहीं होता, क्योंकि वह समर्थ होता है। व्यवसायी के लिए कोई

स्थान दूर नही होता; विद्वान् को कोई स्थान पराया नहीं होता, क्योंकि वह जहां जाता है वही विद्वत्ता से सबको अपना बना लेता है; प्रिय-वक्ता को कोई पराया नही होता, क्योकि उसकी वाणी में वशीकरण होता है :

कोऽतिभार: समर्थानां कि दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेश: सविद्यानां, क: पर: प्रियवादिनाम् ।। (पचतत्र)

यदि आप ऐसे नही है तो निरुद्योगी और खिन्न एव हताश होंगे ।

25. यदि कामो को करने में आप अपने को असमर्थ पाते हैं तो यह काम की कठिनाई का नही, बल्कि आपकी अयोग्यता, अशक्तता और आत्महीनता का विज्ञापन है । कठिनाई का अनुभव बल, उत्साह की कमी और आलस्य से होता है। कार्लाइल के मत से अकर्मण्यता में अनन्त निराशा मिलती है ।[1] उद्योगी व्यक्ति के सामने साध्य-असाध्य का प्रश्न नही उठता, उसके लिए तो सभी कुछ साध्य होता है : 'उद्युक्तानां मनुष्याणां गम्यागम्य न विद्यते ।' (मार्कण्डेय पुराण) ।

यदि आप मनस्वी होगे तो कार्य की महत्ता को पहले देखेंगे और कठिनाइयों की परवाह न करके उसको सफल करने में तत्पर हो जाएगे। मनस्वी कार्यार्थी सुख-दुःख की परवाह नही करते : 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दु:खं न च सुखम् ।' (भर्तृहरि) ।

26. यदि आपने अपने घर को अपना बन्धनागार बना लिया तो आप बाहरी जगत् के लिए अनुपयुक्त होगे । गृहमोही कभी उन्नति नही करता । वह चिरमोही (गधा) होकर घर की माया में बंधकर घर के आंगन में ही नाचता और उसके लिए 'ज्यों तेली के बैल को घर ही कोस पचास' की उक्ति घटित होती है । वह स्त्री-बच्चो का मुह देखता हुआ पडा रहता है और कुछ दिनों में उसीका लटका हुआ मुह देखने के योग्य हो जाता है । निर्धन होने पर उसके स्त्री-बच्चे भी उससे विरक्त हो जाते हैं । बिना बाहर जाए मनुष्य यथाजात (अर्थात् जैसा पैदा होता है वैसा ही मूर्ख) बना रहता है ।

इस सम्बन्ध में हमें अंग्रेजों या मारवाड़ियों का आदर्श सामने

1 In idleness there is perpetual despair.

रखना चाहिए। 'जहां न जाए रवि, तहां जाए कवि' की तरह 'जहा न जाए गाड़ी, तहां जाए मारवाड़ी' की उक्ति कही जा सकती है। मारवाडी भी स्वदेश, स्वजाति, स्वकुल का अनन्य प्रेमी होता है, परन्तु वह बैठा नही रहता। व्यापार के लिए निकलने पर उसको गृहमोह नही सताता। देश-देशान्तरो में जाकर वह धन-संग्रह करता है और उससे अपने घर की समृद्धि बढ़ाता है। वह सब बातों में दूरदर्शी होता है; दूर के व्यापार-योग्य स्थानो को देखता है, आगे आने वाले अवसर को पहले ही देख लेता है; किस काम में आगे चलकर लाभ होगा, उसको पहचान लेता है और लक्ष्मी कितनी दूर पर खड़ी है, इसको समझकर ठीक मार्ग पर चलता है।

27 यदि आप घर को एक जंजाल जानते है तो यह आपकी भूल है। उसीके नियत्रण से आपकी स्वभावज उच्छृखलता और पशुता दबी रहती है। वह न होता तो आप अनाथालय में पैदा हुए होते या पले होते। घर कितना भी बुरा हो, वह एक स्थान होता है जहा मनुष्य अन्तिम आश्रय लेता है। डॉक्टर जॉनसन ने सत्य ही लिखा है कि घर में सुखी होना ही हमारी प्रत्येक आकांक्षा का अन्तिम ध्येय होता है।[1]

यदि घर मे आपकी डोरी कोई ठीक से पकड़े रहे तो आप पतंग की तरह चाहे जहा उड़ सकते है। डोरी टूटने पर कही न कही गिर जाएगे या अटक जाएगे।

28. यदि आपकी किसी बात के लोग अनेक अर्थ लगाए तो उसका मतलब यह नही होगा कि आप असाधारण वक्ता है। निश्चय ही आपकी बाते भ्रमपूर्ण होंगी, आप स्पष्टवक्ता न होंगे, आपके विचार अनिश्चित होगे अथवा आप छलवश 'किन्तु', 'परन्तु' के साथ बोलते होगे। यह भी सम्भव है कि आप मनोभावों को व्यक्त करने की कला न जानते हो।

29. अंग्रेजी के एक विद्वान् का कथन है कि अधिकांश लोग जब आपसे राय लेने आते है तो वास्तव में, वे अपने पूर्वनिश्चित विचारो के

---

1. To be happy at home is the ultimate result of all ambition
—Johnson

सम्बन्ध में आपकी सहमति लेने आते हैं। इससे उनका कोई लाभ नही होता। उनका समर्थन कीजिए तो वे आपकी सम्मति को महामान्य मानेगे ; उनके मत की सत्य आलोचना कीजिए तो वे आपकी बात को व्यर्थ समझेगे। चतुर व्यक्ति नये विचारों का सदैव स्वागत करता है और लोगों की स्पष्ट सम्मति लेकर अपनी अपूर्णता को पूर्ण करता है।

30. आपकी बाते सुनते-सुनते यदि श्रोता ऊंघने लगे या अन्यमनस्क हो जाए तो इसका अर्थ है कि आप निरर्थक प्रलाप करते हैं, बहुवादी है, एक ही बात की पुनरावृत्ति करते हैं या आपकी बातचीत की शैली प्रभावोत्पादक नही है अथवा श्रोता की दृष्टि में आप स्वयं प्रभावशाली नही है। यह भी हो सकता है कि आप आत्मप्रशसा या परनिन्दा करते हों, जो दूसरे को प्रिय न लगती हों।

31. खण्डन-मण्डन करनेवाला सरस वक्ता नही होता। सदा हा में हां मिलानेवाला विचारहीन होता है। बाल की खाल खीचनेवाला संकीर्ण विचारों का माना जाता है और ईट का जवाब पत्थर से देनेवाला उद्दण्ड।

32. यदि आप लोगो के बीच में झेपते हैं तो सम्भवत: अत्यधिक एकान्तसेवी, संकोची, अनात्मविश्वासी या मानसिक क्लीव अथवा बहुत दबे हुए व्यक्ति होंगे। आडम्बरी लोग भी झेपते या भड़कते है क्योंकि बहुत बन-ठनकर निकलने पर भी उनको यह भ्रम बना ही रहता है कि अभी उनका शृंगार अपूर्ण है।

33. यदि सभा-समाज में आप सबके सामने निर्भय होकर नहीं बैठ सकते, तो आपमें कोई स्वाभाविक, चारित्रिक या सामाजिक दुर्बलता होगी। सम्भव है, आपकी आर्थिक स्थिति ऐसी हो कि आप दूसरों से अपने को छोटा मानते हों। हो सकता है कि आप स्वभाव से ही उदासीन हों, मलिन या एकान्तप्रेमी हों। सम्भव है आप षड्यन्त्री हों। यह भी हो सकता है कि आपकी शिक्षा ऐसी हुई हो कि आप दूसरों के पिछलगुए ही बने रहे।

कुछ भी हो, यदि आप यथायोग्य स्थान के अधिकारी बनने का प्रयत्न नही करते, तो उससे आपकी भीरुता और अयोग्यता प्रकट होती

है। उन्नतिशील व्यक्ति अपने को आकर्षण का केन्द्र बनाने का प्रयत्न करता है तथा अवनतिशील व्यक्ति अपने को छिपाने का। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट का लडका अपने पिता की मनोवृत्ति को देखकर उनके विषय में कहता था कि जब वे किसीके विवाहोत्सव में जाते थे तो उनकी आकाक्षा यह रहती थी कि वे ही वर होते तो कितना अच्छा होता; किसीकी शव-यात्रा में सम्मिलित होने पर वे ही शव होते तो कितना आनन्द आता, क्योंकि तब सबकी दृष्टि उन्हीपर लगी होती। समाज के सामने अपने को इस तरह खोलने की इच्छा उसीमें उठेगी जो उन्नति-काम हो और जिसका सामाजिक आदर्श ऊचा हो। ऐसा व्यक्ति विश्वास रखता है कि चाहे हजार आंखे उसकी ओर देखे, उसका रूप कलकहीन लगेगा। जिसके हृदय में भय का दुर्विचार रहता है, वही अपराधी बनकर कोने में बैठता है।

38 जिसमें आत्मसम्मान नही होता, वही सबके सामने हाथ जोड़े खडा रहता है। स्वावलम्बी पुरुष स्वात्माभिमानी होता है। अकर्मण्य, आलसी, कापुरुष और अपराधी लोग ही बात-बात में द्रवित होते है। यदि आत्मप्रभाव द्वारा आप अपनी टोपी या पगड़ी की मर्यादा नही बचा सकते, तो अच्छा होगा कि उसके स्थान पर किसीका जूता धारण करे।

39 नतमस्तक होना या कमर झुकाकर चलना निश्चय ही अशक्तता का लक्षण है। प्रमाण प्रत्यक्ष है—वृद्धावस्था में मनुष्य ज्यों-ज्यों अशक्त होता जाता है, त्यों-त्यो उसकी कमर झुकती जाती है और गर्दन भी। मेरुदण्ड को उन्नत और भालखण्ड को उच्च रखने से पुरुषार्थ प्रकट होता है। आत्मसयमी, मनस्वी एव शक्तिशाली ही अपने शरीर को दण्डवत् खड़ा रखता है; अपराधी, भीरु एव कापुरुष अकारण दण्डवत् करने का या पैर पड़ने का आदी हो जाता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि शरीर चाहे छोटा हो या बड़ा, वह जब सीधा उठता रहता है तभी मनुष्य का व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है। उसी समय ज्ञात होता है कि उस मनुष्य के उन्नत शरीर के रूप में उसकी मनुष्यता या आत्म-शक्ति का मानदण्ड सामने है। अपने ही छन्दोबद्ध शब्दों में हम इसीको

अधिक आकर्षक ढंग से यों कहते है :

उठा हुआ कांचन-शैल-शृंग-सा,
शरीर था शोभित अंगराज का ।
प्रमाण था आत्म-विकास का यथा ;
मनुष्यता-मापक मानदण्ड था ।। (अगराज)

36. यदि आपको मित्रता निभाने में सदैव कठिनाई जान पड़े तो प्रथम अपने स्वभाव को दोष दीजिए। सम्भवतः आप स्वार्थवश किसीसे मित्रता स्थापित करते होगे और स्वार्थमग्न होने पर आपकी मित्रता भी खडित हो जाती होगी। हो सकता है कि आपके स्वभाव में अहकार, कृतघ्नता, दुर्विनीतता और दम्भ हों जिनके कारण जल्दी-जल्दी आपको मित्र-संकट भोगना पड़ता हो। यह भी सम्भव है कि आप बिना सोचे-विचारे किसीको भी सामने पाकर उसको अपना मित्र बना लेते हों और बाद में धोखा खाकर चेतते हों। कुछ भी हो, इतना मानना चाहिए कि मित्रता बार-बार बदलने की वस्तु नही है। उसको निभाने से ही अपना गौरव बढ़ता है अपनी शक्ति-प्रतिष्ठा स्थिर होती है। यदि आपका स्वभाव निर्दोष है तो ऐसे ही व्यक्ति को मित्र बनाइए जो सुख में साझीदार होने का दुष्प्रयत्न न करे और विपत्ति में पूरा साथ दे। स्वयं भी इसी आदर्श का पालन कीजिए और सयत्न मित्रता की रक्षा कीजिए, क्योंकि 'सर्वथा सुकर मित्र, दुष्करं प्रतिपालनम्'—इस सम्बन्ध में इस युक्ति को याद रखिए :

सज्जन ऐसा कीजिए, ढाल सरीखा होय।
सुख में तो पीछे रहे, दुख में आगे होय।।

37. यदि आपके कुछ मित्र ऐसे हैं जिनसे आप लुक-छिपकर ही मिलते है, तो आपका जीवन भेदपूर्ण होगा। आप कुचक्री हो सकते है, आपकी लीलाएं विचित्र हो सकती है। एक अग्रेजी कहावत है कि मनुष्य अपनी उस संगति के कारण पहचाना जाता है जिसको कि वह समझता है कि कोई जानता नही।[1]

---

1. A man is known by the company he thinks nobody knows he is keeping

38. यदि किसी मनोरंजक कला से आपको स्वाभाविक अनुराग नही है तो आप महाशुष्क होंगे और अविश्वास के पात्र भी। आपके स्वभाव में कठोरता, जड़ता, निराशा, मलिनता होगी और विचारो में सकीर्णता। भर्तृहरि ने कुछ सोच-समझकर ही कहा था कि साहित्य-संगीत-कला से हीन मनुष्य विना सीग-पूंछ का पशु होता है :

साहित्य - सगीत - कला - विहीनः,
साक्षात् पशुः पुच्छ-विषाणहीनः।

39. ईश्वर-वन्दना के वाद समाचारपत्र पढना ही आजकल का सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम है। यदि आप उनको नही पढते तो समय से पीछे रहेगे। यदि उनमें बेसिर-पैर की बातें ही पढ़ते हैं तो अपनी ज्ञान-हत्या करते है। समाचारपत्रो से देश, समाज और मानव-विचारों की प्रगति का ज्ञान करना चाहिए।

40. यदि आप अत्याचारी के सामने झुक जाते हैं तो आप कापुरुष, निर्वीर्य होंगे। यदि अपने समक्ष झुकनेवाले के सामने शेर वन जाते हैं तो आप हृदय से शृगाल होगे। झरबेरी के जंगल में शेर वन जाने से विल्ली शेर थोड़े वन जाती है। सौजन्य और बड़प्पन इसमें होता है कि जो आपका सम्मान करता है उसका आप भी सम्मान करे। शेखसादी का उपदेश है कि जो तुम्हारे सामने झुकता है, उसके सामने तुम भी झुक जाओ। निर्वल पर क्रूरता करके आप उसको किसी समय जीवन से हताश बना देंगे और इसको स्मरण रखिए कि जीवन से हताश व्यक्ति का आक्रमण वड़ा भयकर होता है। तुलसीदास की इन पंक्तियों को इस सम्बन्ध में याद रखिए :

अतिशय रगड करै जो कोई।
अनल प्रकट चन्दन ते होई॥ (मानस)

41. सुप्रसिद्ध विद्वान् गेटे ने लिखा है कि मनुष्य अपने स्वभाव या चरित्र का ऐसा स्पष्ट विज्ञापन और किसी क्रिया से नही करता जैसा कि किसी भी वस्तु-विशेष की ओर देखकर हसने से।[1]

---

1 By nothing do men show their character more than by the things they laugh at

कैसे अवसर पर मनुष्य को हंसी आती है और कैसे आती है—इसी से उसके स्वभाव का पता चलता है। सभ्य व्यक्ति हास्य-विनोद में भी सभ्य रहता है। निर्लज्ज व्यक्ति दूसरों का उपहास करता है, दूसरों की त्रुटियों पर क्रूरता की हसी हसता है। गम्भीर, अस्वस्थ चिन्तित, या मलिन स्वभाव के व्यक्ति कम हसते हैं। असभ्य, अकर्मण्य, निश्चिन्त, चंचल और विनोदी स्वभाव के लोग अट्टहास करते है। शीलवान् और सुकुमार स्वभाव के व्यक्ति मुस्कान-प्रेमी होते है। धूर्त और चाटुकार केवल कठ से हसते हैं तथा सहृदय और निर्भीक व्यक्ति हृदय के भी नीचे नाभि से। बड़ों के साथ खिलखिलाना अनधिकार चेष्टा है; नौकरों या हीन व्यक्तियों के साथ हास्य-व्यग्य करने से प्रभुत्व घटता है। लक्ष्मण ने शूर्पणखा से व्यंग्य किया था तो राम ने उसको यही उपदेश दिया था कि दुष्ट-बुद्धि और निम्नकोटि के मनुष्यों के साथ परिहास न करना चाहिए :

क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः न कथञ्चन। (रामायण)

42 यदि स्थानीय समारोहों में आप अप्रयास आमन्त्रित होते है तो हम मानेगे कि समाज मे आपका एक स्थान है। आमन्त्रित होकर जाने पर यदि आपका यथोचित सत्कार न हो तो हम समझेंगे कि आप केवल पड़ोसी होने के नाते या समारोह की जनसख्या बढाने के लिए ही बुलाए गए थे। यदि कही जाकर आप स्वय अपने को धन्य मानते हैं तो समझ लीजिए आप अभी सम्मान के योग्य नही है। यदि दूसरे लोग आपके दर्शनो से अपना अहोभाग्य समझें तो प्रथम तो उनकी सज्जनता को श्रेय दीजिए, तदुपरान्त सन्तोष कीजिए कि आप नगण्य नही है।

43. अनुभवी डॉक्टरों का कहना है कि तीन बीमारो के पीछे एक ऐसा बीमार होता है जिसको वास्तव में कोई बीमारी नही होती। अतएव कल्पित बीमारी से पीड़ित होकर निरुत्साह न बनिए। ठीक-ठीक देख लीजिए कि आपका मन बहाना करके सुस्ताना तो नही चाहता।

44. यदि आपके कान में कोई बात पहुचते ही नगर-भर मे फैल जाती है तो आप बड़े भयंकर जीव होगे। कोई आपका विश्वास न करता

होगा। मन्त्र को गुप्त रखने से मनुष्य का बड़प्पन प्रकट होता है। बहुत-से लोग बडी से बड़ी बात को पचा लेते है; वे महापुरुष होते है। हलके लोग छोटी बाते पाकर भी चिनगारी से पेट्रोल के पीपे की तरह जलने लगते है।

45. यदि आप बच्चों के बाप बने रहना चाहते है तो उनके अध्यापक न बनिए। अध्यापक बनते ही आप उनके प्रेम से वंचित हो जाएगे और आपकी पदवी आपसे छिन जाएगी।

46. यदि आप अपनी स्त्री के स्वामी है तो सुखी होगे। सखा होंगे तो सखी जैसे बनकर रहते होंगे, क्योकि स्त्रियों के सखा नही होते। दास होगे तो मर्द नही लतमर्द होगे।

47. यदि आप किसी चचला के कथित् पति है तो आपके हृदय-आकाश में दु.ख के धाराधर दिन-रात उमडे रहते होंगे। यदि आप चण्डेश है तो चण्डेश (शिव) की तरह दिन में कई बार हलाहल घूटते होगे। भगवान् आपको शांति दे। शाति-याचना के पूर्व न्यायपूर्वक एक बात को देख लीजिए, कही आप ही ने तो अपनी नारी-उपासना से अपनी पत्नी को स्वेच्छाचारिणी और अभिमानिनी नही बना दिया है। यह भी देख लीजिए कि कही आपका पुरुषत्व तो नही खण्डित है। इसका भी पता लगा लीजिए कि आपकी स्त्री पहले सुशीला होकर आपके साथ विवाहित होने पर तो दु:शीला नही हो गई। यदि आप निर्दोप है तो किसी दुष्टा के कारण अपने जीवन को नष्ट न कीजिए।

48. यदि आपके घर मे पधारते ही आतक का राज्य स्थापित हो जाए तो आपसे वड़ा अभागा कौन होगा ? आप अवश्य कायर होगे और बाहर का क्रोध आकर घर में अपने आश्रितो पर उतारतें होंगे। 'ठोकर लगी पहाड को फोड़े घर की सील' की उक्ति आप ही के किसी पूर्वज के लिए लिखी गई होगी।

49. शत्रुनाश के निमित्त देवोपासना निष्फल होती है। साधु-महात्मा की तरह विश्वात्मा भी किसी अपकर्म में सहायक नही होता। अच्छा हो, यदि उतने समय में आप दड-बैठक करे, जिससे आपके सुदृढ शरीर को देखकर आपके शत्रु आपसे भयभीत हों। प्रार्थना में

वडा वल होता है, परन्तु तभी जव उसके साथ सद्भावना हो।

50 यदि आप स्वयं ही अपने आदर्श है तो वहुत उन्नति न कर सकेगे। अपने ही पैरो की ओर देखनेवाला व्यक्ति आगे का मार्ग कैसे देखेगा ?

51. अनधिकारी होते हुए भी कोई उच्च पद पाकर यदि आप पद का मद प्रदर्शित करते हैं तो आपकी दशा उस बौने जैसी होगी जो पहाड की चोटी पर खडा होकर यह सोचता हो कि नीचेवाले उसको विशालकाय समझते होगे। दुवला-पतला आदमी यदि हाथी पर वैठा दिया जाए तो क्या वह मोटा हो जाएगा ? अयोग्य होकर भी यदि आप किसी युक्ति से उच्च-पदस्थ हो गए है तो आपको अभिमान न करना चाहिए। राजमहल के कगूरे पर बैठने पर भी कौआ गरुड की पदवी नही पा सकता : 'प्रासादशिखरस्थोपि काको न गरुडायते।'

52. एक अंग्रेजी कहावत है कि यदि कोई व्यक्ति इसकी चिन्ता न करे कि अमुक कार्य करने का श्रेय किसको मिलेगा तो वह प्रत्येक कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है। वहुत-से कार्य इसलिए विगड़ते है कि इनमें से प्रत्येक यह चाहता है कि सारा श्रेय उसीको मिले, इसलिए सव एक-दूसरे के साथ पूर्ण सहयोग नही करते। यदि आप सफलता चाहते है तो श्रेय के शेयर (हिस्से) औरों को वांटिए जिससे वे भी उस काम में हाथ वटाए।

53. यदि आप शीघ्र रीझनेवाले होंगे, तो आपको वहुत-से वादे भी करने पडते होगे, और आप उनको पूरे भी न कर पाते होगे। एक वात और ध्यान रखिए—शीघ्रवरदानी को कोई न कोई शीघ्रकोपी उसी प्रकार मिल जाता है जैसे शिव को भस्मासुर मिल गया था।

54. स्वप्न में भी यदि आप भयानक दृश्य देखते है तो उससे अपनी मानसिक भीरुता का अनुमान कीजिए। यदि आप सुन्दरी स्त्रियो को देखते है, तो अपनी अतृप्त प्रेम-वासना की ओर ध्यान दीजिए। यदि स्वप्न में प्रीतिभोज ही दिखलाई पड़े तो समझिए कि आपको तृप्ति-दायक भोजन नही मिल रहा है। वेसिर-पैर के स्वप्न दिखाई पडे तो अपनी पाचन-शक्ति और चित्त की अस्तव्यस्तता को सुधारिए। प्रत्येक

दशा में मन के बोझ को उतारिए। प्रगाढ निद्रा में स्वप्न घातक होते है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक पहले स्वप्न-विज्ञान पर विश्वास नही करते थे। अब वे बड़े-बड़े ग्रथ लिखकर यह प्रमाणित करते है कि स्वप्नों से आपकी पूरी मनोदशा पढी जा सकती है क्योकि स्वप्नावस्था में चतुर चेतन मन प्रसुप्त रहता है, अतएव भीतर की वृत्तियां बुद्धि-कौशल से छिपाई नही जा सकती। स्वप्न-मच पर खुलकर क्रीड़ा करने लगती है।

55 दभी और मूर्ख लोग चलते समय पैर पटकते है। सुशील व्यक्ति मृदु गति से चलता है। सामुद्रिक मत से पैर पटककर चलना दुर्भाग्यसूचक होता है। इसका यह अर्थ नही कि चोरों की तरह दबे पांव चलने से आप सौभाग्यशाली माने जाएगे। अभिप्राय यह है कि न राक्षस-गति से चलिए, न चोर-गति से, बल्कि मनुष्य की तरह संतुलित गति से चलिए।

56 यदि आप व्यवसायी है और बहुत-से ग्राहकों के साथ व्यवहार करते है तो आपके लिए विनम्र, सुशील और मृदुभाषी होना आवश्यक है। आप गम्भीर या अहकारी बनकर बैठेगे तो ग्राहक खो देगे। एक अनुभवी व्यक्ति ने कहा है कि जो हसमुख न हो, उसे दुकानदारी का काम न करना चाहिए। ग्राहक आपके माल पर उतना ही रीझते है जितना आपके शिष्ट व्यवहार पर। वे आपकी वस्तु का ही नही, बल्कि आपकी सरलता और सज्जनता का भी मूल्य देना चाहते है। बड़ी कम्पनियो के विक्रय-विभाग में आजकल लडकियां विक्रयिका बनाकर नियुक्त की जाती है। इसका रहस्य यही है कि वे अपनी स्वभाव-सुलभ कोमलता से ग्राहक को आकर्षित कर लेती है।

57. एक विलायती समाजशास्त्री ने गृह-कलह निवारणार्थ कुछ नियम प्रकाशित किए है। उनमें एक यह है कि प्रतिमास अपनी स्त्री-बच्चों को कुछ पैसे जेबखर्च के तौर पर दे देने चाहिए, जिन्हें वे अपना समझकर खर्च करने या बचाने के लिए स्वतन्त्र हों। इससे उनके मन में यह बात नही जमने पाती कि वे एक-एक पैसे के लिए आपपर अवलम्बित है। ऐसा न करने से उनके मन में आपके प्रति ईर्ष्या-द्वेष की भावनाए उठ सकती है।

58. यदि आप किसी ओषधि व चूर्ण का सेवन नियमित रूप से करते है तो आप शरीर से अस्वस्थ या स्वभाव से व्यसनी होंगे। ओषधियां जब दैनिक आहार बन जाती है तो शरीर की स्वाभाविक क्रिया मन्द पड़ जाती है। स्वाभाविक आहार अन्न ही है।

59. किसी कार्य में विफल होकर हताश हो जाना कापुरुषता है। गिरने में हानि नही है, गिरकर पड़े रहने में हानि होती है। निरुद्योगी व्यक्ति एक वार गिरकर वही कराहता पडा रहता है, शूरवीरो के तो कवध भी खड़े होकर लड़ते है।

60. यदि कभी-कभी आपके मन में आत्मघात के विचार उठते है तो सत्य मानिए, आपकी आत्मा अपराधी है; आप अकर्मण्य, स्वार्थी, साहसहीन, क्रूरबुद्धि हैं। आपको अवसर मिले तो आप किसीकी हत्या करके अपने स्वार्थ की सिद्धि कर लेगे। ऐसा अवसर नही मिलता, इसलिए आप अपनी हत्या करके अपनी हत्या-प्रवृत्ति को शान्त करना चाहते है। आपका गृह-जीवन विफल होगा। शारीरिक व्यथा कितनी भी भयंकर हो, उसके कारण आत्मघात का विचार नही उठता। केवल मानसिक पीड़ा, ग्लानि, लज्जा, भीरुता, असहनशीलता, असमर्थता और क्रोधाविक्य में आत्मनाशी विचार उठते है। अतएव अपनी मनोव्याधियो का उपचार कीजिए। उपचार यही है कि आशा को बलवती बनाकर किसी काम में लग जाइए।

61. कभी-कभी ऐसा होता है कि छोटे-छोटे कार्यो में हमें निरन्तर सफलता मिलती जाती है, और जहां सफलता की आशा नही रहती वहां भी सफलता मिल जाती है। उस समय यह मानना चाहिए कि समय अपने अनुकूल है, अपना भाग्योदय हो रहा है। उस समय कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य करने से सफलता मिलने की अधिक आशा होगी। इसलिए तत्त्वज्ञों ने कहा है कि जब समय मुस्कराता हुआ मिले तो उससे अधिकाधिक लाभ ले लेना चाहिए। दैष्टिक विघान (भाग्यविधान या पूर्वनिश्चित कर्म) मे कोई विश्वास करे या न करे, इतना मानना पड़ेगा कि अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियां चुपचाप आकर भी हमारी जीवनदशा पर प्रभाव डालती है। वायुमण्डल में असख्य तरंगे है जो हमारे

शरीर को ही नही जीवन को स्पर्श करके उसकी गति में साधक या बाधक बन जाती है ।

62. यदि आप अत्यधिक आशावादी है, तो कल्पनाजीवी होगे और परिणामत: निराशा के बहुत-से झोके निरन्तर सहते होगे, क्योंकि कल्पना-जगत् के निर्मित और अतिरजित सुख प्रत्यक्ष जगत् में नही मिलते । 'मति अति रक मनोरथ राऊ' की मनोवृत्ति वाले ही उग्र आशावादी होते है । वे मनमोदक खाते है, आकाश-गगा में नहाते हैं, मृगमरीचिका का जल पीते है और आकाश-कुसुम लेकर पश्चिम दिशा में सूर्य भगवान् का आह्वान करते है । ऐसे लोगों के चरण प्राय: गलत रास्ते पर पड़ते है, क्योंकि उनकी दृष्टि कही और तैरती रहती है । निराशावादी कर्म को अधर्म समझता है, कल्पित भय से पीडित और सन्देह-ग्रस्त रहता है । वह सर्वथा विश्वासशून्य होता है ।

63. वर्तमानकाल में रहने पर न तो अधिक प्राचीन और न अधिक अर्वाचीन होना चाहिए । समय के साथ चलना चाहिए । देशकाल सभी परिवर्तनशील है और परिवर्तन ससार का निश्चित धर्म है । अतएव सामयिक रीति-नीति का अनुकरण करना चाहिए । शेखसादी की यह बात एक अश तक मान्य है कि जब तूफानों के देश में पहुंचे तो तू भी अपनी एक आंख बन्द कर ले । इसका यह अर्थ नही है कि विलायत जाने पर अपनी जातीयता और सभ्यता का परित्याग कर देना चाहिए । इसका अर्थ यह है कि व्यावहारिक जगत् में 'कालानुवर्ती भव' इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि प्राचीनता और आधुनिकता का विपय-सम्मिश्रण न हो । यदि आप हवन करते है तो घी से कीजिए, वनस्पति घी से नही; मन्दिर में जाते हैं तो शंख बजाइए, मोटर का 'हार्न' नही; दफ्तर जाते है तो जूते पहनकर जाइये, खड़ाऊ नही ।

64. व्यक्तिगत चरित्र का प्रभाव जीवन के प्रत्येक कार्य पर पड़ता है । चरित्र तो व्यक्ति के साथ लगा ही रहता है । एक अग्रेजी विचारक के अनुसार जो व्यक्ति निजी जीवन में दुर्जन रहता है । वह सामाजिक जीवन में सज्जन नही हो सकता, क्योंकि स्थान-परिवर्तन होने पर भी

व्यक्ति तो वही रहता है।[1]

निवेदन

अपने गुणों-अवगुणों को इन उत्तरों से नापिए और देखिए कि आप कहां छोटे पड़ते हैं। इनके आधार पर आप दूसरो को भी देखिए। परन्तु सर्वप्रथम आत्म-निरूपण कर लीजिए। आत्म-वचना से आप स्वयं धोखे में रहेगे। यदि आप स्वयं अपने को सुधारे बिना यह चाहें कि समाज आपके बनावटी रूप को असली मान ले, तो यह आपका आत्म-विभ्रम है। समाज के सूक्ष्मदर्शन-यत्र के आगे मानव-चरित्र की छोटी-छोटी बाते भी स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। आप मुंह में ताला लगाकर बैठें, तो आपके व्यवहार-कर्म आपकी आत्मकहानी सबको सुनाने लगते हैं: करतूती कहि देत आप कहिए नहि साई।

1 He who acts wickedly in private life can never be expected to show himself noble in public conduct, for it is not the man, but only the place that is changed

10

चयनिका

मंगल-सूत्र

1

असतो मा सद् गमय।—असत् से हमें सत् की ओर ले चलो।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।—अंधकार से हमें प्रकाश में ले चलो।
मृत्योर्मा अमृत गमय।—मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।
(बृहदारण्यक उपनिषद्)

2

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ (ऋग्वेद)

—तुम्हारा अभिप्राय एक समान हो, तुम्हारा अंतःकरण एक समान हो, और तुम्हारा मन एक समान हो, जिससे तुम्हारा सुसाह्य होगा, अर्थात् संघशक्ति की दृढ़ता होगी।

3

'सत्य हि परमं बलम्'—सत्य ही परम बल है। भीष्म ने युधिष्ठिर को अपनी मृत्यु के पूर्व यह उपदेश दिया था।

4

'मनस्ते महदस्तु च'—तू सदैव अपने मन को महान् बनाए रख। युधिष्ठिर के लिए कुन्ती का यही अन्तिम उपदेश था।

5

'जीवितेनापि मे रक्ष्या कीर्तिस्तद्विद्धि मे व्रतम्'—चाहे हमारे प्राण भले ही जाएं, पर अपनी कीर्ति की रक्षा करना मेरा व्रत है।—सूर्य ने जब महारथी कर्ण से कहा कि तू अपने कवच-कुण्डल इन्द्र को दान में न देना, नहीं तो आयुर्बल क्षीण हो जाएगा, और जीवन ही नष्ट हो जाएगा, तो मरने पर तेरी कीर्ति किस काम आएगी : 'मृतस्य कीर्त्या किं कार्यम्'—तब कर्ण ने उपर्युक्त उत्तर दिया था।

6

उच्छ्रयस्व महते सौभगाय (ऋग्वेद)—महान् सौभाग्य की प्राप्ति के लिए उन्नतिशील वनो।

7

'न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन' (ऋग्वेद)—मै मरने के लिए कदापि नहीं पैदा हुआ हूं।

8

भद्र कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳪसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ (ऋग्वेद)

—हे देवगण! हम अपने कानो से कल्याणकर वचन सुने, हम नेत्रों से मंगलमय वस्तुए देखे, हम शरीर से दृढ़ और ससत्त्व होकर तुम्हारी स्तुति करके ईश्वर द्वारा निर्धारित आयु को भोगे।

9

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (पतञ्जलि)—चित्त की वृत्तियों को वश में रखना ही योग है।

10

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्। (महाभारत)

—दुःख को दूर करने की एक ही अमोघ ओषधि है—मन से दुःखों की चिन्ता न करना।

11

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो वन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ (गीता)

—मनुष्य को उचित है वह स्वय ही आत्मोद्धार करे और अपनी अवनति अपने-आप न करे। मनुष्य अपना मित्र या शत्रु स्वय ही होता है।

उद्योग करते रहो

1

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः। चरैवेति, चरैवेति॥

—जो मनुष्य बैठा रहता है, उसका सौभाग्य भी बैठा रहता है। जो उठकर खड़ा हो जाता है उसका सौभाग्य भी खड़ा हो जाता है। जो स्वय शिथिल रहता है, उसका सौभाग्य भी सोता रहता है। जो उठकर चल पड़ता है, उसका सौभाग्य भी सक्रिय हो जाता है—इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

2

चरन्व मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्वरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाण यो न तन्द्रयते चरन्। चरैवेति चरैवेति॥

—जो मनुष्य गतिमान् रहता है, वही मधु पाता है, वही स्वादिष्ट फल खाता है। परिश्रमी सूर्य को देखो, जो कभी आलस्य नही करता। अतएव चलते रहो, चलते रहो।

3

कलिः शयानो भवति, सजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृत सम्पद्यते चरन्। चरैवेति, चरैवेति॥
(ऐतरेय ब्राह्मण)

—पड़े सोते रहना कलियुग है, ऊघते रहना ही द्वापर है, उठ बैठना ही त्रेता है और चल पडना ही सतयुग है। अतः चलते रहो, चलते रहो।

4

उदीर्ध्व जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक् पन्था यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥ (ऋग्वेद)

—मनुष्यो! उठो, हमारे शरीरों को सचालित करने वाला प्राण उदय हो गया, अन्धकार विनष्ट हो गया, प्रकाश आ गया है। उपा ने सूर्य की यात्रा का मार्ग बना दिया है। जिस देश में उपा अन्न देकर हमारी वृद्धि करती है, हम उसी ओर जाए। अर्थात् प्रभात होते ही कार्यक्षेत्र में प्रवेश करो।

5

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥ (पंचतत्र)

कार्य मनोरथ से नही, उद्यम से सिद्ध होते हैं। सोते हुए सिंह के

मुंह मे मृग अपने-आप नही चले जाते।

बुद्धि-बल

1

प्रवृत्ति च निवृत्ति च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ।। (गीता)

—हे पार्थ ! जिस बुद्धि से यह ज्ञान होता है कि किस कार्य को करना चाहिए और किस कार्य से अलग रहना चाहिए, कौन-सा काम करने के योग्य है और कौन-सा नही, कहां डरना चाहिए और कहां नहीं तथा किस बात से हम बंध जाएगे और किससे स्वतंत्र हो जाएगे, वह सात्त्विक बुद्धि है—निश्चित निर्णय करने वाली सद्बुद्धि।

2

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ।। (गीता)

—धर्म-अधर्म, कार्य-अकार्य का ठीक-ठीक निरूपण जो बुद्धि न कर सके, उसको राजसी कहते हैं—सन्देहग्रस्त बुद्धि।

3

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ।। (गीता)

—जो बुद्धि धर्म को अधर्म मानकर सभी बातों में विपरीत निर्णय करती है, उसको तामसी बुद्धि कहते है—दुर्बुद्धि।

4

मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ।। (शिव-गीता)

—मोक्ष किसी स्थान पर रखा हुआ नही मिलता और न उसको ढूंढ़ने के लिए किसी दूसरे गांव को ही जाना पड़ता है। हृदय की अज्ञान-ग्रन्थि का नष्ट होना ही मोक्ष कहा जाता है।

5

शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मोहः परासुता।
ईर्ष्या मानो विचिकित्साकृपाऽसूया जुगुप्सता।

द्वादशैते बुद्धिनाशहेतवो मानसा मलाः ।। (कालिकापुराण)

—शोक, क्रोध, लोभ, काम, मोह, आलस्य, ईर्ष्या, मान, सन्देह, पक्षपात, गुणवान् के प्रति दोषारोपण, निन्दा—ये बारह मानस-मल हैं जिनके कारण बुद्धि नष्ट होती है।

6

यः सतत परिपृच्छति शृणोति सन्धारयत्यहर्निशम् ।
तस्य दिवाकरकिरणैर्नलिनीव विवर्द्धते बुद्धिः ।। (पंचतंत्र)

—जो सदा पूछता, सुनता, रात-दिन धारण करता है, उसकी बुद्धि सूर्य की किरणो से कमलिनी के समान बढ़ती है।

7

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत ।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च ।। (महाभारत)

—बुद्धि से कार्य करनेवाले श्रेष्ठ होते हैं, बाहु से कर्म करनेवाले मध्यम श्रेणी के। जघा पीड़ित करनेवाले निकृष्ट होते हैं—वे केवल भार ढोते है।

8

बुद्धेर्बुद्धिमता लोके नास्त्यगम्य हि किञ्चन ।
बुद्धया यतो हता नन्दाश्चाणक्येनासिपाणयः ।। (पंचतंत्र)

—बुद्धिमानों की बुद्धि के सम्मुख ससार में कुछ भी असाध्य नही है। बुद्धि से ही शस्त्रहीन चाणक्य ने सशस्त्र नन्द का नाश कर डाला।

9

—दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां दूरे हिनस्ति सः। (पंचतत्र)

—बुद्धिमान् की भुजाए बडी लम्बी होती है, जिनसे वह दूर से वार करता है।

10

शस्त्रैर्हता न हि हता रिपवो भवन्ति,
प्रज्ञाहतास्तु रिपवः सुहता भवन्ति ।
शस्त्र निहन्ति पुरुपस्य शरीरमेव,
प्रज्ञा कुलञ्च, विभवञ्च, यशश्च हन्ति ।। (पंचतंत्र)

—शस्त्र से शत्रु का पूर्ण विनाश नही होता। वुद्धि द्वारा नष्ट किए हुए शत्रु का लोप ही हो जाता है। शस्त्र से पुरुष का शरीर ही नष्ट होता है; वुद्धि के प्रहार से तो वश-वैभव, कीर्ति सभी विनष्ट हो जाते है।

वाणी और यश

1

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रासखाय: सख्यानि जानते भद्रैपा लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि।। (ऋग्वेद)

—जिस प्रकार सूप से सत्तू निकाला जाता है, बुद्धिमान् लोग उसी प्रकार बुद्धि-वल द्वारा परिष्कृत भाषा को प्रकट करते है। उस समय उनको अपने अभ्युदय का ज्ञान रहता है। उनकी वाणी में मंगलमयी लक्ष्मी निवास करती है।

2

सर्वे नन्दन्ति यशसागते न सभासाहेन सख्या सखाय:।
किल्विषस्पृत् पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय।। (ऋग्वेद)

—यश मित्र का काम करता है, वह सभा-समाज से प्रधानता प्राप्त करता है। इसको प्राप्त करके सभी प्रसन्न होते हैं, क्योंकि यश के द्वारा दुर्नाम दूर होता है, अन्न प्राप्त होता है, शक्ति मिलती है और सब तरह से लाभ होता है।

आत्म-शक्ति

1

शक्ति विना महेशानि ! सदाऽहं शवरूपक:।
शक्तियुक्तो यदा देवि ! शिवोऽहं सर्वकामद:।। (पद्मपुराण)

शिव कहते हैं—हे पार्वती ! शक्ति के विना हम भी शव के समान है। शक्ति-युक्त होने पर ही हम शिव और सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ वनते है।

2

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थक:।
न तं भर्त्तारमिच्छन्ति, षण्ढं पतिमिव स्त्रिय:।। (पचतंत्र)

—जिसके प्रसन्न होने से किसीका लाभ नही होता और क्रुद्ध होने

से किसीकी हानि नही होती, ऐसे नपुंसक पति को स्त्रियां भी अपना स्वामी नही बनाना चाहतीं।

कर्म ही धर्म है

अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः।
ते हरेर्द्वेपिणः पापाः धर्मार्थं जन्म यद्धरेः।। (विष्णुपुराण)

—अपने (स्वधर्मोक्त) कर्मो को छोड़ (केवल) कृष्ण-कृष्ण कहते रहनेवाले लोग हरि के द्वेषी और पापी है, क्योंकि स्वयं हरि का जन्म भी तो धर्म की रक्षा के लिए ही होता है। (गीता-रहस्य)।

पाप-पुण्य

1

अष्टादशपुराणानां सारं सारं समुद्धृतम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

—दूसरोंके प्रति उपकार करना ही पुण्य, और दूसरों को कष्ट देना ही पाप है; यही अठारह पुराणो का सार है।

2

न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूल यदात्मनः।
एष सक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्त्तते।। (महाभारत)

—दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार न करे जो स्वयं अपने को ही प्रतिकूल जान पड़े। यही समस्त धर्मशास्त्र का सार है; अन्य व्यवहार तो स्वार्थवश होते है।

3

यदन्येषां हित न स्यात् आत्मनः कर्म पौरुषम्।
अपत्रपेत वा येन न तत्कुर्यात् कथञ्चन।। (महाभारत)

—अपने जिस कर्म से दूसरों का लाभ नही होता और जिसके करने में स्वयं अपने को लज्जा-संकोच मालूम होता है, उसको कभी न करना चाहिए।

सत्पुरुष के लक्षण

1

यस्य प्रसादे पद्मास्ते, विजयश्च पराक्रमे ।
मृत्युश्च वसति क्रोधे, सर्वतेजोमयो हि सः ॥

—जिसकी प्रसन्नता से लक्ष्मी की वृद्धि होती है, जिसके पराक्रम का परिणाम विजय होता है, जिसके क्रोध में दूसरों के प्राण तक नष्ट करने की शक्ति होती है, वही महातेजस्वी होता है।

2

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।

—जो उदारचरित होते हैं, सारा संसार ही उनका कुटुम्ब होता है।

3

अधमाः कलिमिच्छन्ति, सन्धिमिच्छन्ति मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति, मानो हि महतां धनम् ॥ (गरुड़पुराण)

—नीच पुरुष सदा झगड़ा पसन्द करते है; मध्यम कोटि के मनुष्य कैसे भी शान्ति के लिए लालायित रहते हैं, श्रेष्ठ पुरुष सम्मान-प्राप्ति की कामना करते है। आत्मसम्मान ही महापुरुषों का धन होता है।

4

सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ।
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ॥ (रामायण)

सीता ने राम के सम्वन्ध में हनुमान् से कहा, "राम सबके प्रिय, साधु, वलवान् आत्मावाले, तत्कालोचित कर्म में कुशल और नदियों से समुद्र की तरह सदा सज्जनों से घिरे रहते हैं।"

5

कार्यसिद्धेर्मतिश्चैव तस्मिन् वानरपुङ्गवे ।
व्यवसायश्च वीर्यञ्च श्रुतं चास्ति प्रतिष्ठितम् ॥ (रामायण)

सुग्रीव ने हनुमान् के सम्बन्ध में राम को बताया कि उसमें कार्य-सिद्धि की वुद्धि (उपाय-शक्ति) है, उद्योग, वल और पांडित्य सभी है।

6

पात्रे त्यागी, गुणे रागी, भोगी परिजनैः सह ।
शास्त्रे बोद्धा, रणे योद्धा, पुरुषः पञ्चलक्षणः ।।

—सुपात्र के प्रति दानी होना, गुणानुरागी होना, स्वजनों के साथ सुख-दुःख भोगना, शास्त्र का ज्ञानी होना, युद्ध में पराक्रमी होना—यही पांच लक्षण पुरुष होने के है ।

7

स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणीः । (भर्तृहरि)

—जिसने परमार्थ को ही अपना स्वार्थ बना लिया है, वह सर्वश्रेष्ठ सत्पुरुष है ।

8

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।।
(भर्तृहरि)

—विपत्ति में धैर्य रखना, ऐश्वर्यशाली होने पर क्षमावान् होना, सभा में वाक्पटुता दिखाना, युद्ध में पराक्रम दिखाना, कीर्ति-अर्जन में अनुराग रखना, विद्याव्यसनी होना—ये गुण महात्माओं में स्वभाव से ही होते है ।

9

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः,
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः ।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधारा व्रतमिदम् ।। (भर्तृहरि)

—दान को गुप्त रखना, अपने घर आए हुए पुरुष का सत्कार करना, परोपकार करके मौन रहना, दूसरों के किए हुए उपकार का सभा में वर्णन करना, धन पाकर गर्व न करना और पराई चर्चा में उसके निरादर की बात बचाकर कहना, यह तलवार की धार के समान कठिन व्रत सत्पुरुषों को किसने बताया है ।

10

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभंगेऽप्यसुकरं,
त्वसन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः।
विपद्युच्चैः स्थैर्य पदमनुविधेयं च महतां,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्॥

—सज्जन अपने प्राण भले ही त्याग दे, पर वे नीच कर्म नही करते। वे दुष्ट जनों के सामने हाथ नही फैलाते, अल्पधन होने पर मित्र से भी याचना नही करते हैं। विपत्ति में भी वे महान् बने रहते है और सत्पुरुषों का ही आचरण करते हैं। सज्जनों के लिए यह कठिन व्रत किसने निर्दिष्ट किया है—अर्थात् ये तो उनके स्वाभाविक गुण होते है।

11

मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्। (भर्तृहरि),

—मनस्वी और कार्यार्थी लोग दुःख और सुख में एक-से रहते हैं, उनकी परवाह नहीं करते हैं।

12

महान्महत्स्वेव करोति विक्रमम्—बड़े आदमी बड़े आदमियों के साथ ही वीरता दिखलाते हैं।

13

प्रवृत्तवाक् चित्रकथा ऊहवान् प्रतिभानवान्,
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते॥ (विदुर)

—जो वाणी-व्यवहार में कुशल, यथातथ्य वर्णन करने वाला, तर्क-वितर्क में प्रवीण, प्रतिभाशाली, ग्रन्थ-अभिप्राय को शीघ्र समझनेवाला होता है, वही पण्डित कहलाता है।

राष्ट्र-भारती की कुछ सूक्तियां

1. रहिमन मोहिं न सुहाय, अमी पियावत मान बिन।
   बरु विष देय बुलाय, मानसहित मरिबो भलो॥ (रहीम)
2. आवत ही हरषे नही, नैनन नही सनेह।
   तुलसी तहां न जाइए, कचन बरसे मेह॥ (तुलसी)

3. तुलसी तृण जल कूल को, निरधन निपट निकाज।
कै राखै कै संग चलै, बांह गहे की लाज॥ (तुलसी)

4 प्रेम बैर अरु पुण्य-अघ, जस-अपजस जय हान।
बात-बीज इन सबन को, तुलसी कहहि सुजान॥ (तुलसी)

5 गुनी जनन के हृदय को, वेधत है सो कौन।
असमझवार सराहिबो, समझवार को मौन॥ (अज्ञात)

6 तुलसी असमय के सखा, धीरज, धरम, विवेक।
साहित, साहस, सत्यव्रत, राम भरोसो एक॥ (तुलसी)

7. कलह न जानबछोट करि, कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच गृह, जरत धनिक वनधाम॥ (तुलसी)

8 काहु न कोउ सुख दु:खकर दाता।
निज कृत करम भोग सब भ्राता॥ (तुलसी)

9. जहा सुमति तह सम्पति नाना।
जहां कुमति तहं बिपति निधाना॥ (तुलसी)

10 जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान।
मोल करो तरवारि का, पड़ा रहन दो म्यान॥ (कबीर)

11 जिन ढूंढा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठ।
मै बपुरा बूडन डरा, रहा किनारे बैठ॥ (कबीर)

12. नाव न जाने गांव का, बिन जाने कित जाव।
चलता-चलता जुग भया, पाव कोस पर गांव॥ (कबीर)

13. धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सीचै सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय॥ (कबीर)

14. आब गया, आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनों तब ही गए, जबहि कहा कछु देह॥ (कबीर)

15. कबहुंक हौ यहि रहनि रहौगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते, संत सुभाव गहौगो।
जथा लाभ सतोष सदा, काहू सों कछु न चहौगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौगो।
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहिं पावक न दहौगो।

बिगतमान सम सीतल मन परगुन औगुन न कहौंगो।
परिहरि देहजनित चिन्ता दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
'तुलसिदास' प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो ।।
(तुलसी)

16. कुलबल जैसो होय सो, तैसी करिहै बात।
वणिक पत्र जानै कहा, गढ़ लेवे की बात ।।

अंग्रेजी की कुछ सूक्तियां

1

A single man without a family and traditions, has a fanatical belief in a higher mission may go beyond the limits of human law.

—Manstein, Commander-In-Chief, German Army

मैनस्टीन ने 'न्यूरमवर्ग ट्रायल' में हिटलर के सम्बन्ध में गवाही देते हुए कहा था :

"एक अकेला मनुष्य जिसके पीछे कोई वंश या कुल-परम्परा नही, जिसे उच्चतर आदर्श की प्रवल आकांक्षा हो, साधारण मानव-धर्म का अतिक्रमण कर सकता है ।"

2

The crowd loves the strong man, the crowd is like a woman. —Mussolini

—जनता बलवान् पुरुष को चाहती है; वह स्त्री की तरह होती है ।

3

The heights by great men reached and kept.
Were not attained by sudden flight,
But they, while their companions slept,
Were toiling upwards in the night. —Longfellow

—महान् व्यक्तियों ने जो प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वह उन्हें एकाएक एक ही प्रयास में नही मिल गई है। जब उनके अन्य साथी लोग सोए पड़े थे तो वे चुपचाप आत्मोत्थान के लिए प्रयत्नशील थे। इस प्रकार वे उच्चता के शिखर पर पहुंचकर उच्च बन सके।

4

But for me and for us all, reverses are nothing but strokes of the whip, and it is practically these which we needed to drive us forward. —Hitler

—मेरे लिए और हमारे सबके लिए प्रतिकूल परिस्थितियां और कुछ नही केवल चाबुक के प्रहार हैं, और वस्तुत: आगे बढ़ने के लिए हमें इन्हीकी आवश्यकता थी।

5

A people which is not convinced of its own value can never achieve anything.

—जो जाति गौरव को नहीं समझती, वह कभी उन्नति नहीं कर सकती।

6

The punishment suffered by the wise who refuse to take part in Government is to live under the Government of bad man —Plato

—ऐसे बुद्धिमान् व्यक्ति, जो गवर्नमेण्ट के संचालन में स्वयं नही भाग लेते, दुष्ट मनुष्यों द्वारा शासित होने का दण्ड भोगते हैं।

7

A bad man is worse when he pretends to be a saint.

—Bacon

—जो दुष्ट होकर भी साधु होने का ढोंग करता है, वह महादुष्ट है।

8

—Liberty is not merely a privilege to be conferred, it is a habit to be acquired. —Lloyod George

—स्वतन्त्रता केवल दूसरों द्वारा प्राप्त होने वाला एक विशेषाधिकार नही है, बल्कि वह एक स्वभाव-सुलभ गुण है, जिसका अभ्यास करना पड़ता है।

9

We know accurately only when we know little, with knowledge doubt increases. —Goethe

—जब हम ज्ञान के भार से दबे नहीं रहते तो जितना जानते हैं उसको शुद्ध और निर्दोष रूप में, अर्थात् पूर्णरूपेण जानते है; ज्ञान की अजीर्णता के साथ चित्त में भ्रम-सन्देह की भी वृद्धि होती है।

10

Even the best things are not equal to their fame.

—Thoreau

—सर्वोत्तम वस्तुएं भी अपनी प्रसिद्धि के समान श्रेष्ठ नही होती।

शिक्षा भारती प्रेस, दिल्ली-११००३२ मे मुद्रित

11163